हिन्दी रास-काव्य में स्वभावोक्ति

(सन् १४५० से १६५० ई० तक)

डॉ० कौशल्या भारद्वाज
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
इन्दिरा गाँधी नेशनल कॉलिज, लाडवा

मंथन

मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक

हिन्दी राम-काव्य में स्वभावोक्ति
(समीक्षात्मक आलोचना)

© डॉ० कौशल्या भारद्वाज

प्रथम संस्करण : १९८२

मूल्य : ६०-०० (साठ रुपये)

मंथन पब्लिकेशन्स द्वारा प्रकाशित तथा रघु कंप्यूटिंग एजेंसी द्वारा
पुष्प प्रिंटिंग प्रेस, के-१२, नवीन शाहदरा-दिल्ली-११००३२ में मुद्रित।

HINDI RAMA-KĀVYA MEIN SWĀBHAVOKTTI (Criticism)
by Dr. Kaushlya Bharadawaj Price : Rs. 60-00

पुरोवाक्

प्रस्तुत ग्रन्थ दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। इस शोध-प्रबन्ध के लेखन में तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ एवं अनेक प्रादेशिक भाषाओं की रामायणों का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले विद्वान् परम श्रद्धेय डॉ० रमानाथ त्रिपाठी का मुझे दक्ष निर्देशन प्राप्त हुआ है। मध्यकालीन राम-काव्य को लेकर अ... प्रबन्धों की रचना हो चुकी है। 'राम-भक्ति-शाखा', 'राम-भक्ति में रसिक सम्प्रदाय', 'राम-भक्ति में मधुर उपासना' आदि शोध ग्रन्थों का संकेत इस सन्दर्भ में पर्याप्त है। वस्तुतः भक्ति-युगीन रामकवियों में मुख्यतः तुलसी एवं तत्पश्चात् केशव के सम्बन्ध में अनेक दृष्टिकोणों से आलोचन-प्रत्यालोचन होता रहा है। धर्म, दर्शन एवं सिद्धान्त की दृष्टि से तो इन काव्यों पर पर्याप्त काम हो चुका है किन्तु काव्यशास्त्रीय निकष पर मूल्यांकन की दृष्टि से अभी इस ओर कम ही प्रयास हुए हैं। इस दृष्टि से राजकुमार पाण्डेय का 'रामचरित-मानस का काव्यशास्त्रीय अध्ययन', डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त का 'भक्तिकालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त' तथा डॉ० वचनदेव कुमार का 'रामचरितमानस में अलंकार-योजना' आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

काव्यशास्त्र प्रारम्भ से ही मेरे अध्ययन का विषय रहा है। वक्रोक्तिकार कुन्तक के सिद्धान्त का अध्ययन करते समय मेरे हृदय में स्वभावोक्ति की अलंकारता एक प्रश्न चिह्न के रूप में अंकित हो गई। अपने इस शोध-प्रयास में मैंने इसी कारण इस अलंकार की विवादास्पद स्थिति पर विस्तार के साथ गम्भीर चिन्तन किया है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में मैंने विशेष कवि के रूप में तुलसीदास का अध्ययन किया था, जहाँ स्वभा-वोक्ति के विविध चमत्कारों से मेरा साक्षात्कार हुआ। मानस का अध्ययन करते समय ही मेरे सम्मुख स्वभावोक्ति अलकार का स्वरूप स्पष्ट हुआ तथा उसके विरुद्ध आक्षेपों के खण्डनार्थ कुछ तर्क भी मेरे मस्तिष्क में उभरे। अपने इन्ही विचारों के प्रकाश में मैंने व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में इस अभाव को दृष्टि में रखकर राम-काव्य के सहज सौन्दर्य-पक्षों का उद्घाटन करने का विनम्र प्रयास किया है। सात अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ में मैंने मध्ययुगीन राम-काव्यों में व्यवहृत स्वभावोक्तियों का अध्ययन किया है।

मैंने अपने इस ग्रन्थ में मध्य युग के सन् १४५० से १६५० ई० तक के सभी प्रसिद्ध राम कवियों को अध्ययन का आधार बनाया है। तुलसी, सूर, केशव सेनापति आदि विख्यात राम कवियों के अतिरिक्त विष्णुदास, ईश्वरदास, अग्रदास, नाभादास,

लालदास, ब्रह्मजिनदास, विनय समुद्र, सुन्दरदास आदि का समावेश करके अध्ययन को पूर्ण बनाया गया है। कवि लालदास के सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है। नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९१७ की खोज-रिर्पोट में लालदास कृत 'अवध विलास' की सूचना दी गई है। उसमें ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त का कुछ अंश भी उद्धृत किया गया है। किन्तु नागरी प्रचारिणी सभा जाने पर मुझे 'अवध विलास' उपलब्ध नहीं हो सका। वही काशी के एक पुस्तक विक्रेता से मुझे 'अवध विलास' की एक खण्डित प्रति प्राप्त हुई है। इसका लिपि-काल पुस्तक के अन्त में दी गई पुष्पिका में संवत् १८२८ दिया गया है। इसका रचना-काल अभी ज्ञात नही हो सका है। इस ग्रन्थ को मैंने अपने अध्ययन में समाविष्ट कर लिया है।

स्वभावोक्ति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी अलंकार के रूप में स्थापना द्वितीय अध्याय का विषय है। यहाँ अग्निपुराण एवं भरतमुनि की चर्चा मैंने पृष्ठभूमि के रूप में की है। इसके पश्चात् संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में स्वभावोक्ति अलंकार के इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। भामह, दण्डी, उद्भट, रुद्रट, मम्मट, कुन्तक, भोज, आनन्दवर्द्धन, महिम भट्ट, विश्वनाथ, पण्डितराज आदि सभी प्रसिद्ध काव्यशास्त्रियों की स्वभावोक्ति-विषयक धारणाओं का संक्षेप में विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इसके अनन्तर महाकवि तुलसी आदि मध्ययुगीन कवियों एवं आचार्यों की स्वभावोक्ति सम्बन्धी धारणाओं को प्रस्तुत कर स्वभावोक्ति अलंकार की पुष्टि की गई है। सिद्धान्त-प्रतिपादन के बाद विरोध-पक्ष को प्रस्तुत करते हुए प्रसिद्ध आलंकारिक कुन्तक एव आधुनिक युग के मूर्धन्य आलोचक रामचन्द्र शुक्ल जी की धारणाओं का विश्लेषण किया गया है। कुन्तक एवं शुक्ल जी द्वारा स्वभावोक्ति की अलंकारता को लेकर की गई शंकाओं एवं आक्षेपों का निराकरण करते हुए मैंने अपने मौलिक तर्क प्रस्तुत किए हैं।

विपक्ष की शंकाओं को निर्मूल करके स्वभावोक्ति अलंकार के क्षेत्र-विस्तार पर विचार किया गया है। साहित्य मे उसकी महत्ता एवं उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है। स्वभावोक्ति अलंकार का वर्गीकरण करते हुए उसके चार मुख्य भेदों की चर्चा की गई है जो बाद के अध्यायों में अध्ययन-विश्लेषण के घटक बने है। प्रसिद्ध आलंकारिक दण्डी ने स्वभावोक्ति अलंकार के चार भेदों—जाति, द्रव्य, गुण एवं क्रिया—की चर्चा की है। वस्तुत. जातिपरकता स्वभावोक्ति की अलकारता का विधायक तत्त्व है अत: उसे वर्ग-विभाजन का आधार नहीं बनाया जा सकता। इसी प्रकार द्रव्य-वर्णन में द्रव्य की सत्ता प्रधान न होकर उसका रूप प्रधान होता है। इसी कारण मैंने दण्डी आदि आलंकारिकों के वर्गीकरण को ग्रहण करते हुए उसमें ईषत् परिवर्तन कर दिया है। इस परिवर्तन का आधार भोजदेव की स्वभावोक्ति-विषयक धारणा है। उनके अनुसार वस्तु की नाना अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाले विविध रूपों का वर्णन स्वभावोक्ति है। इसी कारण मैंने स्वभावोक्ति अलकार के मुख्यत: चार भेद इस रूप मे प्रस्तुत किए हैं—रूप, गुण, अवस्था एवं क्रिया।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जिन विद्वानों से मुझे इस अध्ययन में सहायता मिली है उनमें हैं—डॉ० नगेन्द्र, डॉ० निर्मला जैन, डॉ० उदयभानु सिंह, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

आदि। ये सभी मेरे आदरणीय गुरुजन है जिनका अविरल स्नेह भाव मुझे प्राप्त हुआ है। डॉ० रमानाथ त्रिपाठी के प्रति मैं विशेष कृतज्ञता का ज्ञापन करना चाहती हूँ जिनसे मुझे इस शोध-प्रबन्ध के लेखन मे उचित दिशा-निर्देश तो मिला ही साथ ही उनका अनन्य वात्सल्य भी मुझ पर रहा, जो मेरे लिए सर्वदा अविस्मरणीय है। वस्तुतः डॉ० रमानाथ त्रिपाठी के आशीर्वाद से ही मैं इस कार्य को पूर्ण करने में सफल हो सकी हूँ। अपने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के श्री शेरसिंह जी की सहायता के लिए भी मैं कृतज्ञ हूँ। इस सम्पूर्ण कार्य की अवधि में मुझे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के प्रबन्धकों तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष से जो सौहार्दपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ, इसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ। मन्थन प्रकाशन के प्रति भी मै अपनी ओर से आभार प्रकट करती हूँ जिसकी तत्परता से यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है।

—डॉ० कौशल्या भारद्वाज

संकेत सूची

अ० वि०	अवध विलास
ऋक्०	ऋग्वेद
क० ग्र० पृ०	कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ
क० र०	कवित्त रत्नाकर
का० क०	काव्य कल्पद्रुम
कवि०	कवितावली
का० सू०	काव्यालकार सूत्र
खो० वि०	खोज-विवरण
ग्र० क्र०	ग्रन्थ-क्रमांक
गी०	गीतावली
दे०	देखिए
दो०	दोहा
ना० प्र० स०	नागरी प्रचारिणी सभा
प० सं	पद संख्या
पौ० रा०	पौरुषेय रामायण
बा० का०	बालकाण्ड
भ० वि०	भरथ विलाप
मा०	मानस
रा० क०	रामायण-कथा
रा० च०	रामचन्द्रिका
रा० च० मा०	रामचरितमानस
रा० ल० न०	रामलला नहछू
सु० का०	सुन्दर काण्ड
सू० सा०	सूर-सागर
ह० लि० ग्र०	हस्तलिखित ग्रन्थ
लि०	लिमिटेड
सं०	संवत्
संपा०	संपादक
सं० प्र०	संस्करण प्रथम
ना० भ० सू०	नारद भक्ति सूत्र

विषय-सूची

१. राम-काव्य (सन् १४५० से १६५० ई० तक) ९—२७

प्रमुख कवि—रामानन्द, गोस्वामी विष्णुदास, दास्य-भक्त कवि ईश्वरदास, कवि मुनि लावण्य, मुनि ब्रह्मजिनदास, सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, कवि विनयसमुद्र, मानदास, अग्रदास, मुनिलाल, महाराज पृथ्वीराज, भक्तप्रवर नाभादास, केशवदास, प्राणचन्द चौहान, हृदयराम, मलूकदास, माधवदास चारण, लालदास, सेनापति एवं 'नरहरदास' बारहट, निष्कर्ष।

२. स्वभावोक्ति अलंकार : स्थापना और इतिहास २८—५८

भरत, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रट, कुन्तक, महिम भट्ट, अभिनवगुप्त, भोज, मम्मट, रुय्यक, वाग्भट प्रथम, हेमचन्द्र, जयदेव, वाग्भट द्वितीय, विद्यानाथ, विश्वनाथ, पण्डित जगन्नाथ, अप्पय दीक्षित, आचार्य विश्वेश्वर आदि की स्वभावोक्ति अलकार सम्बन्धी धारणाएँ एव परिभाषाएँ। हिन्दी के आचार्य और स्वभावोक्ति।

स्वभावोक्ति : निषेध-पक्ष

(क) भामह
(ख) कुन्तक—आक्षेप और खण्डन
(ग) कुन्तक की शंकाओं का समाधान
(घ) आचार्य शुक्ल—स्वभावोक्ति का निषेध
(ङ) शुक्ल जी की शंकाओं के उत्तर

स्वभावोक्ति अलंकार के तत्त्व, काव्य में स्वभावोक्ति का क्षेत्र, स्वभावोक्ति के चार मुख्य भेद—रूपमूलक, गुणमूलक, अवस्थामूलक तथा क्रियामूलक।

३. रूपमूलक स्वभावोक्ति ५९—७७

रूप शब्द के विविध अर्थ, हमारा अभिप्रेत अर्थ, रूपमूलक स्वभावोक्ति का लक्षण, रूप के मुख्य चार भेद—आकर्षक, विकर्षक, सहज, परिस्थितिजन्य, चारों प्रकार के रूपों का स्वाभावोक्ति के आधार पर आलोच्य ग्रन्थों में मानवेतर प्राणियों तथा जड़ पदार्थों के रूप वर्णन की संक्षेप में चर्चा,

४. गुणमूलक स्वभावोक्ति ७८—१००

गुण शब्द का सामान्य अर्थ, काव्यशास्त्र में गुण-सम्बन्धी धारणाएँ, गुणमूलक स्वभावोक्ति का अर्थ, बाल-गुण वर्णन मे स्वभावोक्ति, प्रौढ़ों के वर्णन में गुणमूलक स्वभावोक्ति, नारी-गुण वर्णन में, मानवेतर प्राणियों के वर्णन में तथा जड़-वस्तु वर्णन में गुणमूलक स्वभावोक्ति का संक्षिप्त अध्ययन, निष्कर्ष।

५. अवस्थामूलक स्वभावोक्ति १०१—१३३

अवस्थामूलक स्वभावोक्ति का अभिप्राय, अवस्था शब्द के कोशगत विविध अर्थ, हमारा अभिप्रेत अर्थ, रस, भाव और विविध अवस्थाओं का परस्पर सम्बन्ध, चित्त की विविध अवस्थाओं के अनुरूप स्वभावोक्ति के विभिन्न रूप, वात्सल्यावस्थामूलक—संयोगावस्था एव वियोगावस्था, वात्सल्य का प्रत्युत्तरात्मक पक्ष, लक्ष्मण की प्रेमावस्था, भरत की भावविह्वल अवस्था, मानवेतर प्राणियों की प्रत्युत्तरात्मक वात्सल्यावस्था, (२) रतिमूलक अवस्थाओं में स्वभावोक्ति—संयोग एवं वियोगावस्था, पुरुष की विरहावस्था, नारी की विरहावस्था का चित्रांकन, (३) शोकदशा वर्णन में, (४) अन्य अवस्थाएँ—भक्ति विभोर अवस्था, भावातिरेकपूर्ण अवस्था, भय, कोध, लज्जा तथा ग्लानि आदि मनोदशाएँ, निष्कर्ष।

६. व्यापारमूलक स्वभावोक्ति १३४—१६७

चेष्टा, क्रिया एव व्यापार शब्दों के अर्थ, व्यापार शब्द की व्यापकता, उपयुक्तता और क्रियाओं का स्थूल वर्गीकरण, बाल-चेष्टाएँ, वात्सल्यजन्य चेष्टाएँ, शृंगारजन्य एवं युद्ध-व्यापार-सम्बन्धी क्रियाएँ, (अ) लंका-दहन प्रसंग (आ) सेतु बन्धन प्रसंग (इ) रण सज्जा एवं प्रयाण (ई) सेनाओं का घात-प्रतिघात (२) वर्गीकरण बहिगत व्यापार-चित्रण—सांस्कृतिक व्यापार एव अन्य (३) मानवेतर प्राणियों का व्यापार-चित्रण, निष्कर्ष।

७. राम-काव्य में प्रयुक्त स्वभावोक्तियों का रचनात्मक शिल्प १६८—१८४

रचनात्मक शिल्प की आवश्यकता एवं उसके तत्त्व—भाषा, शब्द-चयन, तत्सम शब्द, अर्धतत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्द, लोकोक्तियाँ और मुहावरे, गुण, वृत्ति और रीति—माधुर्य, ओज एव प्रसाद गुण की योजना (२) छन्द-विधान, मुख्य छन्द दोहा, चौपाई, कवित्त एवं अन्य।

उपसंहार १८५—१८६

चरित्रांकन में स्वभावोक्ति का योग, गुण और स्वभावोक्ति, सामाजिक स्थितियाँ और स्वभावोक्ति, कवित्व का निकष : स्वभावोक्ति, महाकवि तुलसीदास का वैशिष्ट्य, स्वाभावोक्ति और तादात्मय, स्वभावोक्ति और साधारणीकरण।

परिशिष्ट—सहायक ग्रन्थ-सूची

१

राम-काव्य (१४५० ई० से १६५० ई० तक)

हिन्दी-साहित्य में मध्ययुगीन भक्तिमूलक काव्यधारा के दो आधार स्तम्भ हैं--राम तथा कृष्ण। विष्णु के इन दो अवतारों को उपास्य के रूप में ग्रहण करके कवियों ने जो भक्ति-मूलक कवित्वमय उद्‌गार प्रकट किए, उन्हे हम राम-काव्य तथा कृष्ण-काव्य की द्विविध सज्ञाओं से अभिहित कर सकते है। राम-भक्ति आन्दोलन के महान् नेता थे—स्वामी रामानन्द, जिन्होने उत्तरी भारत में राम-भक्ति का प्रचार कर, उसे शैवधर्म की तांत्रिक अश्लीलताओं से बचा लिया।[1] स्वामी रामानन्द की प्रामाणिक कही जाने वाली रचना है—रामरक्षास्तोत्र, जिसमें मन्त्र, योगिनी के आदेश, हनुमान, राम एव सीता की स्तुति है।[2] साहित्यिक दृष्टि से इस रचना का कोई महत्त्व नहीं है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में रामानन्द के नाम से कुछ पद भी मिलते हैं, किन्तु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

रामानन्द की शिष्य-परम्परा में कबीर, पीपा, सुखानन्द, रैदास, सुरसुरानन्द आदि कवियों का उल्लेख हमें नाभादास के भक्तमाल[3] मे प्राप्त होता है। किन्तु इन सभी कवियों ने सगुण-लीलाधारी राम को भक्ति का आधार न बनाकर निर्गुण निराकार राम के प्रति अपनी भक्ति-भावना प्रदर्शित की है—

दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।
राम नाम का मरमु है आना॥[4]

इसी कारण डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा ने रामानन्द नाम के दो व्यक्तियों की सम्भावना में विश्वास व्यक्त किया है।[5]

गोस्वामी विष्णुदास

हिन्दी राम-काव्यधारा के गौरवशाली कवियों में गोस्वामी विष्णुदास की गणना की जाती है। ये मध्यकाल के उन अज्ञात राम-भक्त कवियों में से हैं जिनका परिचय अब तक केवल शोध कर्त्ताओं तक ही सीमित रहा है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में विष्णुदास के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। आचार्य शुक्ल ने भी अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में विष्णुदास का नामोल्लेख तक भी नहीं किया है। खोज रिपोर्टों में ही इनके विषय में सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इनका समय विक्रम की पन्द्रहवीं शती का अन्तिम

चरण माना गया है। ये हिन्दी के अत्यन्त गौरवशाली कवि थे। भाषा एव शैली की दृष्टि से इनकी रचनाएँ साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। गोस्वामी विष्णुदास की कृतियाँ हिन्दी-साहित्य के इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ी होने के साथ-साथ हिन्दी की अनमोल निधि हैं। हिन्दी-साहित्य में इनका गौरव असदिग्ध है।

नागरी-प्रचारिणी सभा की १९०६-८ की खोज रिपोर्ट मे विष्णुदास के सम्बन्ध में प्रथम सूचना प्रकाशित हुई, जिसमें इनकी दो रचनाओं—महाभारत कथा तथा स्वर्गारोहण का उल्लेख किया गया।[६]

महाभारत-कथा के हस्तलेख का समय सभा की पहली रिपोर्ट में १७६७ ई० और स्वर्गारोहण के हस्तलेख का समय १७७५ ई० बताया गया।[७] सभा की १९०६-८ की ही त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में विष्णुदासकृत 'महाभारत-कथा' का रचनाकाल १४३५ ई० बताया गया है। साथ ही विष्णुदास को गोपाचलगढ़ अथवा ग्वालियर का निवासी बताया गया है, जहाँ उस समय राजा डोंगरसिंह का राज्य था। इतिहास मे राजा डोगरसिंह का राज्यकाल सं० १४८१ से सं० १५१० विक्रमी माना गया है। अपभ्रंश के प्रसिद्ध जैन कवि रइधू ने ग्वालियर में राजा डोंगरसिंह के राज्य में ही अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मपुराण की रचना की थी।[८] इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से अपभ्रंश के प्रसिद्ध कवि रइधू तथा हिन्दी कवि विष्णुदास समसामयिक तथा एक ही स्थान के निवासी सिद्ध होते हैं।

सन् १९१२-१४ तक की सभा की खोज रिपोर्टों में विष्णुदास के निम्नलिखित साहित्य की सूचना दी गई है—

(१) स्वार्गारोहण, (२) स्वर्गारोहण पर्व, (३) महाभारत कथा, (४) रुक्मिणी मगल, (५) सनेह लीला। कृष्ण-कथा पर आधारित यह साहित्य अभी तक अप्रकाशित है। सन् १९४१-४३ की खोज रिपोर्ट में विष्णुदास की 'भाषा वाल्मीकि रामायण' रचना की सूचना प्रकाशित की गई। इस सूचना की चर्चा करते हुए डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है—

"उन्हें (विष्णुदास को) वाल्मीकि रामायण के किसी हिन्दी रूपान्तर का कर्त्ता बताया गया है। विष्णुदास नाम के भक्त एक से अधिक हुए हैं। एक विष्णुदास महाभारत के एक संक्षिप्त रूपान्तर के कर्त्ता हैं और उनका समय सं० १४९२ (सन् १४३५) माना गया है। यदि वे ही वाल्मीकि रामायण के रूपान्तर के भी कर्त्ता हों तो कुछ असम्भव नहीं है।"

परन्तु हमारा तात्पर्य 'भाषा वाल्मीकि रामायण' रचयिता विष्णुदास से है। इस काव्य में कवि ने दोहा-चौपाइयों में वाल्मीकि रामायण की कथा को संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया है। काव्य में कथा-क्रम वाल्मीकि कथा के अनुसार है। ग्रन्थारम्भ में राम-कथा की उत्पत्ति वर्णित है। तदुपरान्त श्रृगी ऋषि का आख्यान तथा राजा दशरथ को सुमन्त्र का परामर्श वर्णित है। दूसरे सर्ग में पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन है। कवि ने तीसरे सर्ग मे गगावतरण, चौथे सर्ग में विश्वामित्र-चरित्र और पाँचवें सर्ग मे विश्वामित्र-यज्ञ का वर्णन किया है। बालकाण्ड के छठे सर्ग में सीता-स्वयंवर तथा राम-वनवास की कथा विस्तार

से दी गई है। विष्णुदास ने चित्रकूट-गमन का कवित्वपूर्ण वर्णन किया है।

इस सम्पूर्ण सामग्री का निष्कर्ष यह है कि गोस्वामी विष्णुदास नाम के एक भक्त कवि ने राम-कथा को वाल्मीकीय राम-कथा के आधार पर काव्यबद्ध किया, अभी-अभी कवि की वह रचना प्रकाशित हुई है।[६] इतना तो निश्चित है कि विष्णुदास तुलसीदास से कुछ समय पूर्व हुए। हिन्दी-साहित्य के इतिहास की अधिकाँश सामग्री अभी प्रकाश में नहीं है। सम्भव है इतिहास की लुप्त शृखलाएँ उपलब्ध होने पर विष्णुदास कवि का गौरव अधिक स्पष्ट हो जाए।

दास्य-भक्त कवि ईश्वरदास

हिन्दी राम-काव्य के इतिहास मे दास्य-भक्ति का जो परिपक्व रूप गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओ में उपलब्ध होता है, उसका प्रारम्भ उनसे पूर्व भक्त कवि ईश्वरदास[१०] की रचनाओ में हो चुका था। ईश्वरदास से पूर्व हिन्दी राम-काव्य में भावना की वह प्रौढ़ता एवं प्रांजलता प्राप्त नही होती, जो ईश्वरदास की रचनाओं में उपलब्ध होती है। दास्य भाव की भक्ति के पल्लवन का श्रेय सर्वप्रथम ईश्वरदास को ही प्राप्त होता है। ईश्वरदास का सामान्य परिचय देते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है—

"शिक्षितो और विद्वानो की काव्य-परम्परा मे यद्यपि अधिकतर आश्रयदाता राजाओं के चरितो और पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यानों की ही प्रवृत्ति थी, पर साथ ही कल्पित कहानियो का भी चलन था, इसका पता लगता है। दिल्ली के बादशाह सिकन्दरशाह (स० १५४६-७४) के समय मे कवि ईश्वरदास ने 'सत्यवती कथा' नाम की एक कहानी दोहा-चौपाइयों में लिखी थी। जिसका आरम्भ तो व्यास के जनमेजय के सवाद से पौराणिक ढग पर होता है, पर जो अधिकतर कल्पित स्वच्छन्द और धार्मिक मार्ग पर चलने वाली है।"[११]

'सत्यवती कथा' के अतिरिक्त आचार्य शुक्ल ने ईश्वरदास की अन्य किसी भी रचना का उल्लेख नही किया है। नागरी प्रचारिणी सभा की १९२३-२५ की खोज रिपोर्ट में 'भरत-विलाप'[१२] की सूचना दी गई है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सन् १९४४-४६ में ईश्वरदास की एक अन्य रचना 'अंगद पैज'[१३] की सूचना दी। १९६१ में श्री उदय शंकर शास्त्री ने ईश्वरदास की रचनाओं का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया तथा 'भरत-विलाप', 'राम-जन्म' और 'अंगद पैज' के हस्तलेखों के सम्बन्ध में सूचनाएँ दीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब एक ही ग्रन्थ के अंश हैं। ईश्वरदास की रचनाओं में रामचरित-मानस का पूर्वाभास मिलता है।

कवि मुनि लावण्य

सीता-हरण की कथा को ग्रहण करके, जैन कवि मुनि लावण्य ने सन् १४४३ ई० के लगभग अपनी कृति 'रावण-मन्दोदरी संवाद' की रचना की।[१४] डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इस कृति का रचनाकाल सं० १५०० के आसपास माना है। 'रावण-मन्दोदरी संवाद' नामक एक रचना की सूचना फादर कामिल बुल्के ने अपनी पुस्तक 'राम कथा-उत्पत्ति

और विकास' मे दी है। उन्होंने इसे १६वी शती की गुजराती रचना माना है और कवि का नाम लावण्य समय दिया है।

मुनि ब्रह्मजिनदास

दिगम्बर जैन कवि ब्रह्मजिनदास की रचना 'रामचरित्र' राजस्थानी का प्रथम राम-काव्य है। इस ग्रन्थ की रचना संवत् १५०८ में हुई, जिसकी हस्तलिखित प्रति डूंगरपुर के जैन मन्दिर-भण्डार में सुरक्षित बताई जाती है। यह ग्रन्थ काफी बड़ा है और इसके विषय में विस्तृत सूचनाएँ श्री अगरचन्द नाहटा ने दी हैं जिन पर डॉ० अमरपाल सिंह ने व्यापक प्रकाश डाला है।[१५]

सूरदास

सवत् १५३५-४०[१६] में दिव्य प्रतिभा से युक्त कृष्ण-भक्ति काव्य के शिरोमणि महात्मा सूरदास ने रामचरित का उतनी ही तन्मयता से गान किया है जितनी उदारता से तुलसी-दास ने कृष्ण-चरित्र को काव्य-निबद्ध किया है। सूरदास जी कृष्णभक्ति के पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की उस कट्टर साम्प्रदायिकता से मुक्त है जिससे उस प्रम्प्रदाय का दूसरा कोई कवि मुक्त नही हो सका है। इस सम्प्रदाय के अन्य किसी कवि ने राम-कथा को अपना काव्य-विषय नही बनाया है। कृष्ण-भक्त कवि के रूप में प्रसिद्ध महात्मा सूरदास के दो सौ से अधिक पदो मे राम-कथा का रसाप्लावित वर्णन हुआ है।[१७] सूरदास एवं उनके परवर्ती तुलसीदास—दोनो ने अभेदोपासना के आधार पर राम और कृष्ण के चरित्रों को ग्रहण किया है। तुलसी के राम-काव्य एव कृष्ण-काव्य में आकार-प्रकार विषयक जो अनुपात दृष्टिगत होता है लगभग वही अनुपात सूरदास के कृष्ण-काव्य और राम-काव्य में है।

सूरदास ने रामजन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन किया है। उन्होने भागवत की उत्तमर्णता को स्पष्ट स्वीकार करते हुए लिखा है कि यह कथा राजा परीक्षित को जैसे शुकदेव ने सुनाई थी उसी प्रकार इसका सूरदास वर्णन करते हैं। सूर के राम-काव्य की एक विशेषता है—भाव-तारल्य। महाकवि ने मार्मिक स्थलों को पहचान कर अत्यन्त भावुक तन्मयता के साथ चित्रित किया है। सूर की इसी भाव-विभोरता को लक्ष्य कर डॉ० हरवंशलाल लिखते हैं—

"भगवान् के शील, शक्ति और सौन्दर्य में से हमारे कवि ने उनके सौन्दर्य-रस की मादकता में मस्त होकर 'अनजान' जो गीत गाए, उनमें न तो तुलसी के काव्य के समान शीलपालन की दृढ़ता और कठोरता है और न चारण कवियों के समान शक्ति की उद्धतता और विकटता, केवल आँखों से चुपचाप बहती हुई भावधारा है जो आराध्य के रूप-दर्शन से उद्वेलित होकर मोतियों के रूप में झर-झर ध्वनि से उसी के चरणों में ढुलक जाती है।[१८]

अतः सूर के राम-काव्य में संयोग-वियोग अवस्थाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण, गूढ़ भावों की सूक्ष्म व्यंजना के साथ-साथ उत्कृष्ट कलात्मकता के भी दर्शन होते हैं। भाव-तरलित ५ संगों में सूरदास ने निम्नलिखित प्रसंगों के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं—

(क) भरत के मुण्डित केश देखकर विह्वलतापूर्वक राम का उन्हे कठ मे लगाना, (ख) पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राम का मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडना और नेत्रों से निरतर अश्रु बहाना, (ग) राम-वनवास के अवसर पर दशरथ के व्याकुलता-कातर हृदय की दशा, आदि।

अपनी अद्भुत काव्य-प्रतिभा, सगीत-माधुरी एव गहन अन्तर्दृष्टि से सूर ने राम-काव्य को अत्यधिक चित्ताकर्षक एव समृद्ध बना दिया है। सूर के राम-कथा-विषयक योगदान की प्रशसा करते हुए डॉ० धीरेन्द्र वर्मा लिखते है—"हिन्दी-राम-साहित्य में सूरदास का योग उपेक्षणीय नही है, यही नहीं वह उल्लेखनीय भी है।"[१९]

'सूर राम चरितावली' शीर्षक से सूरदास के राम-चरित सम्बन्धी २१२ पदो का संकलन भी इधर प्रकाशित किया गया है।[२०]

गोस्वामी तुलसीदास

हिन्दी-काव्य में राम-भक्ति की अभूतपूर्व प्रतिष्ठा करके, समग्र उत्तर भारत मे उसका प्रचार करने का श्रेय केवल मात्र तुलसीदास को ही है। हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल में सन् १५३२ से १६२३ ई० तक का समय तुलसी की दिव्य प्रतिभा के आलोक से प्रकाशित रहा। अपने युग से पूर्ववर्ती सभी धारणाओं का समावेश करके उन्होने राम के चरित्र में नारायणत्व की अवतारणा की जो प्रत्येक युग के लिए एक प्रेरणा-स्तम्भ बनकर रह गई है। वे अपने चतुर्दिक फैले हुए विरोधों, अस्त-व्यवस्तताओं एव वैषम्यों मे पूर्ण सन्तुलन स्थापित करने के लिए अत्यन्त सजग एव सचेष्ट थे, और उनकी गहन युग-चेतना तथा क्रान्तदर्शिनी अनुभूति ने उन्हें उनके लक्ष्य तक पहुँचा भी दिया। वे कलिकाल के महर्षि, सनातन युग-परम्परा के महापुरुष तथा सम्भवत: महात्मा बुद्ध के पश्चात् सबसे बड़े लोक नायक हैं।[२१]

अपने साध्य के प्रति अपनी निर्मल भावना एव अनन्य निष्ठा का तुलसी ने जिस रूप में प्रेषण किया है, वह अपने आप मे अपूर्व होने के साथ-साथ व्यष्टि के रूप में समष्टि का प्रतिबिम्ब बन गया है। इसी कारण तुलसी का 'मानस' जन-मानस हो गया है।

रचनाएँ

तुलसीदास के नाम पर लगभग ३०-३२ ग्रन्थ प्राप्त होते हैं किन्तु प० रामगुलाम द्विवेदी ने केवल १२ ग्रन्थों को ही प्रामाणिक माना है और नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी ने इन्हीं १२ ग्रन्थों को ही प्रामाणिक मानकर प्रकाशित किया है।[२२] ये ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१. वैराग्य संदीपनी

प्रस्तुत रचना के नाम के अनुरूप सन्त और शांत ही इसका वर्ण्य विषय है। इसके रचना-काल के सम्बन्ध मे ठीक सवत् बता पाना यद्यपि असम्भव है तथापि विद्वानो ने इस विषय में अपनी ओर से सम्भावनाएँ व्यक्त की है। बाबू श्यामसुन्दर दास के अनुमान के अनुसार

स० १६३६ और १६३९ के बीच का समय ही इसका रचना-काल है। उनके अनुमान का आधार तुलसी के प्रति विद्वानों का वह कडा विरोध है जो उन्हें 'रामचरित मानस' की रचना के पश्चात् झेलना पडा था।[२३] और 'रामचरित मानस' का रचना-काल सभी विद्वान् स० १६३१ मानते है। दूसरी ओर पण्डित रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार तुलसी की सबसे पहली रचना 'वैराग्य सदीपनी' जान पडती है। इनके अनुसार इसका रचना-काल स० १६२० के लगभग है।[२४] वस्तुत: इतिहास-क्रम के अतिरिक्त यह ग्रन्थ अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है।

२. रामाज्ञाप्रश्न

इस पुस्तक की प्रतियाँ अनेक नामों से मिलती है—रामाज्ञाप्रश्न, रामशलाका, रघुवर-शलाका, सगुनमाला, सगुनावली, रामायण सगुनौती आदि। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने रामाज्ञाप्रश्न और रामशलाका को पृथक्-पृथक् माना है। किन्तु इस विषय के अधिकारी विद्वान् पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'रामशलाका' को अभिन्न माना है।[२५] इस ग्रन्थ मे कवि रामचरित-वर्णन की ओर प्रवृत्त हुआ है। 'रामाज्ञाप्रश्न' के रचना-काल के विषय में डॉ० उदयभानु सिंह लिखते है—"इसमें सन्देह नही कि 'रामाज्ञाप्रश्न' कवि की अभ्यासकालीन रचना है। उसका रचना-काल 'वैराग्य संदीपनी' के पश्चात् संवत् १६२७-२८ के आस-पास होना चाहिए।"[२६]

इस ग्रन्थ की कथा मानस की भाँति राम-जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक ग्रहण की गई है केवल क्रम में थोड़ा-सा अन्तर है। 'मानस' के सात सोपानो की भाँति यह ग्रन्थ सात सर्गों मे विभक्त है। प्रत्येक सर्ग मे सात सप्तक हैं और प्रत्येक सप्तक में सात दोहे। यहाँ प्रथम तथा चतुर्थ सर्ग में 'मानस' के बालकाण्ड की कथा है। द्वितीय सर्ग में अयोध्या-काण्ड तथा कुछ अरण्य काण्ड की भी। तृतीय सर्ग में अरण्यकाण्ड एवं किष्किंधाकांड की कथा है। पंचम सर्ग में सुन्दर एवं लकाकाण्ड की तथा षष्ठ सर्ग में राज्याभिषेक की कथा और कुछ अन्य कथाएँ हैं। सप्तम सर्ग में स्फुट दोहे तथा शकुन देखने की विधि है।

३. रामलला नहछू

शास्त्रीय काव्य से भिन्न लोकगीत शैली पर निर्मित महाकवि तुलसीदास की यह एक संक्षिप्त रचना है। इसके रचना-काल के विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं। कुछ इसे 'रामचरितमानस' के पश्चात् रची गई स्वीकार करते है तो कुछों के मत में वह 'मानस' से पूर्व की रचना है। डॉ० उदयभानु सिंह आदि इसे मानस के पूर्व की ही मानते है।[२७] पं० सदगुरुशरण अवस्थी के मत में वह स० १३१६ के आस-पास की रचना है।[२८] भावों के विषय मे अवस्थी जी 'नहछू' मे अप्रौढ़ता एवं युवा हृदय की उमग पाते हैं। किन्तु उनका यह विचार 'रामचरित मानस' की मर्यादापरक दृष्टि से प्रेरित है। वस्तुत: 'नहछू' लोक-गीतों की शैली पर सोहर छन्द मे लिखा गया वह मगल-काव्य है जो विवाहादि के अवसरों पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। अस्तु प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप उसमे उमंग और उत्साह को गम्भीर मर्यादित दृष्टि से तोलना उचित नहीं है। 'नहछू' के पाठ-भेद

एवं प्रामाणिक अशों के सम्बन्ध में मतभेद होने पर भी विद्वानों ने उसे सरस काव्य माना है। इस ग्रन्थ में कथा के रूप मे केवल राम-जन्म प्रसंग का वर्णन हुआ है।

४. जानकी मंगल

श्रीराम तथा जानकी के विवाह-प्रसग को लेकर लिखा गया 'जानकी मंगल' कथा क्रम की दृष्टि से कुछ अशों मे 'रामाज्ञाप्रश्न' से समानता रखता है तो कुछ तथ्यों के चित्रण में 'रामचरित मानस' से मेल खाता है। 'रामाज्ञाप्रश्न' के समान ही इसमें पुष्प-वाटिका-प्रसग छोड़ दिया गया है, राम का परशुराम से मिलन बारात की वापसी पर मार्ग में होता है और लक्ष्मण-परशुराम-विवाद नही है। 'रामचरित मानस' के समान इसमें जनक के बन्दीजन राजसभा में जनक के प्रण की घोषणा करते है और धनुर्भंग के समय लक्ष्मण दिक्पालों को सावधान करते हैं।

इस ग्रन्थ के रचना-काल के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। किन्तु 'जानकी मंगल' की शब्दावली 'उपबीत ब्याह उछाह' को 'रामचरित मानस' में ज्यों का त्यों व्यवहृत देखकर यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि 'जानकी मंगल' की रचना 'रामचरित मानस' से पूर्व ही हुई है। रचना-काल के विवादग्रस्त प्रश्न से हटकर 'जानकी मगल' का अध्ययन करने पर यही धारणा बनती है कि कवि की साधना 'जानकी मंगल' की अपेक्षा 'रामचरितमानस' में चरम विकास को प्राप्त हुई है।

५. रामचरित मानस

महाकवि तुलसीदास का 'रामचरित मानस' भारतीय संस्कृति के अतुल स्रोत प्राचीन काव्य-पुराणादि के महत् तत्त्वों का पँजीभूत रूप है। 'मानस' की महिमा के समर्थन में तुलसी-साहित्य के अधिकारी विद्वान डॉ० उदयभानुसिंह के शब्द पठनीय हैं—"तुलसीदास भक्तमाल के सुमेरु माने गए है। उनका रामचरित मानस हिन्दी-काव्यमाला का सुमेरु है। वह एक अनूठा महाकाव्य है जिसमें भक्ति की भूमि पर इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, कथाकाव्य, चरितकाव्य और लोककाव्य का अद्भुत समन्वय किया गया है।"[२९]

'रामचरित मानस' की रचना के प्रारम्भिक सवत् के विषय मे महाकवि तुलसीदास ने स्वय संकेत किया है—

संवत सोरह सै एकतीसा, करौं कथा हरिपद धरि सीसा।[३०]

प्रस्तुत ग्रन्थ एक श्रेष्ठ महाकाव्य है जिसमें दिव्य कवि-प्रतिभा, उदात्त कथा-तत्त्व, महान् नायक, विशद घटनाएँ एवं चमत्कारप्राण प्रतिपादन-शैली का अद्भुत समन्वय मिलता है। राम-जन्म की कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएँ रामावतार की पृष्ठभूमि स्वरूप ग्रहण की गई हैं तथा यत्र-तत्र अनेक अवान्तर कथाओं का समावेश होने पर भी कथा-सूत्र कहीं भी छिन्न-भिन्न नहीं हुआ है। धर्म और नीति के सिद्धान्तों का बहुश: प्रतिपादन होने पर भी रसधारा की निर्बाधता कवि की वर्णन-शैली की अनन्य विशेषता है। परम्परागत चरित्रों को ग्रहण करके भी कवि ख्यातवृत्त का निर्वाह करते हुए भी भावपूर्ण

स्थलों को अधिक मार्मिक रूप प्रदान करता हुआ वैयक्तिक विशिष्टता का परिचय दे जाता है। यही कारण है कि महाकवि तुलसीदास द्वारा अपने महाकाव्य की प्रस्तावना में उत्तमर्ण ग्रन्थों का आभार स्पष्ट रूप से स्वीकार किए जाने पर भी हम 'मानस' में विचित्र मौलिकता का आस्वाद प्राप्त करते है। रसानुभूति का श्रेष्ठ प्रमाण सहृदय है। सभी संस्कृत के (मानस के उपजीव्य) ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात् उन्ही तथ्यों को मानस में पढ़कर पाठक को पुनरावृत्ति का आभास नहीं होता अपितु उसे बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। यही 'मानस' की मौलिकता का रहस्य है।

अपनी कथा को सुगठित रूप देने के लिए महाकवि तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' में राम-जन्म से लेकर वनवास, राम-रावण-युद्ध एव राम-विजय के उपरान्त अयोध्या लौटकर राज्याभिषेक तक की कथा को ही ग्रहण किया है। संस्कृत-ग्रन्थों के अनुसार सीता-परित्याग, लव-कुश-जन्म, लक्ष्मण-त्याग आदि कथाओं को कवि ने अपने अन्य ग्रन्थों मे सकेत द्वारा अपनाया है। श्रीराम की विजयश्री से गौरव-मण्डित 'राम-चरितमानस' हिन्दी के सम्पूर्ण रामकथा-काव्यों से महत्तर, भव्य आदर्शों का युग-युगान्त-जीवी प्रकाश-स्तम्भ है।

६. गीतावली

रामचरित-सम्बन्धी विविध गीतों का संग्रह हमें तुलसी कृत 'गीतावली' अथवा 'रामगीता' में मिलता है। कवित्व प्रतिभा के धनी तुलसी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में विभिन्न अलंकारों का संगुंफन अपेक्षाकृत अधिक रुचिपूर्वक किया है। 'मानस' में जहाँ तुलसी श्रीराम के शौर्य प्रधान रूप का अकन करते हैं वहाँ 'गीतावली' में सौन्दर्य-चित्रण का लालित्य स्वाभाविक अलंकारों की योजना में विविध बिम्बों की जगमगाती चित्रावली-सा जान पड़ा है। 'गीतावली' में उत्प्रेक्षाओं का रम्य विधान उसका अपना वैशिष्ट्य है। कथावस्तु की दृष्टि से 'गीतावली' का आयाम पर्याप्त विस्तृत है। इसमें राम के जन्म से लेकर सीता-निर्वासन और लव-कुश के बाल-चरित तक विविध प्रसंगों का वर्णन है। तुलसी के अन्य किसी राम-काव्य मे सीता-निर्वासन एवं लव-कुश जन्म की कथा का सन्निवेश नहीं मिलता है। 'गीतावली' में प्रसग-चयन-विषयक मूल विशेषता है—कोमल भावपूर्ण स्थलों का तन्मयतापूर्वक वर्णन एवं परुष भावपरक प्रसंगों का त्याग। यही कारण है कि 'गीतावली' मे राम की बाल-लीला, कौशल्या की विरह वात्सल्यजन्य वेदना, विभीषण शरणागति, अयोध्या मे भरत-हनुमान-मिलन आदि चित्त को द्रवीभूत करने वाले प्रसंगों का अभिरुचिपूर्वक वर्णन हुआ है किन्तु लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, लंका-दहन, राम-रावण-युद्ध के उत्तेजनापरक कथांशों को छोड़ दिया गया है। गीतिराग-निबद्धता 'गीतावली' की अन्यतम विशेषता है।

७. विनय-पत्रिका

साहित्यिक एवं दार्शनिक उभयमूल्यनिष्ठ 'विनय-पत्रिका' तुलसीदास की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है। इस काव्य-कृति में दार्शनिक सूक्ष्म तत्त्व एवं उत्कृष्ट कवित्व-शैली के अद्भुत

समन्वय पर मुग्ध होकर कुछ विद्वान् इसे तुलसी की सर्वश्रेष्ठ रचना कहकर 'मानस' की तुलना में अग्रणी स्थान तक दे चुके हैं। भक्तिरस एव प्रपत्ति-सिद्धान्त का प्रतिपादक यह ग्रन्थ अपने आराध्य देव श्रीराम के दरवार मे पेश की गई एक अर्जी का रूप है।[३१] 'विनय-पत्रिका' में यद्यपि राम-भक्ति का अनवरत प्रभाव है तथापि उसमें विविध देवी-देवताओं की स्तुतियाँ हैं। यह शान्त-रस की रचना है जिसमें गेयता एवं रस-भावाभिव्यंजन-क्षमता भी अपूर्व है।

८. दोहावली

भक्ति-नीति, राम-प्रेम की महिमा आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित दोहों का संग्रह-ग्रन्थ 'दोहावली' है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि के जीवन-संकेत भी यत्र-तत्र बिखरे मिलते है। इसी कारण इस ग्रन्थ का रचना-काल विद्वानो के अनुसार कवि के प्रारम्भिक रचना-काल से लेकर जीवन पर्यन्त तक माना गया है। वस्तुत: दोहावली का रचना-काल निर्धारित करते समय यह कठिनाई उपस्थित होती है कि इसका प्रामाणिक पाठ उपलब्ध नहीं है, साथ ही इसमे रचित दोहों में से दो 'वैराग्य सदीपनी' में, ३५ 'रामाज्ञाप्रश्न मे और ८५ 'रामचरित मानस' मे पाये जाते हैं। शेष स्वतन्त्र रूप मे रचे गए दोहों मे से एक में रुद्र-बीसी का उल्लेख है तथा तीन दोहों में जरठपन और मृत्यु की छाया का चित्रांकन है। चातक को प्रतीक बनाकर राम-भक्त के राम-प्रेम से सम्बद्ध दोहों का सौष्ठव दोहावली की विशेषता है।

९. बरवै रामायण

बरवै छन्द में लिखी गई इस छोटी-सी पुस्तक मे 'मानस' की सम्पूर्ण कथा को निबद्ध किया गया है। यही नही 'मानस' से भाषा और सन्दर्भों का आश्चर्यजनक सादृश्य भी यहाँ देखने को मिलता है। 'मानस की भाँति 'बरवै' मे भी कथा सात काण्डों में विभक्त है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि इसकी विभिन्न प्रतियों में कहीं पाठ-भेद है तो कहीं पद्यों का क्रम भिन्न है तो कहीं पद्य-सख्याएँ भिन्न हैं। कुछ ऐसी प्रतियाँ है जिनमें केवल ६९ पद्य हैं तो कुछों मे ३६९ या ४०५ पद्य हैं। उनमें भी केवल १५ पद्य साम्य रखते हैं। इसी उलझन के कारण इस ग्रन्थ का रचनाकाल एक जटिल प्रश्न बन गया है। अनुमानत: यह ग्रन्थ भी 'कवितावली' की भाँति सकलित किया गया ग्रन्थ है। अस्तु इसकी रचनाकाल की परिधि भी कवि के प्रारम्भिक लेखन-काल से लेकर उनके जीवन पर्यन्त तक व्याप्त प्रतीत होती है। इस ग्रन्थ का कवित्व उत्कृष्ट कोटि का है तथा छन्द मुक्तक हैं।

१०. हनुमान बाहुक

यह स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर 'कवितावली'[३२] के परिशिष्ट रूप में उपलब्ध होता है जिस प्रकार कवितावली के अनेक पद्यों में कवि ने अपनी बीमारी, काशी की महामारी, आर्थिक विप्लव की स्थिति एवं मीन की शनीचरी[३३] का उल्लेख किया है उसी प्रकार

'बाहुक' में भी बाहुपीड़ा की विह्वलता का वर्णन है। कवि ने रामभक्त हनुमान जी से प्रार्थना की है कि वे उन्हें बाहु-पीडा से मुक्त करें। हनुमान-बाहुक की रचना का निश्चित समय बताना कठिन है किन्तु अधिकाँश पद्यो मे बीमारी एव जीवन के अन्तिम काल की छाया देखकर कहा जा सकता है कि यह कवि की वृद्धावस्था की रचना हो सकती है।

कवि विनयसमुद्र

ये मुनि ब्रह्मजिनदास के परवर्ती जैन कवि थे। सवत् १६०४ मे बीकानेर मे इनके ग्रन्थ 'पद्मचरित' की रचना हुई। इनकी सूचना 'जैन गुर्जर कवि', भाग-१ के पृष्ठ १६६ पर दी गई है तथा इनकी कृति का हस्तलेख गौड़ी जी के भण्डार, उदयपुर में सुरक्षित है।[३४]

मानदास

नाभादास ने अपने ग्रन्थ 'भक्तमाल' में सूचित किया है कि मध्य युग मे मानदास ने श्री रघुनाथ की गोप्य केलि प्रकट की थी। नाभादास के उपर्युक्त सकेतो से ज्ञात होता है कि 'रामायण' और 'हनुमन्नाटक' के आधार पर मानदास ने अपनी रचना तैयार की थी जिसमें श्रीराम की रसमयी लीलाओं का वर्णन था। सम्भवत: मानदास रसिक परम्परा के भक्त थे। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिलती।

अग्रदास

रामानन्द की शिष्य परम्परा में कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे—अग्रदास। ये १५७५ ई० में विद्यमान थे। इन्होने राम-काव्य में (कदाचित् सूर से प्रभावित होकर) माधुर्योपासना का समावेश किया। अग्रअली[३५] के नाम से, सीता की सखी की भावना से इन्होंने राम के प्रति माधुर्य भावना की अभिव्यक्ति की है। इनकी इस भावना को व्यक्त करने वाली दो प्रसिद्ध रचनाएँ है (क) रामाष्टयाम, (२) रामध्यानमंजरी। इधर एक तीसरी रचना 'रामज्योनार' का भी पता चला है।

'रामध्यानमजरी' में माधुर्य भाव के भक्तों के लिए राम के स्वरूप, धाम आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। राम के धनुष-बाण की वन्दना कर, कवि ने साकेत धाम, रत्नसिंहासन और राम के परिकर का वर्णन करते हुए, सुरति, विमला आदि सीता की सखियों की सेवाओं का भी वर्णन किया है।

'रामाष्टयाम' में सीतापति राम की विविध मधुर लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। नाभादास का 'अष्टयाम'[३६] इसी रचना के आधार पर पल्लवित किया गया प्रतीत होता है।

उपर्युक्त रचनाओ के अतिरिक्त अग्रदास के कुछ स्फुट छप्पय भी हैं, जो राम-भक्ति से सम्बन्धित है। राम-भजन, मजरी, पदावली, हितोपदेश भाषा, उपासना बावनी अग्रसार, रहस्यत्रय और कुण्डलिया आदि रचनाएँ भी इनके नाम से कही जाती हैं।[३७] अग्रअली की यह मधुर उपासना-धारा तुलसी के मर्यादावाद के सामने बहुत दिनों तक

दबी रही, किन्तु प्राय: सौ वर्ष पीछे बड़े वेग से बह निकली और तदनन्तर हिन्दी का प्राय: सारा रामभक्ति-साहित्य उसमें सराबोर हो गया। इस मधुर धारा का सूत्रपात निस्सन्देह कृष्णभक्ति-धारा के प्रभाव और अनुकरण से हुआ था।

मुनिलालकृत 'रामप्रकाश'

तुलसी के समकालीन कवि मुनिलाल ने अपने ग्रन्थ 'रामप्रकाश' की रचना सन् १५८५ ई० में की। बहुमत से यह रचना तुलसीदास की रचनाओं की समकालीन स्वीकार की गई है। यह एक सुन्दर राम-काव्य है।[३८]

महाराज पृथ्वीराज

महाराज पृथ्वीराज का ग्रन्थ 'दशरावउत' राम-भक्ति की ग्रंथ-परम्परा का निर्वाह करता है। इस ग्रन्थ का रचना-काल १६०० ई० पूर्व माना गया है। महाराज पृथ्वीराज का देहान्त सन् १६०० ई० में हुआ था अत: प्रस्तुत ग्रन्थ का रचनाकाल निर्विवाद रूप से १६०० ई० से पूर्व स्वीकार किया जा सकता है। इस ग्रन्थ के विषय में और अधिक सूचना उपलब्ध नहीं होती।

भक्तप्रवर नाभादास

अग्रदास जी के शिष्य नाभादास 'नाभाअली' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। नाभादास का जन्म दक्षिण में हुआ था। प्रियादास[३९] का मत है कि ये जन्मांध थे और इस अनाथ अन्ध बालक का पालन कील्हदास ने किया तथा उनकी कृपा से आँखें खुल गईं। ये तुलसीदास के समकालीन थे। इनका 'भक्तमाल' १५८५ ई० में लिखा गया। शुक्ल जी ने इन्हें १६०० ई० के आसपास वर्तमान माना है। नाभादास की तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—(१) भक्तमाल (२) रामाष्टयाम (ब्रजभाषा गद्य मे), (३) रामाष्टयाम (काव्य-ग्रन्थ)।[४०] इनकी कृतियों मे केवल 'भक्तमाल' अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी। नाभादास की गणना केवल रसिक भक्तों में ही नहीं बल्कि भक्ति आन्दोलन के इतिहास में साम्प्रदायिक इतिहासकार के रूप में भी की जानी चाहिए।[४१] 'भक्तमाल' में २०० भक्तों का गुणगान किया गया है। इसमे दी गई सामग्री का उपयोग विशुद्ध इतिहास की भाँति तो नहीं किया जा सकता। फिर भी कवि ने अपनी भक्त सुलभ भावुकता में भी भक्तों की भक्ति-पद्धति का ठीक ही मूल्यांकन किया है।

केशवदास

राम-भक्ति की अविरल परम्परा में कविवर केशवदास का महत्त्वपूर्ण स्थान उनके ग्रन्थ रामचन्द्रिका के कारण है। संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हनुमन्नाटक' एव 'प्रसन्नराघव' विशेषत: रामचन्द्रिका के उपजीव्य ग्रन्थ हैं। इन्हीं उत्तमर्ण ग्रंथों से प्रेरित हो कविवर केशवदास ने सन् १६०१ ई० में इस प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य की रचना की। काल-क्रम की दृष्टि से केशव मध्यकालीन भक्त कवियों की गणना में आते हैं किन्तु अपनी अनन्य

अलंकारप्रियता, बहुज्ञान-प्रदर्शन एव चमत्कार सृष्टि की सायास निबन्धनाओं के कारण वे रीतिकालीन काव्य-मर्म को भी स्पर्श कर जाते हैं। इसी कारण कुछ विद्वान् उन्हे भक्ति काल की परिधि में मानते हैं तो अन्य कुछ दूसरे विद्वान् उन्हे रीतिकाव्य परम्परा का प्रवर्त्तक स्वीकार करते हैं। इतना तो स्पष्ट है कि केशव में भक्तिकालीन कवियो की-सी निर्मल भक्ति-चेतना का अभाव है, उनमे अन्ध श्रद्धा की अपेक्षा बुद्धि की जागरूकता अधिक है।

राम-कथा को लेकर लिखा गया काव्य—'रामचन्द्रिका' चमत्कारपूर्ण उक्तियों का संग्रह अधिक है मर्मस्पर्शी भावनाओं की गाथा कम।[४२] चरित्र-निरूपण, भाव-संप्रेषण, प्रबन्ध-पटुता एवं भाषा-शैली की दृष्टि से यह काव्य साधारण है। रस-परिपाक की अपेक्षा उक्तिवैचित्र्य के सृजन में कवि की चेतना अधिक संलग्न रही है। दुरूह कल्पनाओं एवं श्लिष्ट उक्तियों ने काव्य को दुर्बोध एवं शुष्क बना दिया है। फिर भी कहीं-कहीं मार्मिक उक्तियाँ स्वयं आ गई हैं—जैसे हनुमान का सीता के प्रति कथन द्रष्टव्य है—

तुम पूछति कहि मुद्रिके मौन होति यहि नाम।
कंगन की पदवी दई तुम बिन या कहं राम।

'रामचन्द्रिका' में संवाद-योजना वास्तव मे सुन्दर, आकर्षक एव सरस बन पड़ी है। जनकपुर में धनुषयज्ञ के अवसर पर लक्ष्मण-परशुराम का, लका मे रावण और अंगद का वार्तालाप युक्तियों एवं मनोहारी तर्कों का अनुपम भण्डार है। कथोपकथन में केशव अपना विशिष्ट स्थान रखते है। चटकीले संवादों के साथ-साथ केशव ने वस्तुओ और व्यापारों का अत्यन्त स्वाभाविक तथा सहज वर्णन किया है। 'रामचन्द्रिका' के अतिरिक्त केशव के अन्य अनेक ग्रंथ हैं किन्तु वे रामकथा के विषय को लेकर नही लिखे गए।

प्राणचन्द चौहान

इन्होंने १६१० ई० में 'महारामायण' नाटक लिखा।[४३] रामकाव्य-परम्परा में इनका योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। इसके कथोपकथन कवित्त-सवैया में हैं तथा बहुत ही सरस प्रांजल एवं व्यवस्थित ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया है। यहाँ संवाद-शैली का आश्रय लेकर राम के परम्परागत निर्गुण-सगुण रूप का ध्यान करते हुए उन्हे आदि पुरुष स्वीकार किया गया है।

हृदयराम

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ हनुमन्नाटक के आधार पर हिन्दी मे कवि हृदयराम ने एक नाट्य-काव्य की रचना सन् १६२३ ई०[४४] के आस-पास की। यह कृति सस्कृत के हनुमन्नाटक पर आधारित अवश्य है किन्तु उसका भाषानुवाद मात्र नहीं है। भाषा एवं रचना-शिल्प की दृष्टि से कवि की मौलिकता उल्लेखनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उस युग के रामचरित सम्बन्धी रूपकों या नाटकों में हृदयराम के हनुमन्नाटक को सर्वाधिक प्रसिद्ध कहा है और इनकी काव्य-शक्ति की प्रशंसा भी की है। शुक्ल जी की इस मान्यता की

प्रस्तुत करते हुए डॉ० रतिभानुसिंह ने भी इस ग्रंथ का भक्ति आंदोलन की दृष्टि से महत्त्व सिद्ध किया है।[४५] इस रचना की मौलिकता के सम्बन्ध मे दशरथ ओझा लिखते हैं—"हृदयराम का हनुमन्नाटक संस्कृत के ग्रंथ हनुमन्नाटक से अनूदित है किन्तु कुल मिला कर यह उक्त ग्रंथ पर आधारित मौलिक कृति है।"[४६] नाटकीय तत्त्वों से युक्त इस सुन्दर काव्य का नाम 'हनुमन्नाटक' क्यों पड़ा, इस सम्बन्ध में बाबू रामकृष्ण वर्मा ग्रन्थ की भूमिका मे लिखते है—"इस ग्रथ मे जो नाटक शब्द है उसमें वह तात्पर्य नही है जो आजकल के नाटक से समझा जाता है। यह संस्कृत के हनुमन्नाटक अर्थात् महानाटक का अनुवाद है। इसकी कविता और उसकी श्लोक की कविता प्राय: कई स्थानों पर एक रंग मिलती है। इसी कारण इसे हनुमन्नाटक कहा जाता है।" इस ग्रथ की भाषागत चारुता एवं सरसता के उदाहरण स्वरूप एक छन्द द्रष्टव्य है—

जानकी को मुख न बिलोक्यो, ताते कुण्डल न,
जानत हौं वीर पांव छुवं रघुराई के।
हाथ जो निहारे नैंन फूटियो हमारे,
ताते कंकन न देखे, बोल कह्यो सत भाइ के।
पांयन के परिबें कौ नाते दास लछमन,
याते पहिचानत है भूषन ने पायं के।
बिछुआ हैं एई अरु झांझहैं एई जुग,
नूपुर हैं तेई राम जानत जराइ के।

मलूकदास

लगभग १६२३ ई० में मलूकदास सन्त ने राम-कथा को आधार बनाकर अपने ग्रथ 'रामावतार-लीला' की रचना की। सन्त मलूकदास की भाषा अत्यन्त सरल, प्रवाहमयी एवं व्यावहारिक है, उदाहरणार्थ—

जेते सुख संसार के इकठे किए बटोरि।
कन थोरे कांकर घने देखा फटकि पछोरि॥

राम की महिमा का गुणगान करने वाले इस ग्रंथ में व्यावहारिक भाषा में अत्यन्त साधारण लोक-अनुभवों को प्रस्तुत किया गया है।

माधवदास चारण

ये मारवाड़ निवासी थे तथा दधिवरिया जाति के चारण थे। 'गुणराय रासो' तथा 'राम रासौ' नामक ग्रंथों का इन्होंने प्रणयन किया। ये सवत् १६७५ के लगभग वर्तमान थे।[४७]

लालदास

इन्होंने सन् १६४३ ई०[४८] में 'अवध विलास' नामक राम-काव्य की रचना की। यह ग्रन्थ दोहा-चौपाई छन्दों में लिखा गया है। आकार में बड़ा होने पर भी यह ग्रन्थ सामान्य ही

है।[४६] डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने लालदास की गणना रसिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत की है।[५०] नागरी प्रचारिणी सभा की १९१७ की खोज-रिपोर्ट में 'अवध-विलास' एवं लालदास का उल्लेख है। वहाँ इस ग्रन्थ के प्रारम्भ एवं अन्त के अंश भी उद्धृत किये गए हैं। नागरी प्रचारिणी जाने पर प्रस्तुत लेखिका को यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका। किन्तु काशी के एक प्राचीन पुस्तक विक्रेता से लालदास कृत 'अवध विलास' की एक खण्डित प्रति प्रस्तुत लेखिका को उपलब्ध हुई है। इस प्रति का लिपि-काल पुस्तक की पुष्पिका में सं० १८२८ दिया गया है। इसके प्रथम नौ विश्राम लुप्त हैं। दसवां विश्राम भी अधूरा है। उससे आगे बीस विश्राम तक इस ग्रन्थ में राम-जन्म से लेकर वनवास तक की कथा वर्णित की गई है। कथा का अंश पूर्ण होने के कारण इसे प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत समाविष्ट कर दिया गया है। एक विचित्र बात यह है कि इस ग्रन्थ का अन्तिम अंश नागरी प्रचारिणी सभा की १९१७ की खोज-रिपोर्ट के अन्तर्गत उद्धृत अश से बिल्कुल भिन्न है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि इसके अन्तर्गत कही भी रसिक-सम्प्रदाय का संकेत उपलब्ध नहीं होता है। इस विषय में पर्याप्त खोज की आवश्यकता है। इस खोज से 'अवध विलास' के रचयिता कवि लालदास के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा। इस ग्रन्थ में काली स्याही एवं लाल गेरू का प्रयोग किया गया है। राम-जन्म के प्रसंग में श्री राम की जन्म-कुण्डली को रंगों से सजाकर प्रस्तुत किया गया है। अन्त में संलग्न पुष्पिका को भी सजाया गया है।

सेनापति

कविवर सेनापति के दो ग्रन्थ कहे जाते हैं—१. कवित्त रत्नाकर २. काव्य कल्पद्रुम, जिनमें से प्रथम में रामकथा का कवि ने कतिपय सर्गों में वर्णन किया है। 'कवित्त रत्नाकर' की चौथी तरंग 'रामायण-वर्णन' और पाँचवीं तरंग 'रामरसायन-वर्णन' में राम-कथा को छन्दोबद्ध किया गया है। इन्होंने अपने सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना घनाक्षरी छन्द में की है। यमक, श्लेष, अनुप्रास आदि अनेक अलंकारों का चमत्कारमूलक प्रयोग होने पर भी सेनापति की भाषा में सहज आकर्षण शक्ति विद्यमान है।

सेनापति का काव्य प्रसाद एवं माधुर्यादि गुणों से पूरित है। उनकी भाषा भावपूर्ण एवं प्रभावात्मक है, उक्तियों में सर्वत्र नवीन सूझ के दर्शन होते हैं। रामचरित-विषयक छन्दों में सेनापति ने सजीव एव ओजस्वी भाषा का प्रयोग किया है। यों तो सेनापति अपने ऋतु-वर्णन के लिए प्रसिद्ध हैं (क्योंकि वे रीतिकाल की विदग्ध कवि-परम्परा में आते हैं), किन्तु वे तुलसी के उत्तर-समसामयिक एव केशव के समकालीन होने के कारण रीति-परम्परा के समान भक्ति-परम्परा से भी जुड़े हुए हैं। भक्ति-सिद्धान्त की दृष्टि से सेनापति तुलसी की मर्यादामूलक परम्परा में आते है। उन्होंने राम के लोकोपकारी गुणों का तन्मयता से वर्णन किया है। राम के शौर्य एव पराक्रम का वर्णन सेनापति ने अत्यन्त ओजस्वी शब्दावली में किया है। राम के सौन्दर्य-चित्रण का प्रयत्न उन्होंने बहुत कम किया है। सेनापति की ओजस्वी शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

तोरयो है पिनाक नाकपाल बरसत फूल,
सेनापति कीरति बखानैं रामचंद की।
लै कै जयमाला सिय बाल हैं बिलोकी छवि,
दशरथ लालके वदन अरविन्द की।
परी प्रेमफंद बाढ्यो है अनंद अति,
आछी मंद मंद चाल चलनि गयंद की।
बरन कनक बनी बानक बनक आई,
झनक भनक बेटी जनक नरिन्द की।[५१]

उक्ति-सौष्ठव की दृष्टि से कवि सेनापति की समानता विरल कवि ही कर सकते हैं।

नहरदास बारहट

सत्रहवीं शताब्दी में सुकवि नहरदास[५२] बारहट ने अपने विशाल ग्रन्थ 'अवतार चरित्र' की रचना की। इस ग्रन्थ में विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है जिनमें राम एवं कृष्ण का चरित्र-वर्णन व्यापक एवं विस्तृत है। इस ग्रन्थ के राम-चरितांश को कवि ने 'पौरुषेय रामायण' कहा है। प्रस्तुत नाम के अनुरूप इस अश में धनुर्धारी राम के पराक्रम की जना की गई है। 'रामचरित मानस' एव 'रामचन्द्रिका' इस ग्रन्थ के उत्तमर्ण ग्रन्थ हैं। कहीं-कही इन ग्रन्थों का प्रभाव कवि की भाषा में तुलसी एव केशव की झलक प्रस्तुत कर देता है। इसी प्रभाव के कारण अनेक आलोचकों ने 'नरहर' को चोर कवि कहा। इसी कारण ब्रजभाषा का यह सुकवि इतने दिन तक उपेक्षित रहा। कवि ने अपने ग्रन्थ का समापन काल सं० १७३३ दिया है। किन्तु मिश्र बन्धुओं ने इस कवि का रचनाकाल सं० १७०७ माना है।[५३] वस्तुतः यह कवि हमारी अध्ययन-सीमा का अन्तिम कवि जान पड़ता है। इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति की सूचना मोतीलाल मेनारिया ने दी है।[५४]

निष्कर्ष

पूर्व उल्लिखत प्रसिद्ध राम-काव्यों के अतिरिक्त सन् १४५० से १६५० ई० की अवधि में मुक्तक पद एवं दोहों के रूप में फुटकर साहित्य की रचना भी हुई है। यह मुक्तक राम-साहित्य विवेचन की दृष्टि से महत्व न रखता हुआ भी इतिहास की दृष्टि से नगण्य नहीं है। 'भक्तमाल' में मानदास, मुरारिदास, मुक्तामणिदास, खेमाल रतन आदि अनेक राम-कवियों एवं रचनाओं की सूचना मिलती है किन्तु उनके ग्रन्थ अभी उपलब्ध नहीं हो सके हैं। कुछ प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के लेखक अज्ञात हैं तो किसी में पुष्पिका प्रक्षिप्त है। कुछ ग्रन्थ अपूर्ण है तो कुछ कवियों का व्यक्तित्व सन्देहास्पद है। मध्ययुग की इस अवधि के राम-साहित्य के सम्बन्ध में इसी प्रकार के अनेक जटिल प्रश्न जुड़े हुए हैं। अस्तु हमने केवल प्रामाणिक ग्रन्थों को अपने अध्ययन में सम्मिलित किया है।

सन्दर्भ

१. सर जार्ज ग्रियर्सन —द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान ।

२. दे० नागरी प्रचारिणी सभा का खोज विवरण (१९००) संख्या ७६

३. 'भक्तमाल' को विद्वानों ने प्राय: एकमत होकर प्रामाणिक एव महत्त्वपूर्ण रचना स्वीकार किया है । इसमें अनेक भक्तों का सक्षिप्त जीवन-परिचय है ।

४. कबीर, क० ग्र०, पृ० २८

५. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा : हिन्दी साहित्य, प्रथम संस्करण १९५९

६. नागरी प्रचारिणी सभा : खोज रिपोर्ट १९०६, पृ० ९२, संख्या २४८

७. डॉ० अमरपाल सिह : तुलसी-पूर्व राम-साहित्य, प्रथम संस्करण १९६८, पृ० १३४

८. डॉ० हरिवश कोछड़, अपभ्रश साहित्य, पृ० २४०

९. विष्णुदास : रामायन कथा, स० पण्डित लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी ।

१०. डॉ० सियाराम तिवारी ने 'भरत विलाप' के रचयिता का नाम ईश्वरदास न मान कर तुलसीदास माना है—हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, पृ० १००

११. आचाय रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास ।

१२. डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने ईश्वरदास की कुछ रचनाओं का सम्पादन 'ईश्वरदास सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ' शीर्षक से किया है जिनमें 'भरत विलाप' सकलित है ।

१३. नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में कवि लाल कृत 'अगद पैज' का भी उल्लेख है जिसका रचना-काल अज्ञात बताया जाता है—ना० प्र० स० ह० लि० ग्र० क्र० २६४७।१५८९

१४. नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट सन् १९००, पृ० ७३, संख्या ८५

१५. डॉ० अमरपाल सिह : तुलसी-पूर्व राम-साहित्य, पृ० २३०

१६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास का जन्म संवत् १५४० माना है किन्तु दीनदयालु गुप्त आदि विद्वानों ने संवत् १५३५ में सूरदास की जन्मतिथि वैसाख शुक्ल पंचमी मानी है—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय ।

१७. श्रीमद्भागवत की कथा पर आधारित 'सूर सागर' के नवम स्कंध में १५८ पदों में राम-अवतार का वर्णन किया गया है । 'सूर सागर' के अन्य स्थलों पर भी रामचरित सम्बन्धी ९८ पद मिलते हैं । विशेष विवरण के लिए देखिए—डॉ० अमरपाल सिह कृत तुलसी-पूर्व राम साहित्य, पृ० १९७

१८. डॉ० हरवंशलाल : सूर और उनका साहित्य, पृ० २८६

१९. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा : हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड ।

२०. गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित ।

२१. तुलसी को नाभादास ने कलिकाल का वाल्मीकि, स्मिथ ने मुगल काल का सबसे बड़ा व्यक्ति और ग्रियर्सन ने बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोक नायक कहा है ।

२२. 'श्रीकृष्ण गीतावली' तथा 'पार्वती मगल' राम-कथा विषयक रचनाएँ नहीं हैं ।

२३. श्यामसुन्दर दास : गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ७६, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद १६५२ ई०
२४. पं० रामनरेश त्रिपाठी : तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० २२३, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली १६५८ ई०
२५. पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० २३८, वाराणसी, सं० २०१५
२६. डॉ० उदयभानु सिंह : तुलसी काव्य मीमांसा, पृ० ८७, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १६६६
२७. डॉ० उदयभानु सिंह ने 'रामलला नहछू' का रचना-काल सं० १६२८-२६ के लगभग माना है।
२८. सदगुरुशरण अवस्थी : तुलसी के चार दल, पहली पुस्तक, पृ० ६६, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सन् १६३५
२६. डॉ० उदयभानु सिंह : तुलसी-काव्य मीमांसा, पृ० ४०१, राधाकृष्ण प्रकाशन, १६६६ ई०
तुलसीदास : रामचरित मानस, १।३३।२
मुस्लिम प्रभाव के कारण तुलसी की पत्रिका में श्रीराम और उनके प्रति प्रेषित पत्रिका का वातावरण बिल्कुल मुस्लिम दरबारी होने के कारण हमारा उर्दू मिश्रित वाक्य उपयुक्त ही है।
३२. पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसे कवितावली कहते है।
३३. कवितावली, ७।७३, ७।१७६, ७।६७, ७।१७७
३४. डॉ० अमरपाल सिंह : तुलसी-पूर्व राम-साहित्य, पृ० २३४
३५. धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा : हिन्दी साहित्य, सं० १६५६
३६. वही
३७. इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण पठनीय हैं—

(क) पहरे राम तुम्हारे सोवत, मैं मतिमंद अंध नहिं जोवत।
अपमारग मारग महि जान्यो इन्द्री पोषि पुरुषारथ मान्यो।
औरनि के बल अनत प्रकार, अगरदास के राम अधार।

(ख) रघुबर लागत है मोहि प्यारो।
अवधपुरी सरयू तट बिहरै दशरथ प्राण पियारो,
क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल पीतांबर पटवारो।
नयन विशाल माल मोतियन की सखि तुम नेक निहारो,
रूप स्वरूप अनूप बनो है चित्त ते टरत न टारो।
माधुरि मूरति निरखो सजनी कोटि भानु उजियारो,
अग्रअली प्रभु की छवि निरखे जीवन प्राण हमारो।

(ग) कुंडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा,
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा।

मेचक कुटिल बिसाल सरोरुह नैन सुहाये,
मुख पंकज के निकट मनो अलि छौना छाये।

(घ) नदी किनारे रूखड़ा जब कब होइ बिनास।
जब कब होइ बिनास देह कागद की छागर,
आयु घटै दिन रैन सदा आमय को आगर।

× × ×

अग्र भजन आतुर करो जौ लौं पंजर श्वास,
नदी किनारे रूखड़ा जब कब होई बिनास।

३८. खेद है यह ग्रन्थ प्रस्तुत लेखिका को देखने को नहीं मिल सका।

३९. नाभादास कृत 'भक्तमाल' के प्रसिद्ध टीकाकार।

४०. अवधपुरी शोभा जैसी, कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी।
रचित कोट कलधौत सुहावन, बिबिध रंग मति अति मन भावन।
चहुं दिसि विपिन प्रमोद अनूपा, चतुर बीस जोजन रस रूपा।
सुदिसि नगर सरजू सरि पावनि, मनिमय तीरथ परम सुहावनि।
बिगसे जलज भृंग रस भूले, गुंजत जल समूह दोउ कूले॥
परिखा प्रति चहुं रिसि लसति कंचन कोटि प्रकास,
बिबिध भांति नग जगमगत प्रति गोपुर पुर पास।

—नाभादास, अष्टयाम

४१. डॉ० मलिक मोहम्मद : वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० ३९९

४२. आचार्य शुक्ल ने केशव पर हृदयहीनता का आरोप लगाते हुए लिखा है—"केशव में हृदय का तो कहीं पता ही नहीं। वह प्रबन्ध पटुता भी उनमें नाम को नहीं जिससे कथानक का सम्बन्ध निर्वाह होता है। उनकी रामचन्द्रिका फुटकर पद्यों का संग्रह सी जान पड़ती है।" —रामचन्द्र शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १५३

४३. प्रस्तुत लेखिका को इस ग्रन्थ के केवल ६ पत्र नागरी प्रचारिणी सभा के आर्य भाषा पुस्तकालय में उपलब्ध हो सके। अस्तु इसे विवेचन में सम्मिलित नहीं किया जा सका है—देखिए—नागरी प्रचारिणी सभा, हस्तलेखों की सूची, ग्रन्थ क्रमांक ७२५।५२५

४४. 'हनुमन्नाटक' के सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्मा ने हृदयराम को जहाँगीर के समय का बताया है। उनके शब्दों में—"जहाँगीर बादशाह के समय कोई हृदयराम कवि थे।"

४५. डॉ० रतिभानु सिंह 'नाहर' : भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० ३२३

४६. डॉ० दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, पृ० १४१-४३

४७. नागरी प्रचारिणी सभा, हस्तलिखित ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय (भाग-१) सम्पादक—श्यामसुन्दरदास, बी० ए०, विवरण संख्या ख-८०, पृ० ११८

४८. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

४९. वही

५०. डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय।

५१. सेनापति, कवित्त रत्नाकर, ४।१७

५२. इस कवि के नाम के सम्बन्ध में एक भ्रान्त धारणा बन गई है। प्रसिद्ध महात्मा नरहरिदास एवं अन्य प्रसिद्ध नरहरि नामक कवियों के नामानुरूप होने के कारण इस कवि को 'नरहरिदास' लिखने की परम्परा-सी चल पड़ी है। किन्तु कवि ने अपने ग्रन्थ मे सर्वत्र अपना नाम नहरदास लिखा है। उसके नाम सम्बन्धी भ्रान्ति को दूर करने का यह एक पुष्ट प्रमाण है। परम्परानुसार लेखिका ने भी कवि को नरहरि ही कहा है।

५३. मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४८३

५४. हिन्दी के राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग-१, प्रथम संस्करण १९४२

२

स्वभावोक्ति अलंकार : स्थापना और इतिहास

अर्थ

स्वभावोक्ति शब्द में स्पष्टतः दो शब्दों—स्वभाव तथा उक्ति—का योग है। 'हिन्दी शब्द सागर' तथा 'हिन्दी साहित्य कोश' में स्वभाव शब्द का अर्थ दिया गया है—बान, टेप, प्रकृति या मूलधर्म। 'उक्ति' शब्द का अर्थ भोज के 'शृगार प्रकाश' में काव्यमय अभिव्यक्ति – डॉ० राघवन के शब्दों में 'पोइटिक एक्स्प्रैशन' किया गया है जो अत्यन्त सटीक है।[1] कोश-ग्रन्थों एव अलकारशास्त्र के इतिहास में स्वभावोक्ति को एक वस्तुमूलक अर्थालंकार के रूप में मान्यता मिली है।

वस्तु के स्वभाव को यथावत्—न घटा कर, न बढा कर—प्रकट करना ही स्वभाव-कथन है। स्वभाव का अर्थ है मूल, गुण या प्रकृति। जैसे शिशु का स्वभाव होता है कि वह प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति की ओर आश्चर्यचकित होकर देखता है। यदि उसके इस स्वभाव का सामान्य वर्णन कर दिया जाए तो वह स्वभावोक्ति अलकार होगा। यह एक वस्तुमूलक अलकार है जो वर्ण्य विषय मे एक चमत्कार उत्पन्न कर देता है।

इस अलकार की दो विशेषताएँ हैं—(१) इसमे किसी वस्तु या व्यक्ति के स्वरूप एवं क्रियादि का यथावत् वर्णन रहता है। काव्य में वर्णित इन विशिष्ट क्रियादि की ओर साधारण मनुष्य का ध्यान नही रहता। कवि अपनी सूक्ष्म प्रतिभा से इनका साक्षात्कार करके इन्हें प्रस्तुत करता है। (२) चमत्कार अलंकार का प्राण-तत्त्व है, अतः इस अलंकार में भी उसका होना अत्यन्त आवश्यक है। वस्तु के स्वभाव मात्र के वर्णन को स्वभावोक्ति नहीं कहते, उदाहरणार्थ—पशुओं की सामान्य क्रियाएँ—मूत्र-मोचनएवं पुरीष-मोचन—स्वाभाविक क्रियाएँ हैं, किन्तु उनके वर्णन में चमत्कार न होने के कारण हम उन्हें स्वभावोक्ति अलकार नहीं कह सकते।

स्थापना एवं इतिहास

भारतीय काव्यशास्त्र में स्वभावोक्ति अलंकार का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन है। अग्नि-पुराण में स्वभावोक्ति का निरूपण 'स्वरूप' के नाम से किया गया है—

स्वभाव एव भावना स्वरूपमभिधीयते।[2]

स्वरूप दो प्रकार का होता है—(१) निज, (२) आगन्तुक। स्वभावसिद्ध निज है और

किसी निमित्त से आया हुआ आगन्तुक—"निजमागन्तुकञ्चेति द्विविध तदुदाहृतम्। सांसिद्धिकं निजं नैमित्तिकमागन्तुक तथा।"[3] यहाँ यही स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि वस्तु के निज (स्वभावसिद्ध, किसी प्रकार के भी निमित्तों से रहित) स्वरूप का आख्यान ही स्वभाव अलकार है।

डॉ० पी० वी० काणे के अनुसार 'अग्निपुराण' परवर्ती ग्रन्थ है, उसकी अपेक्षा 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' प्राचीन है जिसमे स्वभावोक्ति का स्पष्ट उल्लेख हुआ है, यथा—

यथा स्वरूपकथनं वार्तेति परिकीर्तितः।

श्री काणे के अनुसार 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' का अस्तित्व 'भट्टिकाव्य' की तुलना में भी प्राचीन है। 'भट्टिकाव्य' तथा बाण के 'हर्षचरित' में भी 'जाति' शब्द का प्रयोग स्वभावोक्ति के समतुल्य अर्थ में हुआ है।[4]

भरत

संस्कृत-काव्यशास्त्र का उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' है, जिसके रचयिता के रूप में भरतमुनि का नाम लिया जाता है—यद्यपि इस सम्बन्ध में यह विवाद है कि 'भरत' शब्द व्यक्ति का नही जाति का बोधक है, अस्तु नाट्यशास्त्रकार का अस्तित्व संदिग्ध है। 'नाट्यशास्त्र' मे उपमा, रूपक, दीपक और यमक—इन चार अलंकारों और ६६ लक्षणों का निरूपण किया गया है। नाट्यशास्त्र मे निरूपित लक्षण अलंकारो के ही समान हैं और परवर्ती आचार्यों ने इन्हे अलकारो के रूप मे स्वीकार भी कर लिया है। किन्तु इस सम्पूर्ण विवेचन में स्वभावोक्ति का कहीं भी उल्लेख नही हुआ है।[5]

भामह

भामह ने अपने 'काव्यालकार' में स्वभावोक्ति की चर्चा जिस शब्दावली में की है वह अधिक स्पष्ट नही है और यही अस्पष्टता विद्वानों के बीच विवाद का सृजन करती है। भामह के अनुसार—

(क) **स्वभावोक्तिरलंकारः इति केचित्प्रचक्षते।**
अर्थस्य तदवस्थात्वं स्वभावोऽभिहितो यथा।[6]

(ख) **आक्रोशन्नाह्वयन्नन्यानाधावन्मण्डलंकुर्वन्।**
गा वाश्यति दण्डेन डिम्भः शस्यावतारणीः॥[7]

अर्थात् स्वभावोक्ति अलकार है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। किसी पदार्थ की जैसी भी अवस्था है उसको वैसा ही कहना स्वभाव होता है। यहाँ प्रयुक्त 'केचित्प्रचक्षते' पद को लेकर संकरन आदि विद्वान् कहते हैं कि भामह ने इस पद के प्रयोग द्वारा अपनी असहमति प्रकट की है। अर्थात् भामह कहना चाहते हैं कि वे स्वयं स्वभावोक्ति को अलकार नहीं मानते, किन्तु स्वभावोक्ति अलंकार है, ऐसा कुछ दूसरे विद्वान् कहते है। इसके विपरीत डॉ० राघवन कहते हैं कि भामह स्वभावोक्ति को अलंकार के रूप में स्वीकार करते हैं, उन्होंने उसका निषेध नहीं किया है। अपने मत की पुष्टि के लिए डॉ० राघवन एक तर्क

प्रस्तुत करते हैं कि जब कभी भामह किसी अलंकार का खण्डन करते हैं तब वे अत्यन्त स्पष्ट रूप से उसकी सत्ता का निषेध करते हैं और फिर उसका उदाहरण देने की भी आवश्यकता नही समझते। यहाँ भामह ने स्वभाव का लक्षण एव उदाहरण प्रस्तुत करके स्वभावोक्ति के अलकारत्व मे अपनी सहमति व्यक्त की है। 'केचित्प्रचक्षते' पद का जहाँ तक सम्बन्ध है, डॉ० राघवन उसे एक वर्णन-परम्परा का द्योतक सामान्य वाक्य मात्र कहते है।

इस सन्दर्भ मे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि वक्रोक्ति को अलकार का प्राण मानने वाले (कोऽलकारोऽनया (वक्रोक्त्या) विना) 'तथा स्वभावोक्तिरलंकारः' कहने वाले भामह के इन परस्पर विरोधी वाक्यों में क्या सामजस्य है। डॉ० नगेन्द्र[८] ने भामह द्वारा स्थापित इन दो भिन्न विचारधाराओं मे समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है।[९]

डॉ० नगेन्द्र ने वक्रोक्ति और स्वभावोक्ति में वैशिष्ट्य के आधार पर जो समानता खोजी है वह तो उचित ही है परन्तु इन दोनों अलंकारों की मूल प्रकृति ही भिन्न है। जहाँ स्वभावोक्ति अभिधामूलक है वहाँ वक्रोक्ति अभिधा का निषेध करके लक्षणा और व्यंजना पर ही आश्रित रहती है। अभिधा को ही एकमात्र शक्ति मानने वाले महिमभट्टाचार्य ने इसीलिए स्वभावोक्ति की स्थापना पर इतना बल देते हुए उसके अलंकारत्व की संसिद्धि की है। वक्रोक्ति में अर्थ की वक्रता आवश्यक है किन्तु स्वभावोक्ति मे अर्थ का अभिधात्मक चित्र। दोनों अलंकारो में वही अन्तर है जो सरल और वक्र में होता है। कल्पनागत वैशिष्ट्य की समानता तो दोनों में गौण है, उसकी अपेक्षा दोनों अलंकारों का प्रकृतिगत मूल अन्तर अधिक है। डॉ० नगेन्द्र ने भामह की स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति में जो सामंजस्य घटित किया है तथा डॉ० राघवन ने संकरण आदि के मत का खण्डन करके 'केचित्प्रचक्षते' को जो वर्णन-परम्परा का सामान्य वाक्य कहा है—इन दोनों धारणाओं के मूल में एक ही बात है, वह यह कि भामह ने स्वभावोक्ति की अलंकारता को स्वीकार किया है। इस विवाद में न पड़कर भामह द्वारा प्रयुक्त 'केचित्प्रचक्षते' पद से हम इतना तो समझ ही सकते है कि भामह से पूर्व स्वभावोक्ति की अलंकारता की प्रबल प्रतिष्ठा करने वाली एक आचार्य-परम्परा अवश्य रही होगी जिसका हमें अभी तक कोई उचित प्रमाण नहीं मिल पाया है।

दण्डी

भामह के पश्चात्[१०] दण्डी ने स्वभावोक्ति को आदि अलकार के रूप में अर्थालकारो में सर्वप्रथम स्थान देकर उसका विस्तार से विवेचन किया। उनके अनुसार—

> नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती।
> स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा॥[११]

अर्थात् विभिन्न अवस्थाओं में पदार्थ के स्वरूप का साक्षात् वर्णन करता हुआ अलंकार स्वभावोक्ति या जाति कहलाता है। इस लक्षण में प्रयुक्त 'साक्षात्' पद के अर्थ के विषय में मतभेद है। तरुण वाचस्पति ने साक्षात् का अर्थ किया है—प्रत्यक्षमिव दर्शयन्ती—अर्थात्

प्रत्यक्ष-सा दिखाती हुई। हृदयंगम टीका मे साक्षात् का अर्थ किया गया है—अव्याजेन—प्रकृत रूप में।[१४] डॉ० नगेन्द्र ने दूसरे अर्थ को ही प्रसंगानुसार अधिक संगत स्वीकार किया है क्योंकि स्वभावोक्ति के उदाहरणों में सजीवता की अपेक्षा अव्याजता (शुद्ध, प्रकृत, छल रहित वर्णन) ही अधिक होती है। दूसरा कारण यह भी है कि दण्डी ने स्वभावोक्ति को वक्रोक्ति से पृथक् स्वीकार किया है।[१३] तीसरे उन्होंने जाति, द्रव्य, गुण एवं क्रिया की स्वभावोक्ति के रूप में इसके चार भेद किए हैं तथा अन्त में कहा है—'शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्यं काव्येष्वप्येतदीक्षितम्'—अर्थात् शास्त्रों (इतिहास, पुराणादि) में तो इसी का साम्राज्य है, पर काव्यों में भी यह अभीष्ट है।

दण्डी के सम्पूर्ण दृष्टिकोण का अवलोकन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे इसे प्रथम महत्त्वपूर्ण एवं सहज सौन्दर्य-विधायक अलंकार मानते हैं। वे स्वभावोक्ति का मूल तत्त्व अव्याजत्व—(छल-रहित, बाह्य कल्पना, भावना रहित) पदार्थ के प्रकृत रूप-वर्णन को मानते हैं।

उद्भट

उद्भट ने तृतीय वर्ग में जिन अलंकारों की चर्चा की है उनमें स्वभावोक्ति को भी ग्रहण किया है। उन्होंने स्वभावोक्ति का लक्षण इस प्रकार किया है—

क्रियायां संप्रवृत्तस्य हेवाकानां निबन्धनम्।
कस्यचिन्मृगडिम्भादेः स्वभावोक्तिरुदाहृता॥[१४]

अर्थात् (अपनी जाति के उचित) क्रिया में लगे हुए किसी मृग-शावक आदि की चेष्टाओं के वर्णन को स्वभावोक्ति कहा गया है। यहाँ 'मृगडिम्भादेः' पद का प्रयोग करके उद्भट ने स्वभावोक्ति का क्षेत्र बहुत ही सीमित कर दिया है। उन्होंने अपने लक्षण में केवल मात्र पशु आदि की सहज क्रीड़ाओं को ही स्वभावोक्ति में सम्मिलित किया है। उन्होंने मानवीय चेष्टाओं का स्वभावोक्ति की सीमा में निषेध किया है। किन्तु मानवीय क्रियाओं का अपने सहज रूप में वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार के क्षेत्र में ही आता है। इस प्रकार उद्भट ने स्वभावोक्ति की परिधि अत्यन्त संकुचित कर दी है।

वामन

नवीं शताब्दी में रीतिकार वामन ने स्वभावोक्ति अलंकार की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने गुणों के अन्तर्गत 'अर्थव्यक्ति' नामक गुण की चर्चा की है जो अपनी मूल धारणा में स्वभावोक्ति अलंकार का समकक्ष ही है। उनके अनुसार—

वस्तुस्वभावस्फुटत्वमर्थव्यक्तिः[१५]
वस्तूनां भावानां स्वभावस्य स्फुटत्वं यदसावर्थव्यक्तिः।

अर्थात् वस्तुओं और भावों के मूल गुणों का स्पष्ट कथन अर्थव्यक्ति गुण है।

वामन की अर्थव्यक्ति-विषयक धारणा में स्वभावोक्ति के समान ही लक्षण देखकर भोजदेव ने अपने 'शृंगार प्रकाश' में कदाचित दोनों की चर्चा की है।[१६] अपने ग्रन्थ 'भोज

का शृंगार प्रकाश' में भोज की धारणा स्पष्ट करते हुए डॉ० राघवन ने लिखा है कि वामन की अर्थव्यक्ति और महिमभट्टादि की स्वभावोक्ति मे केवल इतना अन्तर है कि अर्थव्यक्ति में पदार्थ की नाना अवस्थाओं का वर्णन रहता है जबकि स्वभावोक्ति में उन नाना अवस्थाओं से उत्पन्न होने वाले विविध रूपों का वर्णन होता है। अर्थव्यक्ति स्थिर अवस्था का वर्णन है तो स्वभावोक्ति उस स्थिर अवस्था से उत्पन्न विविध अस्थिर रूपों का वर्णन है। इस रूप में अर्थव्यक्ति स्वभावोक्ति का प्राण-तत्त्व है।[१७]

रुद्रट

रुद्रट ने स्वभावोक्ति के क्षेत्र को सम्यक् विस्तार दिया और अर्थालंकारों में उसकी मुख्य रूप से गणना की। उन्होंने वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष के आधार पर समस्त अर्थालंकारों को चार वर्गों में विभाजित किया और स्वभावोक्ति को वास्तव वर्ग का सर्व-प्रथम अलंकार माना है। वास्तव वर्ग में रुद्रट ने यद्यपि अनेक अलंकारों का संग्रह कर लिया है (और वे 'वस्तु-स्वरूप-कथन' को ही वास्तव मानते हैं, अतः उन सब अलंकारों को उनके मत में स्वभावोक्ति का ही भेद कहा जा सकता है) तथापि वे स्वभावोक्ति को जाति के नाम से वास्तविक भेदों से पृथक् अलंकार के रूप में भी स्वीकार करते हैं। उनकी जाति का लक्षण इस प्रकार है—

संस्थानावस्थानक्रियादि यद् यस्य यादृशं भवति।
लोके चिरप्रसिद्धं तत्कथनमनन्यथा जातिः॥[१८]

अर्थात् जिस वस्तु का अवयव विन्यास तथा क्रियादि जैसा चिरकाल से संसार (लोक) में प्रसिद्ध है उसका ठीक उसी प्रकार कथन करना—किसी अन्य प्रकार से नहीं—जाति अलंकार है। इस प्रकार रुद्रट ने यद्यपि स्वभावोक्ति की चर्चा जाति के नाम से की है तथापि उन्होंने उसे एक प्रकार से वास्तव का पर्याय ही बना दिया है। दूसरे शब्दों में उन्होंने स्वभावोक्ति के क्षेत्र का पर्याप्त विस्तार किया है। अपनी परिभाषा में रुद्रट ने दण्डी का अनुसरण करते हुए अवस्था को तो लिया किन्तु साथ ही उन्होंने अवयव-विन्यास और क्रियादि को बढ़ा दिया है। सम्भवतः वे अवस्था का अर्थ वय मानते हैं। स्वभावोक्ति की एक अन्य परिभाषा देते हुए वे लिखते हैं—

वास्तवमिति तज्ज्ञेयं क्रियते वस्तुस्वरूपकथनं यत्।
पुष्टार्थमविपरीतं निरुपममनतिशयमश्लेषम्॥[१९]

इस परिभाषा में रुद्रट ने वस्तु या पदार्थ के वस्तुगत सौन्दर्य की अत्यन्त स्पष्ट व्याख्या की है। वस्तुगत सौन्दर्य का अर्थ है कि जितना भी सम्भव हो सके वस्तु का सहजात रूप ही वर्णित किया जाए, भावना अथवा कल्पना के द्वारा उसमें बाह्य गुणों का मिश्रण न किया जाए। विरोध, औपम्य, सादृश्य-विधान, अतिशय और श्लेष आदि समग्र अप्रस्तुत विधान कल्पनागत चमत्कार का ही परिणाम है। इस कल्पनात्मक स्पर्श से रहित वस्तु (पदार्थ) के भीतर निहित रमणीय गुणों का वर्णन—वस्तुगत सौन्दर्य-वर्णन है—रुद्रट के अनुसार 'वास्तव' है।

इस प्रकार रुद्रट की जाति का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है—किसी भी प्रकार के कल्पनात्मक बाह्य आरोपों से रहित पदार्थ में विद्यमान रमणीय (पुष्टार्थ) गुणों का कथन करना जाति अलंकार है। यह रमणीय अर्थ या पुष्टार्थ क्या है, इसका संकेत डॉ० नगेन्द्र के अनुसार रुद्रट के टीकाकार नमि साधु की व्याख्या में मिल जाता है। नमिसाधु के शब्दों में—

जातिस्तु अनुभवं जनयति। यत्र परस्थं
स्वरूपं वर्ण्यमानमेव अनुभवमिवैतीति स्थितम्।[२०]

अर्थात् जाति में वस्तु स्वरूप का ऐसा सजीव वर्णन रहता है कि वह श्रोता के मन में अनुभव-सा उत्पन्न कर देता है। जो रूप अनुभव में परिणत हो जाता है वही रमणीय है, वही पुष्टार्थ है। वस्तुगत सौन्दर्य और भावगत सौन्दर्य में यही भेद है कि एक दृष्टि का विषय अधिक होता है, दूसरा भावना का। स्वभावोक्ति या जाति वस्तु के दर्शनीय स्वरूप का यथावत् श्रोता अथवा पाठक के मन मे संचार कर प्रायः वही अनुभव उत्पन्न कर देती है जो उसके साक्षात् दर्शन से होता है। स्वरूप की यह अनुभव-रूपता ही उसकी रमणीयता या पुष्टार्थता है।"[२१]

डॉ० नगेन्द्र की इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि रुद्रट ने चित्रात्मकता को स्वभावोक्ति का मुख्य गुण स्वीकार किया है।

कुन्तक

वक्रोक्ति को काव्य का जीवित स्वीकार करने वाले आचार्य कुन्तक ने स्वभावोक्ति की अलंकारता का निषेध करते हुए प्रश्न किया था कि यदि स्वभाव-वर्णन (वर्ण्य विषय) अलंकार है तो फिर अलंकार्य क्या है? क्या शरीर शरीर को अलंकृत कर सकता है? क्या कोई स्वयं अपने कंधे पर चढ़ सकता है? यह तर्क इतना अकाट्य था कि सभी विद्वान् मूकवत् हो गए, इसका निराकरण करने में कोई भी समर्थ न था। कुन्तक का दूसरा प्रश्न था—यदि वस्तु का स्वरूप-वर्णन अलंकार (स्वभावोक्ति) है तो उसकी सत्ता काव्य में सर्वत्र होगी और उपमादि अन्य अलंकारो का शुद्ध उदाहरण ही समाप्त हो जाएगा। सर्वत्र (काव्य में) या तो संकर या संसृष्टि अलंकार की सत्ता होगी।

आचार्य कुन्तक की विचारधारा का वर्णन आगे—निषेध-पक्ष में—विस्तार से किया जाएगा, यहाँ तो संक्षेप में यही कहते हैं कि कुन्तक को स्वभावोक्ति की अलंकारता स्वीकार नहीं थी।

महिमभट्ट

अभिधा को शब्द की मूल शक्ति मानने वाले आचार्य महिमभट्ट ने कुन्तक के आह्वान का उचित उत्तर दिया और अत्यन्त प्रबल तर्कों के साथ स्वभावोक्ति के अलकारत्व की स्थापना की—

कथं तर्हि स्वभावोक्तेरलंकारत्वमिष्यते।
न हि स्वभावमात्रोक्तौ विशेषः कश्चनानयोः॥

उच्यते वस्तुनस्तावद्रूप्यमिह विद्यते।
तत्रैकमत्र सामान्यं यद्विकल्पकगोचरः॥
स एव सर्वशब्दानां विषयः परिकीर्त्तितः।
अतएवाभिधेयं ते सामान्यं बोधयन्त्यलम्॥
विशिष्टमस्य यद्रूपं तत् प्रत्यक्षस्य गोचरः।
स एव सत्कविगिरां गोचरः प्रतिभाभुवाम्॥[२२]

महिमभट्ट के तर्क इस प्रकार हैं स्वभावोक्ति को अलंकार कैसे माना जाता है, इस प्रश्न के उत्तर मे हमारा कहना है कि ससार में वस्तु के दो रूप होते हैं—सामान्य और विशिष्ट। सामान्य रूप मे प्रायः सन्देह रहता है। यही अर्थ सभी शब्दों का विषय बतलाया गया है। इसलिए वे (शब्द) केवल सामान्य अर्थ का बोध कराते हैं।

वस्तु का जो विशिष्ट रूप है, वह प्रत्यक्ष का विषय है, वही अच्छे कवियों की प्रतिभाप्रसूत वाणी का विषय होता है। क्योंकि कवि की वह प्रज्ञा ही तो प्रतिभा है जो रस के अनुरूप शब्द और अर्थों के सोच विचार में निश्चल चित्त होने पर, स्वरूप का स्पर्श करने से, उन्मिषित होती है।[२३] वहां तो भगवान् शकर का तृतीय नेत्र है, जिससे वे तीनों कालों के पदार्थों का साक्षात् दर्शन करते हैं। हमने (अपने) 'तत्वोक्तिकोष' नामक शास्त्र में प्रतिभा तत्त्व का यह विवेचन विस्तार से किया है। × × × ×

अर्थ के स्वभाव की जो उक्ति है—वह अलंकार इसलिए मानी गई है, क्योंकि (उक्त) प्रतिभा उसमें पदार्थों को चित्रित करती है और वे आँखों देखे से लगते हैं।

× × × ×

वस्तु के दो रूप होते हैं—एक स्थूल और दूसरा बारीकी से युक्त। शब्द से जो वस्तु बतलाई जाती है, वह स्थूल रूप से समझ में आती है। वस्तु का समस्त बारीकियों से अन्वित रूप आँखों से देखने पर ही समझ में आता है। किन्तु कुछ शब्द भी ऐसे होते हैं जो वस्तु का यह बारीकियों से अन्वित रूप सामने ला देते हैं। ये शब्द प्रतिभा-सम्पन्न कवि के होते हैं। इन शब्दों से होता तो वस्तु के स्वभाव का ही कथन है किन्तु वह अन्य शब्दों से अच्छा होता है, अतः उसे अलंकार माना जाता है। यह (शब्द-प्रयोग) केवल अनुभव का विषय है।

'स्पर्श' का अर्थ शब्दार्थ के स्वरूप का स्पर्श भी समझा जा सकता है और आत्मा का स्पर्श भी। कवि का अन्तःकरण जब समाधि गुण से केन्द्रित होता है तो उसमें विस्फोट होता है, उसे सत्वगुण का उद्रेक भी कहते हैं। इस स्थिति में कवि को आत्म-साक्षात्कार होता है और बुद्धि स्तब्धता का अनुभव करती है। इस स्थिति में कवि के अन्तःकरण में काव्यानुरूप शब्द और अर्थों का स्मरण और स्फुरण होता है। इसी बुद्धि को प्रतिभा कहते हैं। कवि इससे अतीत, अनागत और वर्तमान के सभी पदार्थों को सामने पाता है। इसे ज्ञानचक्षु कहते हैं।

प्रतिभा-तत्व का विस्तार से विवेचन लिए हुए महिमभट्ट का ग्रन्थ 'तत्वोक्तिकोष' आज दुर्भाग्य से अनुपलब्ध है अतः हमें उनके इन्हीं विचारों पर सन्तोष करना होगा।

आचार्य महिमभट्ट ने एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया है कि विशिष्ट स्वभाव (पदार्थ का विशिष्ट स्वभाव) तो स्वभावोक्ति का विषय है, किन्तु जो सामान्य स्वभाव है, वह अन्य अलकारों में आता है, अन्यथा छिपे (अव्यक्त) अर्थ को कौन अलंकृत कर सकता है। यदि वस्तु का केवल अनुवाद कर दिया जाए तो वह एक प्रकार से छन्द पूर्ति मात्र के लिए है जो वस्तुतः दोष है। इसे महिमभट्ट ने पुनरुक्त एवं 'वाच्य-वाचन' दोषों में अन्तर्भूत माना है।[२४]

महिमभट्ट ने स्वभावोक्ति के कई उदाहरण दिए हैं जिनमे से एक प्रसिद्ध उदाहरण है—

ऋजुतां नयतः स्मरामि ते शरमुत्सङ्गनिषण्णधन्वनः।
मधुना सह सस्मितां कथां नयनोपान्तविलोकितं च तत्। कु०सं० ४।२३

'कुमारसम्भव' में रति-विलाप के प्रसंग से उद्धृत इस श्लोक में नायिका की मनोदशा का सहज चित्र अंकित है। श्लोक का अर्थ है—

> वसन्त के साथी का कमान गोद में रखकर, तीर को सीधा करते हुए उस प्रकार मुस्करा-मुस्करा कर बातें करना और तिरछी आँखों से देखना, मुझे याद आ रहा है।

सारांशतः महिमभट्ट की स्वभावोक्ति का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है। उनके अनुसार स्वभाव मात्र का वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार नहीं है। यदि वस्तु का सामान्य स्वभाव ही वर्णित कर दिया जाए तो वह अपुष्टार्थ (अरमणीय एव चमत्कार शून्य) होने के कारण स्पष्ट रूप से ही अर्थदोष कहा जाएगा। अस्तु, वस्तु का जो विशिष्ट रूप है (विशिष्ट सुन्दर चेष्टाओं से युक्त) वही कथन करने योग्य है और उसी के कथन से वस्तु के सौन्दर्य में चमत्कार का समावेश होता है, अतः वही स्वभावोक्ति अर्थालंकार है। वस्तु के सामान्य, लौकिक अर्थ को अधिक से अधिक अलकार्य कहा जा सकता है। वस्तु का विशिष्ट स्वभाव लोकोत्तर प्रतिभागोचर है। आचार्य कुन्तक ने सामान्य और विशिष्ट के इस भेद को न समझकर स्वभावोक्ति का वास्तविक स्वरूप नहीं पहचाना है, ऐसा महिम-भट्ट तथा उनके अनुयायी आचार्यों का मत है।[२५]

अभिनव गुप्त

महिमभट्ट से पूर्व अभिनव गुप्त ने स्वभावोक्ति को एक वाङ्मय—प्रकार मानने की धारणा प्रकट की थी।[२६] अभिनव गुप्त की धारणा का विकास हमें आगे चलकर भोज के दृष्टिकोण में मिलता है।

भोज

भोज ने स्वभावोक्ति सम्बन्धी सभी प्रचलित मतों का समन्वय करने का प्रयास किया है। उन्होंने स्वभावोक्ति नाम को स्वीकार न करके जाति नाम से इसे मान्यता दी है तथा इसकी व्युत्पत्तिमूलक परिभाषा करने की चेष्टा की है—

नानावस्थासु जायन्ते यानि रूपाणि वस्तुनः।
स्वेभ्यः स्वेभ्यो निसर्गेभ्यस्तानि जातिं प्रचक्षते ॥[२७]

अर्थात् जाति वस्तु के ऐसे रूप का वर्णन है जो (वस्तु के) अपने स्वभाव से ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में उत्पन्न हो जाते है। इस प्रकार प्राचीनतर लक्षणों में आए हुए अवस्था शब्द में बहुवचन देकर तथा 'नाना' पद की विशेषता लगाकर भोज ने उस शब्द की एक प्रकार से व्याख्या कर दी है।

अर्थव्यक्ति गुण से इसका भेद बताते हुए भोज ने स्वभावोक्ति को और स्पष्ट किया है—

अर्थव्यक्तेरियं भेदमियता प्रतिपद्यते।
जायमानमियं वक्तिरूपं सा सार्वकालिकम्।[२८]

अर्थात् अर्थव्यक्ति से इसका भेद इतना है कि जाति (स्वभावोक्ति) वस्तु के जायमान (उत्पन्न होने वाले) रूप को ग्रहण करती है और अर्थव्यक्ति इसके सार्वकालिक रूप को। डॉ० राघवन के अनुसार भोज ने अर्थव्यक्ति को स्वभावोक्ति का प्राण माना है।[२९] भोज द्वारा स्वभावोक्ति और अर्थव्यक्ति का यह भेद डॉ० राघवन आदि विद्वानों के अनुसार लगभग व्यर्थ है क्योंकि इससे स्वभावोक्ति वस्तु के जायमान रूप तक सीमित हो जाती है।

भोज की एक उद्भावना अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। उन्होंने दण्डी के आधार पर किन्तु उनकी धारणा का उचित संस्कार करते हुए वाङ्मय को तीन रूपों में विभाजित किया है—(क) वक्रोक्ति (ख) रसोक्ति (ग) स्वभावोक्ति।[३०]

वाङ्मय का वह अंश जो अलकार-प्रधान है, वक्रोक्ति के अन्तर्गत आता है। जिस साहित्य में रस-भावादि का प्राधान्य है, उसे भोज रसोक्ति कहते हैं तथा उन्होंने गुण-प्रधान साहित्य को स्वभावोक्ति के अन्तर्गत परिगणित किया है। भोज की उपर्युक्त धारणा में सम्भवतः रस, रीति एवं अलंकार सम्प्रदायों मे समन्वय स्थापित करने की अनावश्यक प्रेरणा ही मूल से विद्यमान है अन्यथा स्वभावोक्ति को वे गुण-प्रधान साहित्य में परिगणित न करते।

भोज की धारणा वास्तव में आधुनिक आलोचना-शास्त्र के अधिक अनुकूल पड़ती है। सत्य, भावना और कल्पना—काव्य के ये तीन प्रमुख तत्व हैं, जिसका साहित्य के विविध रूपों में भिन्न-भिन्न अनुपातों में समावेश रहता है। सत्य का अर्थ है पदार्थ का सहज रूप और जहाँ कहीं जीवन और जगत् के सहज रूप का चित्रण प्रधान रहता है—वहीं भोज के शब्दों में स्वभावोक्ति है। कहीं-कहीं भाव का प्राधान्य रहता है वहाँ भोज की रसोक्ति है तथा जहाँ कल्पना का स्वच्छन्द स्फुरण रहता है अर्थात् कवि प्रस्तुत की अपेक्षा जहाँ अप्रस्तुत-योजना में अधिक आनन्द लेने लगता है— वहीं भोज का अलंकृत (वक्रोक्ति-प्रधान) काव्य है।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार[३१] "सौन्दर्य के दो व्यापक रूप हैं—(१) वस्तु-परक, (२) व्यक्ति-परक। इनमें से वस्तुगत सौन्दर्य भोज की स्वभावोक्ति का ही पर्याय है। व्यक्ति-परक सौन्दर्य भावना या कल्पना की प्रसूति है और इस दृष्टि से उसके दो रूप हो

सकते हैं·····पहला रसोक्ति है, दूसरा वक्रोक्ति।"

मम्मट

मम्मट ने अपनी समाहारक प्रवृत्ति का परिचय देते हुए अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के स्वभावोक्ति-सम्बन्धी लक्षणों का समन्वय करके यह लक्षण प्रस्तुत किया—

स्वभावोक्तिस्तु डिम्मादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।
स्वयोस्तदेकाश्रयोः। रूपं वर्णः संस्थानं च।[32]

अर्थात् स्वभावोक्ति वह अलंकार है जिसे पदार्थों—जैसे बालकादि—की प्रकृतिसिद्ध क्रिया अथवा उनके रूप का वर्णन कहा करते है। यहाँ 'स्वक्रिया रूप वर्णनम्' मे 'स्व'—अपने का अर्थ व्यक्त करता है तथा स्वयोः का अर्थ है—एकमात्र अपने लिए समाश्रित रहने वाला (अर्थात् क्रिया और रूप)। रूप से यहाँ तात्पर्य है 'वर्ण', रग और साथ ही संस्थान तथा अग-प्रत्यंग-विन्यास से। उदाहरणार्थ निम्नलिखित प्रसंग को देखिए—

"सो कर उठा हुआ घोडा पिछले दोनों पैरों को फैलाए, पीठ के झुकने के कारण लम्बी देह किए, गर्दन टेढ़ी करने से छाती पर मुँह सटाकर धूलि-धूसर केसर को हिलाते हुए, घास खाने की इच्छा से दोनों ओठों को चलाते, धीरे-धीरे हिनहिनाते, अपने अगले खुरों से नीचे की जमीन खोदता जा रहा है।"[33]

यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है क्योंकि अश्वमात्र की क्रियाओं एवं उसके अंग-प्रत्यग विन्यास का जो चित्र यहाँ अकित हुआ है उससे वर्ण्य वस्तु में जो चमत्कार उत्पन्न हुआ है वह स्पष्ट है। स्वभावोक्ति को काव्यप्रकाशकार ने वाङ्मय की विभाजक उपाधि न माना हो किन्तु उसे वाच्य का एक वैचित्र्य तो अवश्य ही स्वीकार किया है। मम्मट का स्वभावोक्ति-लक्षण उद्भट के—क्रियायां सम्प्रवृत्तस्य हेवाकानां निबन्धनम्। कस्य-चिन्मृगडिम्मादेः स्वभावोक्तिरुदाहृता[34]—(शब्दो) का अनुसरण करता है। मम्मट की दृष्टि में रसवत् के अलकार न होने के कारण (मम्मट ने रसवत् को अलकार नहीं माना है) स्वभावोक्ति, रसवत् और भाविक के रूप मे सूक्ष्म विश्लेषण की आवश्यकता ही नहीं थी।[35]

आचार्य मम्मट ने अपनी परिभाषा में 'एकाश्रय' शब्द का अत्यन्त सारपूर्ण प्रयोग किया है। इसका अर्थ यह है शिशु आदि वर्ण्य वस्तुओं के स्वनिष्ठ व्यापार ही स्वभावोक्ति के अन्तर्गत आते हैं। जहाँ वे किसी अन्य के आलम्बन या आश्रय बन जाते है वहाँ स्वभावोक्ति न होकर रसोक्ति हो जाती है। इस 'एकाश्रय' शब्द से मम्मट ने वस्तुपरक एवं व्यक्तिपरक सौन्दर्य में भेद का गहरा संकेत किया है और साथ ही रसोक्ति और स्वभावोक्ति के अन्तर को स्पष्ट कर शुद्ध वस्तु-वर्णन को स्वभावोक्ति का अनिवार्य लक्षण स्वीकार किया है।

रुय्यक

'अलंकारसर्वस्व' के रचियता रुय्यक ने महिमभट्ट-प्रतिपादित 'विशिष्ट' स्वभाव के स्थान पर 'सूक्ष्म' स्वभाव के वर्णन को स्वभावोक्ति कहा है—

सूक्ष्मवस्तु स्वभावययथावद्वर्णनम् स्वभावोक्तिः।[३६]

अर्थात् सूक्ष्म वस्तु के स्वभाव का यथावत् वर्णन स्वभावोक्ति है। यहाँ (काव्य में) वस्तु के स्वभाव का वर्णन मात्र अलंकार नही होता है। ऐसा होने पर समग्र काव्य सालंकार कहा जाएगा। कोई भी काव्य ऐसा नही है जिसमें वस्तु के स्वभाव का वर्णन न पाया जाता हो। इसलिए 'सूक्ष्म' पद का प्रयोग किया गया है। सूक्ष्म का अर्थ है केवल कवित्व का विषय बनने वाला।[३७] अतः उसी से निर्मित (कवित्व से सृष्ट) सा जो वस्तु-स्वभाव होता है उसका यथावत् न घटाकर न बढ़ाकर वर्णन करना स्वभावोक्ति अलंकार है।

स्वभावोक्ति का भाविक अलंकार से अन्तर स्पष्ट करते हुए आचार्य रुय्यक कहते हैं कि भाविक में वस्तुओं की स्फुट रूप से (तटस्थ रूप से) प्रतीति होती है। वस्तु के सूक्ष्म धर्म का वर्णन होने से इसे हम स्वभावोक्ति अलंकार नहीं मान सकते क्योंकि स्वभावोक्ति मे लौकिक वस्तु में विद्यमान सूक्ष्म धर्म का वर्णन करने पर 'हृदय-संवाद' (अभेदानुभव) हो सकता है किन्तु यह अभेदानुभव (हृदय-संवाद) केवल वस्तु-संवाद—अर्थात् यह वस्तु इसी प्रकार की है—होता है और रसवदलंकार में चित्तवृत्तियों का सवाद (अभेदानुभव) होता है। जहाँ दोनों (वस्तु और चित्तवृत्ति का सवाद) हों वहाँ दोनों अलंकारों का एकत्र समावेश माना जाएगा। अर्थात् जहाँ वस्तुनिष्ठ सूक्ष्म धर्म का वर्णन हो वहाँ स्वभावोक्ति होगी और अन्यत्र (चित्तवृत्ति के सवाद की स्थिति में) रसवदलंकार ही होगा।[३८]

वाग्भट प्रथम

वाग्भट प्रथम ने स्वभावोक्ति का उल्लेख 'जाति' नाम से किया है और उसे सर्वप्रथम अलंकार माना है। उनका लक्षण इस प्रकार है—

स्वभावोक्तिः पदार्थस्य सक्रियस्याक्रियस्य वा।
जातिविशेषतो रम्या हीनत्रस्तार्भकादिषु॥[३९]

अर्थात् सक्रिय अथवा निष्क्रिय पदार्थ के स्वभाव की उक्ति जाति होती है। यह हीन (दीन), भयभीत और अर्भकादि (बालकादि) के वर्णन में विशेष रमणीय होती है।

स्पष्ट है कि वाग्भट ने सजीव और निर्जीव—सक्रिय और निष्क्रिय—अर्थात् प्रकृति और मानव-जगत् के सभी पदार्थों के मूल धर्म की उक्ति को स्वभावोक्ति स्वीकार किया है। इस प्रकार वे भोज की अपेक्षा स्वभावोक्ति के क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करने वाले आलंकारिकों में गिने जाते हैं। वाग्भट प्रथम को स्वभावोक्ति की अलंकारता को सिद्ध करने वाले समर्थ आचार्यों में गिना जाता है क्योंकि उन्होंने दण्डी आदि की भाँति स्वभावोक्ति को प्राथमिकता दी है। उनके द्वारा ३५ अर्थालकारों की चर्चा की गई है जिनमें स्वभावोक्ति को सबसे महत्त्वपूर्ण प्रथम स्थान दिया गया है।

हेमचन्द्र

वाग्भट के पश्चात् हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' के छठे अध्याय में २४

अर्थालंकारों का वर्णन किया है। यहाँ उन्होंने जाति नाम से स्वभावोक्ति की चर्चा की है। उनके अनुसार जाति का लक्षण है—

स्वभावाख्यानं जातिः[४०]

अपनी वृत्ति में उन्होंने स्वभाव का अर्थ 'तादवस्थ' किया है। उनके टीकाकार ने इस 'तादवस्थ' को पूरी तरह से स्पष्ट कर दिया है—

"सा अनुभवैकगोचरा अवस्था यस्य स इत्थस्य भावस्तादवस्थ्यमिति। अयमर्थः। कविप्रतिभया निर्विकल्पकप्रत्यक्षकल्पया विषयीकृता वस्तुस्वभावा यत्रोपवर्ण्यन्ते स जातेर्विषयः।"

अर्थात् कविप्रतिभा निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के समान होती है। दूसरे शब्दों में उसमें जो विषय आते हैं वे सर्वजन-बोधगम्य नहीं होते –सबकी समझ में नहीं आते। कवि की प्रतिभा के कलात्मक स्पर्श से प्रतीत होने वाले वे वस्तु-स्वभाव जहाँ वर्णन किए जाते हैं, वहाँ जाति अलकार की स्थिति होती है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रतीत होने वाले रूपादिक स्वभावोक्ति के विषय नही है किन्तु जो केवल कवि की सूझ मे ही आते हैं (अर्थात् चमत्कारपूर्ण होते हैं), वे ही स्वभावोक्ति अलंकार का विषय बनते हैं।

हेमचन्द्र महिमभट्ट के अनुनायी थे। वे भी शब्द की अभिधा शक्ति में ही विश्वास रखते थे। उन्होंने महिमभट्ट के समर्थन मे अनेक तर्क प्रस्तुत किए है। उपर्युक्त तर्क—वस्तु का कवि प्रतिभा गोचर रूप स्वभावोक्ति का विषय है, सामान्य रूप नहीं—इन्हीं सबल तर्कों में से एक है। आगे चलकर अपने ग्रन्थ में हेमचन्द्र ने संस्थान, स्थानक और व्यापार के नाम से स्वभावोक्ति के तीन भेद भी किए है और उनके अनुरूप उसके तीन उदाहरण भी प्रस्तुत किए है।

जयदेव

जयदेव पीयूषवर्ष ने अपने ग्रन्थ 'चन्द्रालोक' के पंचम मयूख (अध्याय) में लगभग १०० अर्थालंकारों का वर्णन किया है। उन्होंने स्वभावोक्ति अलंकार का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिषु वर्णनम्।
कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षैः स्तब्धकर्णैरुदीक्ष्यते ॥११२॥[४१]

अर्थात् जहाँ किसी पदार्थ की जाति आदि में स्थित स्वभाव का वर्णन किया जाता है, वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है, उदाहरणार्थ—चंचल नेत्रों वाले एवं कानों को निश्चित कर लेने वाले मृग (उद्ग्रीव होकर) देख रहे हैं।

कान खड़े करके देखना हिरणों का स्वभाव है, उसका यहाँ वर्णन किया गया है, अतः स्वभावोक्ति अलंकार है। जयदेव के स्वभावोक्ति-लक्षण में यद्यपि ऐसी कोई नवीनता नहीं है तथापि उन्होंने भाविक अलंकार से स्वभावोक्ति का जो अन्तर स्पष्ट किया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

चन्द्रालोककार के अनुसार स्वभावोक्ति एवं भाविक दोनों ही अलकारों में यथार्थ

का वर्णन होता है। भाविक मे अप्रत्यक्ष (अतीत अथवा भविष्य के) पदार्थों का प्रत्यक्ष के समान वर्णन होता है किन्तु स्वभावोक्ति में लौकिक वस्तु के सूक्ष्म धर्म का यथार्थ चित्रण किया जाता है। स्वभावोक्ति में वस्तु का धर्म वैचित्र्य का आधायक होता है किन्तु भाविक में कवि द्वारा निबद्ध अभिप्राय मे विच्छिति रहती है। जयदेव के अनुसार स्वभावोक्ति की अपेक्षा भाविक अलंकार में अधिक चमत्कार होता है।

वाग्भट द्वितीय

वाग्भट द्वितीय ने अपने ग्रन्थ 'काव्यानुशासन' में ६३ अर्थालंकारों का वर्णन किया है। वाग्भट प्रथम के लक्षण को स्पष्ट करके इन्होने गद्य में लिख दिया है तथा स्वभावोक्ति को सर्वप्रथम अलंकार माना है। इनका लक्षण इस प्रकार है —

यथास्थितवस्तुस्वरूपवर्णनमग्राम्यं जातिः।[४२]
सा च त्रस्तार्भकदीनतिर्यग्युवतिप्रभृतिषु विशेषतो रम्या।

वाग्भट प्रथम की भाँति वाग्भट द्वितीय ने भी स्वभावोक्ति के लिए जाति शब्द का प्रयोग किया है।

विद्यानाथ

विद्यानाथ ने अपने पूर्ववर्ती महिमभट्ट रुद्रट आदि आचार्यों के 'सूक्ष्म' वस्तु वर्णन आदि के स्थान पर 'चारु' विशेषण का प्रयोग किया है। इसी प्रकार उन्होंने स्वभाव के लिए 'उच्चैः' शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् उनके अनुसार उच्चस्वभाव का वर्णन या चारु यथावत् वस्तु-वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार है।

विश्वनाथ

आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य-दर्पण' में स्वभावोक्ति की चर्चा की है। उन्होंने अपनी परिभाषा में रुय्यक का अनुसरण किया है। यों तो विश्वनाथ रसवादी आचार्य थे किन्तु उन्हें भी स्वभावोक्ति की सत्ता को स्वीकार करना पड़ा। रुय्यक के अतिरिक्त उन पर मम्मट का भी गहरा प्रभाव मिलता है। उनकी परिभाषा स्वभावोक्ति के स्वरूप को इस प्रकार व्यक्त करती है—

स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्।
(दुरूहयोः कविमात्रवेद्ययोरर्थस्य डिम्भादेः
स्वयोस्तदेकाश्रयोश्चेष्टास्वरूपयोः।)[४३]

इस परिभाषा में स्पष्ट रूप से मम्मट के 'काव्यप्रकाश' एवं रुय्यक के 'अलंकार सर्वस्व' के लक्षणों का संवलित रूप मिलता है। यहाँ 'डिम्मादेः', 'एकाश्रय' तथा 'क्रिया-रूप' ये तीनों तत्त्व मम्मट की परिभाषा से यथावत् उद्धृत किये गए हैं।

विश्वनाथ के अनुसार कवि मात्र द्वारा ज्ञातव्य बालकादि की एकाश्रय चेष्टा तथा स्वरूप का वर्णन स्वभावोक्ति है। 'दुरूह' शब्द का प्रयोग विश्वनाथ का मौलिक

प्रयोग है। किन्तु वृत्ति में उन्होंने इस शब्द को 'कविमात्रवेद्य' के अर्थ में प्रयोग किया है और विश्वनाथ द्वारा दिया गया यह अर्थ महिमभट्ट-प्रतिपादित 'प्रतिभोद्भव', 'कवि-प्रतिभागोचर' आदि शब्दों की छायानुकृति है। इस 'दुरूह' शब्द की अपेक्षा महिमभट्टादि आचार्यों के शब्दों में अधिक व्यंजकता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विश्वनाथ ने रुय्यक, मम्मट एवं महिमभट्ट आदि आचार्यों की परिभाषाओं से भिन्न-भिन्न तत्त्वों का ग्रहण करके स्वभावोक्ति का एक पूर्ण लक्षण बनाने का यत्न किया है।

पण्डितराज जगन्नाथ

'रसगंगाधर' के रचयिता पण्डितराज जगन्नाथ ने स्वभावोक्ति की चर्चा ही नहीं की।

अप्पय दीक्षित

अप्पय दीक्षित द्वारा रचित 'कुवलयानन्द' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में ११५ अर्थालंकारों की चर्चा की गई है।[४४] यहाँ स्वभावोक्ति का लक्षण-निरूपण इस प्रकार हुआ है—

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनम्।
यथा वा
कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षैः स्तब्धकर्णैरवीक्ष्यते।

—कुवलयानन्द १६०

अर्थात् किसी पदार्थ की जाति गुण क्रिया के अनुसार उसके स्वभाव का वर्णन करने पर स्वभावोक्ति अलंकार होता है, उदाहरणार्थ—चंचल आँखों वाले स्तब्ध कर्ण हिरण देख रहे हैं। यहां हिरणों के (स्तब्ध होकर देखने के) स्वभाव का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

आचार्य विश्वेश्वर

आचार्य विश्वेश्वर ने स्वभावोक्ति का लक्षण करते हुए 'जातिविशेषावच्छिन्न' स्वभाव की अपेक्षा 'दशाविशेषावच्छिन्न' स्वभाव के चित्रण को अलकारत्व का आधायक तत्त्व माना है। अर्थात् उनके अनुसार किसी जाति विशेष की क्रियाओं की अपेक्षा किन्हीं विशेष दशाओं मे मनुष्य की स्वभाविक क्रियाओं के चित्रण में जो चमत्कार रहता है वह स्वभावोक्ति अलंकार है। आचार्य दण्डी ने जहाँ अवस्था शब्द का प्रयोग किया था वहाँ विश्वेश्वर ने 'दशा' शब्द का प्रयोग कर दिया है, अन्य उनके लक्षण में कोई नवीनता नहीं है।

हिन्दी के आचार्य और स्वभावोक्ति

हिन्दी-काव्यशास्त्र की सभी परम्पराएँ संस्कृत-साहित्यशास्त्र से गृहीत हैं। हिन्दी में आलोचना-शास्त्र का जो कुछ भी विकास हुआ है वह आधुनिक युग में हुआ है। इससे

पूर्व हिन्दी के आलोचना-सिद्धान्त बहुत स्वस्थ नही रहे हैं। 'सूर सूर तुलसी ससी' आदि जैसी कुछ उक्तियाँ मिलती हैं जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी-साहित्य के आदिकाल में आलोचना-तत्त्व की उपलब्धि नहीं होती है। भक्तियुग में स्वतन्त्र रूप से कोई प्रबुद्ध महान् आलोचक तो नहीं हुए हैं, हाँ तुलसी जैसे महकवि ने अपनी सर्वांगीण प्रतिभा का परिचय देते हुए काव्य-शास्त्रीय तत्त्वों का अपने 'मानस' में काव्यमयी शैली में विस्तार से आख्यान अवश्य किया है।

'मानस रूपक' के प्रसंग में उन्होंने अपने वर्ण्य विषय और वर्णन-शैली का एक सन्तुलित-संवलित रूप प्रस्तुत किया है। इस प्रसंग में उन्होंने राम-कथा, सीता-राम का चरित्र, उपमा, चौपाई, दोहा, सोरठा, छन्द, अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव एवं भाषा, ज्ञान-वैराग्य आदि विचार-तत्त्व, ध्वनि, वक्रता, कवित्व-गुण, जाति, धर्म, अर्थ, कामादि चार फल, नवरस, साधु-नाम गुणगान, श्रद्धा, भक्ति-निरूपण, क्षमा, दया, आदि मानवीय गुण, हरिपद-रति-रस एवं कथा के अनेक प्रसंगों पर सरोवर के विविध अंगों का आरोप किया है। इस प्रकार तुलसी ने एक भव्य रूपक की योजना की है। इसी प्रसंग में उनका एक वाक्य है—

धुनि अवरेब कवित गुन जाती।
मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥[४५]

यहाँ तुलसी ने ध्वनि, वक्रोक्ति एवं गुण का तो स्पष्ट कथन किया है किन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त 'जाती' शब्द का अर्थ स्पष्टतः स्वभावोक्ति ही है। डॉ० उदयभानु सिंह ने तुलसी द्वारा प्रयुक्त इस 'जाती' शब्द के दो अर्थ ग्रहण किए है, एक तो स्वभावोक्ति और दूसरा वृत्ति।[४६] उन्होंने तुलसी द्वारा प्रयुक्त शब्द 'गुन जाती' का अर्थ बताया है गुणप्रधान स्वभावोक्ति और अपने मन्तव्य का समर्थन भोज की धारणा—जिसमें उन्होंने वाङ्मय को तीन भागों में (वक्रोक्ति, रसोक्ति, स्वभावोक्ति) में वर्गीकृत किया है —के द्वारा किया है। वक्रोक्ति शब्द के सान्निध्य में प्रयुक्त 'जाती' शब्द यों भी स्वभावोक्ति का ही अर्थ-वाहक कहा जा सकता है।

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र[४७] ने मानस-चतुश्शती-समारोह में अपने वक्तव्य में तुलसी द्वारा लिखित 'धुनि अवरेब कवित गुन जाती' वाक्य में आए हुए 'जाती' शब्द को अर्थ अलंकार बताया।

भक्तियुग के पश्चात् हिन्दी-साहित्य के रीतियुगीन काव्य को हम रुद्रट के शब्दों में 'अतिशय वर्ग' में रख सकते हैं। यह सम्पूर्ण काव्य वक्रता एवं अतिशयोक्ति के चमत्कार पर ही आधारित है। अतः इन कवियों द्वारा स्वभावोक्ति का वर्णन दुराशापूर्ण प्रयास ही समझा जा सकता है। यों रीतियुगीन कवियों में एक ऐसा आचार्य वर्ग है जिसने संस्कृत के आलोचना-शास्त्र का भाषानुवाद बड़े मनोयोग से किया है। जिन आचार्यों ने स्वभावोक्ति का उल्लेख किया भी है तो उन्होंने भी केवल संस्कृत-साहित्यशास्त्र की परम्परा का अनुकरण मात्र किया है, कोई मौलिक योगदान देने का प्रयत्न नहीं किया है।

आधुनिक युग में उच्चकोटि के आलोचक आचार्य शुक्ल ने स्वभावोक्ति अलंकार

को मान्यता प्रदान नहीं की है। इस विषय की चर्चा निषेध-पक्ष में विस्तार से की जाएगी। सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने स्वभावोक्ति की अलकारता की स्वीकार किया है, उनके शब्दों में—

"वक्रोक्तिजीवितकार राजानक कुन्तक ने स्वभावोक्ति को अलकार नहीं माना है·····। किन्तु यह वक्रोक्ति को ही काव्य का सर्वस्व मानने वाले राजानक कुन्तक का दुराग्रह मात्र है। प्राकृतिक दृश्यों के स्वाभाविक वर्णन वस्तुतः चमत्कारक और अत्यन्त मनोहारी होते हैं।"[४८]

डॉ० वचनदेव कुमार ने स्वभावोक्ति का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—'स्वभावोक्ति', 'अप्रतिभोद्भव स्वरूपानुवाद' या 'वस्तुमात्रानुवाद' नहीं है वरन् वह वस्तुओं, क्रियाओं, चेष्टाओं आदि के मोहक सूक्ष्मेक्षण द्वारा शब्द चित्र उतार देता है कि हम उस ओर आपाततः आकृष्ट हो पाते है।[४९]

स्वभावोक्ति : निषेध-पक्ष

संस्कृत-काव्यशास्त्र की सुदीर्घ परम्परा का अवलोकन करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि विद्वानों का बहुमत स्वभावोक्ति की अलंकारता के पक्ष में है किन्तु कुछ विद्वान् आचार्यों ने इसके अलंकारत्व का उतनी ही तीव्रता के साथ खण्डन भी किया है। इस प्रकार स्वभावोक्ति की अलंकारता के सम्बन्ध में निषेध-पक्ष पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

भामह

संकरन आदि विद्वानों ने भामह के शब्दों—'स्वभावोक्तिरलंकारः इति केचित्प्रक्षते' से भ्रमित होकर भामह को स्वभावोक्ति का विरोधी मान लिया है जबकि भामह के शब्द पक्ष-विपक्ष की अपेक्षा तटस्थ मन्तव्य की व्यजना करते हैं। डॉ० राघवन तथा डॉ० नगेन्द्र आदि विद्वानों ने भामह को स्वभावोक्ति की अलंकारता का समर्थक सिद्ध करने का प्रयास किया है।[५०] संक्षेप में भामह को स्वभावोक्ति का विरोधी नहीं कहा जा सकता।

कुन्तक : आक्षेप और खण्डन

राजानक कुन्तक प्रबुद्ध तार्किक विद्वान् थे। उन्होंने स्वभावोक्ति अलंकार को तर्क की कसौटी पर कसा और अपने तर्कों द्वारा असिद्ध हो जाने पर अत्यन्त दृढ़तापूर्वक उसका निषेध किया। उनके तर्क इस प्रकार हैं—

अलंकारकृतां येषां स्वभावोक्तिरलंकृतिः।
अलंकार्यतया तेषां किमन्यदवतिष्ठते ॥[५१]

येषामलंकारकृतामलंकाराणां स्वभावोक्तिरलंकृतिः या स्वभावस्य पदार्थधर्म-लक्षणस्य परिस्पन्दस्य उक्तिरभिधा सैवालंकृतिरलंकरणं प्रतिभाति, ते सुकुमारमान-सत्वादविवेकक्लेशविद्वेषिणः।"

अर्थात् जिन (दण्डी सदृश) आलंकारिकों के मत में स्वभावोक्ति (भी) अलंकार है उनके मत में अलंकार्य क्या रह जाता है। (अर्थात् स्वभाव ही अलंकार्य है, उसी को अलंकार मान लेने पर अलकार्य किसको कहा जाएगा। अतः अलंकार्यभूत स्वभावोक्ति को अलकार मानना उचित नहीं है)।

जिन अलकारकारों अर्थात् अलंकार (शास्त्र) के रचने वाले आचार्यों के मत में स्वभावोक्ति अलकार है अर्थात् जो पदार्थ के (स्वरूपाधायक) धर्मभूत स्वभाव की उक्ति अर्थात् कथन को अलकृति अर्थात् अलंकार कहते हैं वे विवेचन शक्ति से रहित सुकुमार बुद्धि होने से (अलकार्य और अलकार के) विवेक (भेद-विचार, पृथग्भावे) का कष्ट नहीं उठाना चाहते है। (यदि उसके विवेचन का कष्ट करें तो उन्हें विदित हो जाय कि स्वभावोक्ति अलंकार नहीं अलकार्य है क्योंकि) स्वभावोक्ति शब्द का क्या अर्थ है? स्वभाव ही का वर्णन होने पर स्वभावोक्ति कही जा सकती है—यही स्वभावोक्ति शब्द का अर्थ हुआ। वह (स्वभाव-वर्णन) ही यदि अलंकार है तो फिर उससे भिन्न काव्य का शरीर स्थानीय कौन-सी वस्तु है जो उनके मत में अलकार्य हो, अर्थात् और कुछ नहीं है जिसे अलकार्य कहा जा सके।

उस पर स्वभावोक्तिवादी प्रश्न करता है कि आपने अर्थात् वक्रोक्तिवादी ने ही ग्रन्थ[५२] को १, ६ कारिका मे पहले यह (सिद्धान्त) स्थापित किया है कि (अलंकार्य और अलकार के) विभाग से रहित सालकर (शब्दार्थ रूप) वाक्य ही काव्यत्व है। तो (जब आप स्वय अलंकार्य और अलकार का विभाग नही मानते है तब हमसे) यह क्यों कहते हैं (कि स्वभावोक्ति को अलकार मानने पर अलकार्य क्या होगा। हम भी अलकार्य और अलकार का विभाग नही मानते है, आप ऐसा समझ सकते है)।

उत्तर—ठीक है हम सिद्धान्त रूप से (पारमार्थिक दृष्टि से) यह भेद नहीं मानते किन्तु भेद-विवक्षा से मानना होगा।

इसके साथ ही कुन्तक का प्रश्न है कि यदि स्वभाव-कथन ही स्वभावोक्ति है तो कोई भी वर्णन (काव्य) स्वभाव-कथन से रहित हो ही नही सकता। स्वभाव से रहित वस्तु-वर्णन को स्वीकार करना शशविषाण अथवा वंध्यापुत्र आदि में विश्वास करना है क्योंकि स्वभाव-रहित वस्तु निरूपाख्य अर्थात् असत्यकल्प हो जाती है। अर्थात् उसका कथन करना सम्भव नहीं क्योकि स्वाभावयुक्त वस्तु ही कथन करने योग्य होती है। (और यदि स्वभाव-वर्णन को ही अलकार मान लिया जाए तो) स्वभावोक्तियुक्त होने से गाड़ी वालों के वाक्यो में सालकारता अर्थात् काव्यत्व प्राप्त होगा।

इस बात को दूसरी युक्ति से फिर कहते है—

"(स्वभाव अर्थात् स्वरूप तो काव्य का शरीर-रूप है) वह शरीर ही यदि अलकार हो जाए तो वह दूसरे किसको अलंकृत करेगा? कहीं कोई स्वयं अपने कन्धे पर नही चढ़ सकता।"[५३]

× × × ×

"स्वभाव अर्थात् पदार्थ के धर्मभूत लक्षण को यदि अलंकार मान लिया जाए तो जहाँ उपमा आदि अन्य अलंकारों की स्थिति होगी वहाँ यह धर्मभूत लक्षण निश्चित रूप

से विद्यमान रहेगा और इस प्रकार स्वभाव तथा उपमादि दोनों की वहाँ स्थिति या तो स्पष्ट होगी अथवा अस्पष्ट। जहाँ दोनों अलकारों की स्थिति स्पष्ट होगी वहाँ ससृष्टि अलकार होगा और जहाँ उपमादि की सत्ता स्वभावोक्ति से पृथक् ज्ञात न होगी वहाँ सकर अलंकार होगा। इस प्रकार उपमादि अन्य अलंकार के विशुद्ध उदाहरण ही न बचेंगे।"

"·····अथवा यदि वह ससृष्टि और संकर ही उन (उपमादि अलंकारो) के विषय मान लिए जाएँ तो भी कुछ बनता नहीं क्योकि (स्वभावोक्ति का प्रतिपादन करने वाले) वे ही आलकारिक इस बात को स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार आकाश चर्वण के समान (स्वभावोक्ति अलकार का) मिथ्या वर्णन व्यर्थ है। इसलिए प्रकृत मार्ग का अनुसरण करना ही उचित है। सब प्रकार से कवि-व्यापार के विषय होने के कारण अवर्णनीयता को प्राप्त होने वाले सभी पदार्थों का सहृदय-आह्लादकारी स्वभाव ही (काव्य मे) वर्णनीय होता है। वही सब अलकारो से अलकृत किया जाता है।"

यही बात प्रथम उन्मेष की नवम और दशम कारिकाओं मे कह चुके है—

अन्य पर्याय शब्दों के रहते हुए भी विवक्षित अर्थ का बोधक केवल एक शब्द ही वस्तुत: (काव्य मे) शब्द है, इसी प्रकार सहृदयों के हृदय को आनन्दित करने वाला अपने स्वभाव से सुन्दर अर्थ ही वास्तव मे अर्थ है।

ये दोनो (शब्द और अर्थ) ही अलकार्य होते है। वैदग्ध्यपूर्ण उक्ति-रूप वक्रोक्ति ही उन दोनों का अलकार है।[५४]

स्वभावोक्ति अलकार का अत्यन्त प्रबल तर्कों से खण्डन करके कुन्तक ने अपनी मौलिक प्रतिभा, निर्भीक प्रकृति एवं पैनी विवेक-दृष्टि का परिचय दिया है। कुन्तक की धारणाओं ने अलकार-शास्त्र में एक क्रान्तिपूर्ण दृष्टि को जन्म दिया और उन्हीं के कारण स्वभावोक्ति के अलकारत्व का प्रश्न अत्यन्त संशयात्मक हो गया। कुन्तक ने जो शंकाएँ (स्वभावोक्ति की अलंकारता को लेकर) प्रस्तुत की हैं, वे भी निर्मूल नहीं हैं। संक्षेप में कुन्तक की शंकाएँ (आक्षेप) इस प्रकार हैं—

१. स्वभाव-वर्णन ही वस्तु-वर्णन है और वस्तु अलंकार्य है (जिसकी अन्य उपकरणों के द्वारा सज्जा की जाती है) यही वस्तु यदि अलंकार हो जाती है तब अलंकार्य अथवा वस्तु की स्थिति क्या होगी ?

२. यदि स्वभाव-कथन अलंकार है तो गाड़ी वालों के वार्त्तालाप भी आलंकारिक (स्वभावोक्तियुक्त) रूप को प्राप्त करेंगे।

३. वस्तु-वर्णन स्वभाव-वर्णन से रहित नहीं हो सकता और स्वभाव-वर्णन सर्वत्र (काव्य में) होने से सारा काव्य, स्वभावोक्तियुक्त होगा। इसी कारण उपमादि अन्य अलकारों की सत्ता स्वतन्त्र मिलनी कठिन हो जाएगी। स्वभावोक्ति से मिलकर कहीं संसृष्टि और कहीं संकर को उत्पन्न करते हुए उपमादि अन्य अलकार विशुद्ध न रह सकेंगे।

कुन्तक को शंकाओं का समाधान

स्वभावोक्ति के अलंकारत्व के प्रश्न को लेकर आचार्य कुन्तक का पहला आक्षेप है कि यदि

स्वभाव-वर्णन अलंकार है तो अलंकार्य (काव्य-शरीर) क्या है ? अर्थात् स्वरूप या स्वभाव ही तो काव्य का शरीर है। क्या कोई अपने शरीर को शरीर से ही अलंकृत कर सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि प्रथमतः कुन्तक वक्रोक्ति को काव्य का प्राण मानने वाले आचार्य थे और स्वभावोक्ति अलंकार उनके अपने सिद्धान्तों से मेल नहीं खाता था अतः उन्होंने उसका विरोध किया। यह तो बहुत ही स्थूल तर्क है। दूसरी बात, यह प्रश्न है वर्ण्य-वस्तु और वर्णन-प्रणाली—जिसका उत्तर यह है कि काव्य मे वर्ण्य-विषय और वर्णन-प्रणाली इतने सुगुम्फित रहते हैं कि दोनों को पृथक् करके देखना एक प्रकार से काव्य-सौन्दर्य का अपमान करना है, क्योंकि वर्ण्य-विषय और वर्णन-प्रणाली शरीर और आत्मा की भाँति सुग्रथित हैं, जिन्हें पृथक्-पृथक् जान लेने पर काव्य-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। और यदि यह पूछा जाए कि क्या शरीर भी कहीं शरीर को अलकृत करता है तो हमारा उत्तर होगा—अवश्य।

अब हम इस तत्त्व की विस्तार से व्याख्या करेंगे।

मुख शरीर का अंग है किन्तु यदि वह मलिन और धूल-मिट्टी से विकृत हुआ है तो वह शरीर के सौन्दर्य को कम कर रहा है, और यदि इसी मुख से धूल-मिट्टी साफ करके स्वच्छ बना दिया जाए तो यह कान्तियुक्त होने पर भी मुख ही तो रहेगा और इस रूप में भी यह शरीर ही होगा, अन्य कुछ नहीं। किन्तु साफ स्वच्छ कान्तियुक्त मुख स्वयं मुख की ही शोभा को बढ़ाता है। इसी प्रकार काव्य में सामान्य वर्णन और विशिष्ट या चारू वर्णन की स्थिति है। वस्तु का सामान्य रूप प्रायः सबको विदित रहता है किन्तु कवि उसके सामान्य रूप से ही असामान्य या असाधारण तत्त्वों का ग्रहण करके उनकी अभिव्यक्ति करता है। वस्तु का यही असामान्य रूप वस्तु के स्वरूप में चमत्कार उत्पन्न करता है।

आँख हमारे शरीर का अग है और चितवन भी आँख ही हैं, अन्य कुछ नहीं। किन्तु सूक्ष्म अर्थों में चितवन दृष्टि-प्रणाली है। किन्तु स्थूल रूप से चितवन और आँखों में एकत्व है, किन्तु चितवन आँख का अलकार है। इसी प्रकार शरीर भी शरीर को अलंकृत कर सकता है।

कुन्तक का दूसरा आक्षेप है कि यदि स्वभाव-कथन को अलकार मान लिया जाए तो गाड़ी वाले (अनपढ़) व्यक्तियों के वार्त्तालाप मे भी सालकारता उपलब्ध होने लगेगी। इस पर कहा जा सकता है कि स्वभावोक्तिवादियों ने पहले ही सामान्य वस्तु-वर्णन को (वार्त्ता को) अकाव्य कहकर छोड़ दिया है, काव्य मे तो विशिष्ट चारू अथवा सूक्ष्म स्वभाव का ही कथन किया जाता है। दूसरे, अपढ़ व्यक्तियों (गाड़ी हाँकने वालो) के वार्त्तालाप को हम सर्वथा अलंकार-रहित नहीं कह सकते क्योंकि हम देखते हैं कि वार्त्तालाप में भी प्रायः वक्रोक्ति, अतिशयोक्ति (आदि अलकारों) तथा लक्षणा-व्यंजना आदि शब्द-शक्तियों का यथोचित प्रयोग हुआ करता है। फिर यदि वार्त्तालाप में स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग भी हो जाता है तो कौन-सी आश्चर्य की बात है।

कुन्तक का यह कथन कि यदि स्वभावोक्ति (भी) अलंकार है तो काव्य में सर्वत्र उसकी स्थिति होने से जहाँ कहीं उपमादि अन्य अलकारों के साथ उसकी स्थित स्पष्ट

होगी वहाँ संसृष्टि एवं जहाँ अस्पष्ट होगी वहाँ संकर अलंकार होगा—केवल एक भ्रान्त दृष्टि की ओर सकेत करता है। इस शका के समाधान स्वरूप कहा जा सकता है कि स्वभाव-कथन मात्र ही स्वभावोक्ति (अलंकार) नही है अपितु विशिष्ट, चारू स्वभाव-कथन स्वभावोक्ति है।

दूसरी बात यह कि स्वभावोक्ति अलंकार का एक लक्षण है कि वह (स्वभाव-वर्णन) पदार्थ के स्वरूप का यथावत् (जैसा पदार्थ है वैसा), (अन्य) किसी प्रकार की भावना एव कल्पना से रहित वर्णन होता है। उपमादि प्राय: सभी अलकार कल्पनामूलक हैं किन्तु स्वभावोक्ति वस्तुमूलक अलकार है। इस प्रकार वस्तु के यथार्थ स्वरूप और उसके प्रति की गई कल्पना, दोनों में पर्याप्त अन्तर है। अस्तु, उपमादि अलकारों से स्वभावोक्ति का भेद स्पष्ट होने से हम कह सकते है कि सर्वत्र संकर अथवा ससृष्टि अलंकार की सम्भावना ही नही होती। और यदि एकाध स्थान पर संकर या संसृष्टि हो भी जाता है तो इसका समाधान यह है कि स्वभावोक्ति को छोड़कर, अन्य अलकारों के एक साथ दो के आ जाने पर भी तो संसृष्टि या संकर अलंकार हो जाया करते हैं फिर स्वभावोक्ति किसी अन्य अलंकार के साथ संसृष्टि या संकर का विधान करती है तो आपत्ति की क्या बात है ?

आचार्य शुक्ल : स्वभावोक्ति का निषेध

हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्थान मूर्धन्य है। उन्होंने हिन्दी-आलोचना शास्त्र को विवेकपूर्ण तर्क की कसौटी प्रदान करते हुए नयी दिशा एवं नया मोड़ दिया। अपने तर्कों द्वारा स्वभावोक्ति के अलंकारत्व के असिद्ध हो जाने पर शुक्ल जी ने मुक्त भाव से कुन्तक का समर्थन किया। स्वभावोक्ति के अलंकारत्व का खण्डन करते हुए शुक्ल जी का कथन है—

"·····वर्ण्य-वस्तु और वर्णन-प्रणाली बहुत दिनों से एक-दूसरे से अलग कर दी गई है।·····पर स्वभावोक्ति अलंकार-कोटि में आ ही नहीं सकती। अलंकार वर्णन करने की प्रणाली है।·····अलंकारों के भीतर स्वभावोक्ति का ठीक-ठीक लक्षण-निरूपण हो भी नहीं सका है।·····बात यह है कि स्वभावोक्ति अलंकारों के भीतर आ ही नहीं सकती।"[५५] शुक्ल जी ने अपने विचार की पुष्टि के लिए कुन्तक के (स्वभावोक्ति विरोधी) मन्तव्य को भी उद्धृत किया है।

सारांशत: अपने कथन में शुक्ल जी ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं—

(१) अप्रस्तुत-योजना और प्रस्तुत विषय दोनों की पृथक् सत्ता है अर्थात् वर्ण्य-विषय एवं वर्णन-पद्धति मे पर्याप्त अन्तर है। स्वभाव-कथन या वस्तु का स्वरूप-कथन वर्ण्य-विषय है और अलंकार वर्णन-शैली है—अस्तु स्वभावोक्ति को अलंकार नहीं माना जा सकता।

(२) स्वभावोक्ति की अलंकारता का खण्डन इसी बात से हो जाता है कि उसका (स्वभावोक्ति का) कोई निश्चित लक्षण नहीं मिलता, किसी ने उसे 'स्वक्रिया-रूप-वर्णन' कहा है तो किसी ने 'अवस्था-वर्णन' और किसी ने उसे 'सूक्ष्म स्वभाव-वर्णन' कहकर निरूपित किया है।

(३) मम्मट द्वारा प्रस्तुत स्वभावोक्ति की परिभाषा में प्रयुक्त 'डिम्भादेः' पद का अभिप्राय अत्यन्त अस्पष्ट है। यदि इसका अर्थ बालकों की रूप-चेष्टा लिया जाए तो वह वात्सल्य रस का अवयव है, कोई अलंकार नहीं। और यदि 'डिम्भादेः' की व्याप्ति सृष्टि के विविध रूप-व्यापारों तक स्वीकार कर ली जाए तो भी सम्पूर्ण सृष्टि के समस्त रूप-व्यापार वर्ण्य-विषय है, वर्णन-प्रणाली (अलकार) नही है।

शुक्ल जी की शंकाओं का उत्तर

शुक्ल जी का—स्वभावोक्ति की अलंकारता को लेकर पहला आक्षेप है कि स्वभावोक्ति वस्तु (वर्ण्य-विषय) का निर्देश करती है किन्तु अलकार वस्तु का विभूषण है, वस्तु नहीं। वस्तु और अलंकार दो पृथक् वस्तु हैं।[४६]

इस आक्षेप के निराकरण के लिए कहा जा सकता है कि स्वभावोक्ति के वस्तु-तत्त्व को लक्ष्य करके यदि उसकी अलंकारता का निषेध किया जाता है तो अर्थालंकारों में (उपमा, रूपक आदि मे) ऐसे अलंकार का निर्देश कर पाना भी अत्यन्त कठिन है, जिसमें न्यूनाधिक मात्रा में वस्तु-तत्त्व विद्यमान न हो। अर्थात् प्रायः सभी अर्थालकारों में स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप में वस्तु-तत्त्व अवश्य विद्यमान होता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वस्तु से सम्पृक्त होने के कारण हम किसी भी अर्थालकार को वस्तु-रहित नहीं कह सकते। काव्य के वर्ण्य-विषय और वर्णन-प्रणाली (अलकार्य और अलंकार) में लौकिक दृष्टि से वही भेद है जो कान और आभूषण में है किन्तु काव्य में आनन्द-पक्ष प्रधान है। चमत्कार उसका (काव्यानन्द का) प्राण होते हुए भी उसकी अपेक्षा गौण है। काव्य के आनन्द की समस्त भूमिका लोकोत्तर है अतः वहाँ (आनन्दावस्था मे) पहुँचकर शब्द और अर्थ के, वर्ण्य और वर्णन-पद्धति के सभी विभेद समाप्त हो जाते हैं। सक्षेप में कहा जा सकता है कि काव्य मे लौकिक दृष्टि से वस्तु और अलंकार भिन्न दिखाई देने पर भी पारमार्थिक दृष्टि से दोनों एक हैं। तुलसी जैसे महाकवि ने भी वर्ण्य-विषय तथा वर्णन-शैली को अभिन्न माना है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

वर्ण्य-वस्तु और वर्णन-शैली दोनों का अस्तित्व ठीक जल और तरंग की भाँति (बाहर से भिन्न दीखने पर भी अन्तरंग में एकत्व लिए हुए) है।

व्यापक रूप में हम काव्य को वाणी का अलंकार मान सकते हैं। आधुनिक युग में पश्चिम के प्रसिद्ध विचारक क्रोचे ने भी काव्य में अभिव्यंजनावाद की स्थापना करके अनुभूति और अभिव्यक्ति (वर्ण्य वस्तु और वर्णन-प्रणाली) को अविभाज्य सिद्ध किया है। क्रोचे ने तो अभिव्यक्ति की सत्ता को ही अनुभूति में समाहित कर दिया है। इस प्रकार वर्ण्य वस्तु एवं वर्णन-प्रणाली आलोचक के लिए पृथक् हो सकती है किन्तु आस्वाद की अवस्था में वे प्रमाता के लिए अखण्ड (एक) हैं क्योंकि कवि की आत्मा से अनुभूति एवं अभिव्यक्ति (वस्तु और कला) दोनों एक सूत्र में अनुस्यूत होकर निसृत होती है।

शुक्ल जी का यह आक्षेप कि स्वभावोक्ति का कोई निश्चित लक्षण नहीं है, अधिक

गम्भीर नहीं है। क्योंकि अनेक वस्तुओं की परिभाषा के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं, उदाहरणार्थ काव्य का स्वरूप-निरूपण लिया जा सकता है जिसकी आज तक कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकी है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि काव्य की सत्ता ही नही है। इसी प्रकार स्वभावोक्ति के लक्षण की अनिश्चितता उसकी सत्ता का निषेध नहीं कर सकती।

स्वभावोक्ति के लक्षण में मम्मट द्वारा प्रयुक्त 'डिम्भादेः' पद पर शुक्ल जी ने आपत्ति प्रकट की है। उनके अनुसार यदि इस पद की व्याप्ति मात्र मनुष्यों के बालकों (की चेष्टाओं) तक मानी जाए तो यह रस का अवयव होगा, अलंकार नहीं। और यदि मनुष्येतर प्राणियों को भी इसकी परिसीमा में लिया जाए तो भी वे वर्ण्य-वस्तु के क्षेत्र में कहे जा सकते हैं, अलंकार नहीं। शुक्ल जी की इस आपत्ति का निराकरण मम्मट की परिभाषा में प्रयुक्त 'स्वयोस्तदेकाश्रयो:'[५७] शब्द के द्वारा किया जा सकता है। मम्मट आदि जिन आलकारिकों ने स्वभावोक्ति के अलंकारत्व का समर्थन किया है उन्होंने कहा है कि ऐसा स्वभाव-वर्णन जो अन्य किसी प्रकार की भावना-कल्पना से रहित हो तथा किसी अन्य का आलम्बन या आश्रय न बन गया हो, (ऐसा स्वतन्त्र स्वभाव-वर्णन)— स्वभावोक्ति अलकार कहा जा सकता है। इससे स्पष्ट हैं कि दूसरों का आलम्बन बन जाने वाली रूप-चेष्टाएँ रस-क्षेत्र का विषय हैं किन्तु शुद्ध स्वभाव-वर्णन स्वभावोक्ति अलकार है।

शुक्ल जी का यह कथन ठीक है कि 'डिम्भादेः' पद की व्याप्ति मनुष्येतर प्राणियों में मानने पर वे सब वर्ण्य-विषय होगे, अलंकार नही। प्रकृतिगत पदार्थों के वर्णन को हम भी वर्ण्य वस्तु मानते है किन्तु स्वभावोक्ति वस्तुमूलक अलंकार है। वस्तु के वर्णन में जहाँ सहज ही चमत्कार एव परिष्कार उत्पन्न हो वहाँ वस्तु के सहज सौन्दर्य को प्रकट करने वाला (स्वभावोक्ति) अलकार होता है।

स्वभावोक्ति अलकार के तत्त्व

स्वभावोक्ति के इतिहास का अवलोकन करने पर हमें निम्नलिखित तत्त्व उपलब्ध होते हैं—

(१) स्वभाव मात्र का कथन स्वभावोक्ति नहीं है। सुन्दर, चारु या विशिष्ट स्वभाव का वर्णन—जिससे वर्ण्य-वस्तु में एक नवीन चमत्कार की सृष्टि हो जाए— स्वभावोक्ति अलंकार है।

(२) स्वभावोक्ति अलंकार में कवि के द्वारा जिन रूप-चेष्टाओं का वर्णन किया जाता है, वे सामान्य अर्थात् जातिगत होती हैं, व्यक्तिगत नही। किसी जाति का प्रति-निधित्व करने वाली सुन्दर चेष्टाएँ ही स्वभावोक्ति का विषय हैं। हिन्दी-साहित्य-कोश[५८] में स्वभावोक्ति का एक उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

सीस मुकुट कटि काछनी, उर वैजन्तीमाल।
यह बानिक सो मन बसे सदा बिहारीलाल॥

यहाँ कृष्ण का स्वरूप-वर्णन किया गया है किन्तु यह वर्णन व्यक्तिगत एवं स्थूल वर्णन है, सूक्ष्म नहीं, इसलिए इसे हम स्वभावोक्ति का उदाहरण स्वीकार नहीं कर सकते।

(३) जड़ और चेतन प्रकृति के किसी भी पदार्थ के सहज (बनावट से रहित) रूप, गुण-क्रियादि का सरल किन्तु सरस शब्दावली में जहाँ ऐसा वर्णन किया जाए जो पाठक को एक विचित्र चमत्कार का अनुभव करा दे, स्वभावोक्ति अलंकार होता है। इससे दो बातें स्पष्ट होती है—(१) स्वभावोक्ति अभिधामूलक वस्तुगत अलंकार है, (२) स्वभावोक्ति में वर्णित स्वभाव अन्य किसी का आलम्बन अथवा आश्रय न होकर मम्मट के शब्दों में 'एकाश्रय'[५६] होना चाहिए। अर्थात् शुद्ध वस्तु-वर्णन ही स्वभावोक्ति के अन्तर्गत आ सकता है।

(४) स्वभावोक्ति अलकार मे पदार्थ के सहजात (मूल) गुणों का ऐसा वर्णन होता है जो पाठक के मन मे प्रत्यक्ष-सा अनुभव उत्पन्न कर दे। अर्थात् पदार्थों का वह चित्रात्मक वर्णन जो सहृदय को वस्तु का प्रत्यक्ष के समान अनुभव करा दे, स्वभावोक्ति अलकार है।

(५) स्वभावोक्ति में प्रधानतः वस्तुओं या मनुष्यों की जातिगत (क्रियाओं) का यथावत् (बिना किसी बाह्य आरोप के) चित्रण रहता है, दूसरे, गुणों के जातिगत रूप का चित्रण भी स्वाभावोक्ति अलकार है, उदाहरणार्थ—युवती के यौवनागम की स्थितियों का चित्रण, प्रेमी के हृदय की आकुलता का चित्रण, शिशु के तोतले बोल, डगमगाते कदम रखकर चलने की चेष्टा, किलकारियाँ मारना आदि शिशु-क्रीड़ाएँ, गाय आदि पशुओं का वात्सल्य में भरकर अपने बच्चे को चाटना आदि स्वभावोक्ति अलंकार के विषय हैं।

निष्कर्ष

अन्ततः किसी व्यक्ति या वस्तु की जातिगत, सामान्य अथवा सहजात चेष्टाओं व गुणों का अभिधामूलक, चित्रमय, सहज और स्वतन्त्र वर्णन, जो पाठक को चमत्कार की अनुभूति करा दे, स्वभावोक्ति अलंकार है।

काव्य में स्वभावोक्ति का क्षेत्र

वस्तु के सहज रूप का वर्णन काव्य में जहाँ नवीन चमत्कार की सृष्टि करता है वहाँ वह उसके सौन्दर्य-वर्द्धक, वस्तुमूलक आभरण के रूप में ग्रहण किया जाता है। वस्तु के यथावत् रूप का चित्रण करने वाला यह स्वभावोक्ति अलंकार कृत्रिमता से परे काव्य में औचित्य का विधान करता है, अस्वाभाविक, अस्वस्थ एवं अविश्वसनीय तत्त्व का काव्य से बहिष्कार करता है। अतः काव्य में इसका महत्व स्वतः स्पष्ट है। काव्य[६०] में स्वभावोक्ति के क्षेत्र को लेकर सर्वाधिक व्यापक धारणा सम्भवतः सर्वप्रथम दण्डी ने (इसे 'आद्यालंकृति' कहकर), तत्पश्चात् भोज ने वाङ्मय को—वक्रोक्ति, रसोक्ति एवं स्वभावोक्ति—तीन वर्गों में आबद्ध करके व्यक्त की। दण्डी के अनुसार शास्त्रों में भी स्वभावोक्ति का क्षेत्र-विस्तार है और इसी प्रकार भोज के मन्तव्य में भी ज्योतिष, चिकित्सा एवं दर्शन आदि वाङ्मय के विभिन्न रूपों में स्वभावोक्ति का क्षेत्र-विस्तार है।

जिस प्रकार वामन की अलंकार की परिभाषा—'सौन्दर्यालंकार:'[61], अतिव्याप्ति दोष से पूर्ण है उसी प्रकार दण्डी तथा भोज के द्वारा निर्धारित स्वभावोक्ति का क्षेत्र अतिव्याप्ति दोष से मुक्त नहीं कहा जा सकता। भोज के अनुसार जहाँ रसोक्ति नहीं, वक्रोक्ति नहीं, वही स्वभावोक्ति है। इस दृष्टि से रस एवं अलंकार से मुक्त शुद्ध वस्तु का रूप ही हमारे सम्मुख आता है, स्वभावोक्ति का कोई निश्चित लक्षण निर्धारित नहीं हो पाता। भोज की स्वभावोक्ति वस्तुत: समग्र वस्तु का निर्देश करती है और कुन्तक के आक्षेप[62] को जन्म देती है।

वास्तव में स्वभावोक्ति में वस्तु के यथावत् वर्णन के अतिरिक्त चित्रात्मकता, जातीय विशेषताओं का वर्णन आदि अन्य तत्त्व भी सम्मिलित रहते हैं जो उसमें चमत्कार शक्ति का विधान करके उसे अलकारता प्रदान करते हैं। स्वभावोक्ति के रूप अथवा भेदों का जहाँ तक प्रश्न है, उसके कई दृष्टिकोण हो सकते हैं। वस्तु के रूप-भेदों की दृष्टि से स्वभावोक्ति के मुख्य दो वर्ग-भेद हो सकते है—(१) मानव-प्रकृति-चित्रण में स्वभावोक्ति, (२) मानवेतर प्राणियों के वर्णन में स्वभावोक्ति। डॉ० वचनदेव कुमार ने अपने ग्रन्थ 'रामचरित-मानस में अलंकार-योजना' में मानस की स्वभावोक्तियों का वर्गीकरण चार शीर्षकों के अन्तर्गत किया है—(१) मानव-प्रकृति-वर्णन में, (२) मानवेतर प्रकृति-वर्णन में, (३) जड़ प्रकृति-वर्णन में तथा (४) क्रिया अथवा युद्ध-वर्णन में। जहाँ तक जड़ प्रकृति का प्रश्न है, उसमें क्रिया-व्यापार का अभाव है अत: उसकी कोई चेष्टाएँ नही हो सकतीं, उसे जड़ रूपात्मक स्वभावोक्ति के अन्तर्गत कहा जा सकता है। कन्हैयालाल पोद्दार ने भी अपनी 'अलकार-मंजरी' में जड़ प्रकृति-वर्णन को स्वभावोक्ति के क्षेत्र में समाहित कर लिया है किन्तु चित्रमय, रम्य अभिधात्मक प्रकृति चित्रणों में कार्य-व्यापार का अभाव होने के कारण हम उन्हें गतिशील रूपात्मक स्वभावोक्ति नहीं कह सकते, स्वाभाविक सहज प्रकृति-वर्णन कह सकते हैं। यह वर्णन स्थिर रूपमूलक स्वभावोक्ति की परिधि में समाहित किया जा सकता है। वर्गीकरण का दूसरा आधार प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट रूप, गुण और क्रिया को बनाया जा सकता है। भाषा एवं छन्द की दृष्टि से भी स्वभावोक्ति को वर्गीकृत किया जा सकता है। अपने अगले अध्यायों में हम इन सब दृष्टिकोणों की समन्वित पद्धति का अनुसरण करेंगे।

रसानुभूति में स्वभावोक्ति की उपादेयता

काव्य का मूलभूत उद्देश्य पाठक के संस्कारों को प्रबुद्ध करके उसे (काव्य के आनन्द) रस का आस्वाद कराना है। सभी अलकार, छन्द एवं भाषागत चमत्कार रस की प्रेषणीयता के सहायक होकर आते हैं और उनकी यही उपादेयता है। इसलिए प्रत्येक अलंकार रस से गम्भीर रूप में सम्बद्ध रहता है। जहाँ उक्ति की वक्रता अभिव्यक्ति में उत्कर्ष एवं वैशिष्ट्य उत्पन्न करती है वहाँ उक्ति की सहज सरलता भी हृदय पर मुग्धकारी प्रभाव डालती है। वाणी की वक्र-भंगिमाओं में उलझकर कभी-कभी रसानुभूति में व्याघात उत्पन्न हो जाता है और सहृदय को हृदय का आवेग भूलकर बुद्धि का द्रविड प्राणायाम

करना पड़ता है। किन्तु स्वभावोक्ति में वाणी का सहज रूप होने के कारण रसनीयता का स्थान अधिक रहता है।

स्वभावोक्ति[६३] के भेद

स्वभावोक्ति को अलंकार के रूप में प्रतिष्ठापित करने वाली आचार्य-परम्परा ने इस अलंकार की अवयवगत विशेषताओं के आधार पर इसे चार भेदों में वर्गीकृत किया है, यथा—जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया। यदि इन चारों की स्वभावोक्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाए तभी उपर्युक्त वर्गीकरण का औचित्य जाना जा सकता है। रुद्रट, उद्भट एव महिमभट्ट आदि प्रसिद्ध आलंकारिकों ने स्वभावोक्ति अलंकार की प्रकृति का विश्लेषण करते हुए किसी पदार्थ की जातिगत विशेषताओं के चित्रण पर बल दिया है। बाण, दण्डी, रुद्रट आदि अनेक आचार्यों ने तो इस अलकार को स्पष्टत: जाति कहकर सम्बोधित किया है। यहाँ एक सामान्य-सा प्रश्न उठता है कि किसी वस्तु की जातीय विशेषताओ का वर्णन करना स्वभावोक्ति अलकार का एक आधारभूत लक्षण है, अत: यह प्रत्येक स्वभावोक्ति मे निहित रहने वाला अनिवार्य लक्षण बन जाता है। यदि जाति-मूलक स्वभावोक्ति को हम एक वर्ग के रूप में ग्रहण करें तो स्पष्टत: हम अपने इस मन्तव्य का खण्डन करेंगे कि स्वभावोक्ति अलकार मे वर्णित 'वस्तु' व्यक्तिनिष्ठ वर्णन न होकर जातिगत विशेषताओं से युक्त होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में स्वभावोक्ति अलकार के सभी उदाहरण जातिमूलक स्वभावोक्ति कहलाएँगे क्योंकि स्वभावोक्ति अलंकार में वर्णित विषय जाति अथवा किसी विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधि करने वाला होता है। इस प्रकार सटीकता की कसौटी पर परखने पर हमें इस जाति वर्ग-रूप विशेषण की त्रुटि का स्पष्टत: परिचय प्राप्त हो जाता है।

साहित्यिक वर्णनों के अन्तर्गत जातीय गुणों के द्वारा साहित्यकार किसी वस्तु का स्वरूप-कथन उसके सहजात अथवा यथार्थ रूप मे करता है। इस प्रकार वर्ग-विभाजन का आधार जातिगत चित्रण न होकर स्वरूप-चित्रण होता है। अस्तु हमने अपने अध्ययन के अन्तर्गत प्राक्तन आलंकारिकों के जातिमूलक स्वभावोक्ति अलंकार के स्थान पर रूप-मूलक स्वभावोक्ति को ग्रहण किया है अर्थात् संस्कृत आचार्यों की जातिमूलक स्वभावोक्ति को हमने रूपमूलक स्वभावोक्ति कहा है। तुलनात्मक दृष्टि से 'जाति' वर्ग की अपेक्षा 'रूप' को घटक की दृष्टि से ग्रहण करना अधिक तर्कपुष्ट एव संगत है। जातीयता तो सभी स्वभावोक्तियों का आधारभूत तत्त्व है किन्तु रूप शब्द स्वभावोक्ति का एक विशिष्ट वर्ग उपस्थित करता है।

भामह, दण्डी से लेकर हिन्दी के आचार्य केशवदास तक की आलंकारिकों की परम्परा ने एक स्वर से गुण एवं क्रिया को स्वभावोक्ति के वर्ग-विभाजन का आधार बनाया है। गुण एवं क्रिया के प्रभाव को तीव्र करने के लिए कवि अभिधामूलक स्व-भावोक्ति का ग्रहण करता है तब कवि के उद्देश्य को दृष्टि में रखकर गुण एवं क्रिया को हम विभाजन का तर्कपुष्ट आधार कह सकते हैं। इसी कारण हमने अपने अध्ययन में प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट गुण एव क्रियामूलक स्वभावोक्ति को यथावत् ग्रहण कर लिया है।

संस्कृत की आचार्य-परम्परा द्वारा प्रयुक्त शब्द 'द्रव्य' स्वभावोक्ति के विषय में अत्यन्त अस्पष्ट धारणा व्यक्त करता है। 'द्रव्य' का अर्थ यदि काव्य का वर्ण्य-विषय समझा जाए तब तो स्वभावोक्ति का एकमात्र वर्ग द्रव्यमूलक स्वभावोक्ति ही होगा क्योंकि प्रत्येक स्वभावोक्ति में किसी न किसी पदार्थ का वर्णन तो अवश्य ही रहेगा। यदि 'द्रव्य' का संकुचित अर्थ जड़ पदार्थ ग्रहण किया जाए तो वह रूप वर्णन का एक विभेद मात्र ही होगा। इस प्रकार 'द्रव्य' वर्ण्य 'पदार्थ' है स्वभावोक्ति का वर्ग विभेद नहीं। वस्तुतः काव्य मे वर्णित वस्तु की अपेक्षा उसकी अवस्था वह वैशिष्ट्य उपस्थित करती है जिसके आधार पर हम स्वभावोक्ति अलकार को वर्गीकृत कर सकते है। कोई भी पदार्थ जब काव्य में वर्णित हो जाता है तब वह द्रव्य न रहकर वर्ण्य-वस्तु कहलाता है। प्रत्येक वस्तु का वर्णन उसकी किसी न किसी प्रकृत, सहजात अथवा यथार्थ अवस्था में ही वह चित्र प्रस्तुत कर सकता है जो प्रमाता के हृदय में वासना रूप से स्थित किसी भी भाव-दशा को प्रबुद्ध कर सकता है। अस्तु स्पष्टतः पदार्थ की अपेक्षा उसकी अवस्था अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। भोज ने इसी कारण स्पष्टतः उल्लेख किया है कि वस्तु की नाना अवस्थाओं में जो विविध रूप उत्पन्न होते हैं उनका यथार्थ वर्णन स्वभावोक्ति अलकार कहलाता है।[६४] भोज से पूर्व दण्डी ने भी पदार्थ की अवस्था पर विशेष बल दिया था—

यथा— **नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती।**
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा।[६५]

अर्थात् पदार्थों की विभिन्न अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाले विविध रूपों का यथावत् वर्णन करने वाला स्वभावोक्ति अलंकार होता है।

'मानस' में स्वभावोक्ति के विविध रूपों का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हुए डॉ० वचनदेव कुमार ने उसे चार वर्गों में वर्गीकृत किया है—(१) मानव स्वभाव वर्णन में, (२) मानवेतर स्वभाव वर्णन में, (३) प्राकृत दृश्य-वर्णन में, (४) सेना प्रयाण एवं युद्ध वर्णन में। वस्तुतः यह वर्गीकरण अत्यन्त स्थूल दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है जैसा कि डॉ० साहब ने स्वय स्वीकार किया है कि यह वर्गीकरण उन्होंने केवल विश्लेषण-सौकर्य की दृष्टि से प्रस्तुत किया है।[६६] प्रस्तुत वर्गीकरण में चौथा वर्ग तनिक परिवर्तन की अपेक्षा रखता है। वस्तुतः सेना-प्रयाण या युद्ध-वर्णन क्रियामूलक स्वभावोक्ति का एक रूप मात्र है। क्रिया की अपेक्षा व्यापार शब्द अधिक व्यापक है, अस्तु व्यापार को स्वभावोक्ति के वर्ग-भेद में एक घटक के रूप में ग्रहण करना अपेक्षाकृत अधिक तर्कसगत है।

अस्तु स्वभावोक्ति अलकार चार प्रकार का होता है। अब स्वभावोक्ति के चार भेदों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

१. अवस्थामूलक स्वभावोक्ति

अवस्था शब्द के सामान्यतः दो अर्थ हैं, (क) आयु अथवा वय। इस आधार पर अवस्थाएँ तीन प्रकार की होती हैं—(अ) बाल्यावस्था, (आ) युवावस्था, (इ) वृद्धावस्था। (ख)

अवस्था शब्द का दूसरा अर्थ है—चित्त की भाव-प्रेरित विशेष दशा। हर्ष, शोक, वैकल्य, नैराश्य, आतुरता और आवेग आदि अनेक मनोदशाओं के सरल एवं सरस चित्रों को अवस्थामूलक स्वभावोक्ति कहा जाता है।

अवस्थामूलक स्वभावोक्ति और रस—आचार्य शुक्ल ने स्वभावोक्ति अलकार का निषेध करते हुए उसे रस के अवयवों में समाहित कर लिया था। यद्यपि अवस्थामूलक स्वभावोक्ति के उदाहरण में आश्रय के साधारणीकरण का भ्रम उपस्थित हो सकता है किन्तु आचार्य मम्मट द्वारा स्वभावोक्ति के लक्षण में प्रयुक्त शब्द 'एकाश्रय' इस भ्रम को दूर करके अवस्थामूलक स्वभावोक्ति की स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करता है। वस्तुतः स्वभावोक्ति मे वर्णित पदार्थ अथवा मनुष्य की अवस्था स्वतन्त्र वर्णन होती है जबकि रसानुभूति के क्षेत्र मे रस के सभी अवयव परस्पर मुखापेक्षी होते हैं। रस-क्षेत्र में 'एकाश्रयता' का (वर्णन के स्वातन्त्र्य का) निषेध होता है। स्वभावोक्ति में अवस्था की अनुभूति अपनी एकमात्र स्वतन्त्र सत्ता रखती है जबकि रस-दशा में उपस्थित की गई भाव-दशा आलम्बन, आश्रय आदि अन्य तत्त्वों के समन्वय की अपेक्षा रखती है। इस प्रकार अवस्थामूलक स्वभावोक्ति में वर्णित पदार्थ की अवस्था अथवा भाव-दशा रस के अवयवों में उपलब्ध होने वाली भाव-स्थितियों में मूलतः भिन्न है।

सारांशतः अवस्थामूलक स्वभावोक्ति के अन्तर्गत मानवीय अथवा मानवेतर प्राणियों की भाव-दशाओं का तथा उनकी भाव-प्रेरित शारीरिक अवस्थाओं का अत्यन्त सहज चित्रण समाहित किया जा सकता है। मानव वर्ग भी दो वर्गों में विभाजित हो जाता है—(अ) स्त्री, (आ) पुरुष। अपने सम्पूर्ण विवेचन के अन्तर्गत 'अवस्था शब्द से हमारा अभिप्रायः आयु के अनुरूप बाल्य, युवा वार्धक्य से न होकर चित्त की विशेष प्रकृत अवस्था के सहज चित्र से है।

२. रूपवर्णनमूलक स्वभावोक्ति

रूप से हमारा अभिप्रायः है वस्तु या व्यक्ति की बाह्य आकृति, वर्ण (रग) एवं वेश-भूषादि। इनके यथावत् वर्णन द्वारा जहाँ व्यक्ति या वस्तु का जीवन्त चित्र प्रमाता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया जाए उस काव्यांश को रूपमूलक स्वभावोक्ति कहते हैं।

आचार्य शुक्ल के अनुसार रूप का अनुभव चार प्रकार का होता—(क) आकर्षक (ख) विकर्षक (ग) आश्चर्यकारक (घ) घृणोत्पादक।[१७] रूप के इन चार भेदों में मुख्य प्रथम दो हैं क्योंकि घृणोत्पादक को हम विकर्षक के अन्तर्गत रख सकते हैं और सहज स्वाभाविक वस्तुओं से आश्चर्य की अनुभूति हो नहीं सकती। अस्तु हमने अपने विवेचन के अन्तर्गत रूप के दो भेद स्वीकार किए हैं—आकर्षक एवं विकर्षक। रूपमूलक स्वभावोक्ति के मुख्यतः तीन भेद किए जा सकते हैं—(क) मानवीय रूप वर्णन में स्वभावोक्ति (ख) मानवेतर प्राणिवर्ग के चित्रण में (ग) तथा जड़ पदार्थों के स्वरूप वर्णन में स्वभावोक्ति।

३. गुण-वर्णनमूलक स्वभावोक्ति

गुण का अर्थ है वे प्राकृतिक धर्म जो किसी वस्तु में विद्यमान होने पर उसकी विशिष्ट

सत्ता की सूचना देते हैं। काव्य-गुण के रूप में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीन मुख्य गुण संस्कृत आचार्य परम्परा ने स्वीकार गिए हैं। गुणमूलक स्वभावोक्ति के अन्तर्गत किसी व्यक्ति विशेष के उन गुणों का सजीव चित्रांकन रहता है जो किसी वर्ग अथवा जाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरणार्थ नारी का सहज गुण लज्जा अथवा वीर पुरुष का गुण अनुपम उत्साह आदि का सहज अभिधात्मक चित्रांकन गुणमूलक स्वभावोक्ति कहा जाएगा। गुणमूलक स्वभावोक्ति के मुख्यतः दो वर्ग किए जा सकते है— (अ) मानव-गुण वर्णन में स्वभावोक्ति, (आ) मानवेतर प्राणियों के गुण-वर्णन में स्वभावोक्ति।

४. व्यापारमूलक स्वभावोक्ति

व्यापार अथवा क्रिया मानव के विचारों और भावनाओं का व्यवहार पक्ष है। क्रिया के आधार पर स्वभावोक्ति दो प्रकार की होती है—(क) मानवीय व्यापारमूलक स्वभावोक्ति (ख) मानवेतर प्राणियों के व्यापार-चित्रांकन में स्वभावोक्ति।[६८]

युगीन प्रतिविम्बमूलक स्वभावोक्ति

स्वभावोक्ति के उपर्युक्त चार वर्गों में जहाँ कहीं समसामयिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक परिस्थिति की झाँकी उपस्थित हो जाती है उसे युगीन प्रतिबिम्बमूलक स्वभावोक्ति कहा जाता है। सन् १४५० से १६५० ई० तक दो सौ वर्ष की अवधि में लिखे गए राम-काव्य के अन्तर्गत समसामयिक विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं के सहज स्वाभाविक चित्र अत्यन्त विरल हैं। अतः इसी कठिनाई के कारण हम युगीन प्रतिबिम्बों को स्वतन्त्र अध्याय का रूप नहीं दे सके हैं। स्वभावोक्ति के चार मुख्य भेदों का विश्लेषण-विवेचन करते समय हम यथाअवसर युगीन प्रतिबिम्बों का समावेश करेंगे।

सन्दर्भ

१. डॉ० राघवन : भोजस शृंगार प्रकाश, पृ० १३२
२. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, पृ० ७०
३. वही
४. बाण ने 'कादम्बरी' (श्लोक ९) में तथा 'हर्षचरित' श्लोक ६ के मंगल में 'जाति' अलंकार का उल्लेख किया है।
५. नाट्यशास्त्र में यद्यपि स्वभावोक्ति का स्पष्ट उल्लेख नहीं है किन्तु भरत मुनि के रूपक को नाट्यधर्मी और लोकधर्मी दो वर्गों में विभाजित किया है जिसमें लोकधर्मी रूपकों में स्वभावोक्ति को स्थान मिला है। भावों को भी नाट्यशास्त्र में विशेष स्थान मिला है।
—श्री चारुदेव शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ, स्वभावोक्तिः, जानकीहरणे चास्य रामणीयकत्वम्, पृ० २०१, दशरथ द्विवेदी।
६. काव्यालंकार, २।१३

७. वही, २।९४

८. डॉ० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० २४२

९. "वक्रोक्ति और स्वभावोक्ति में कोई विरोध नहीं है। वक्र का अर्थ स्वभाव से भिन्न अथवा अस्वाभाविक नहीं है। वक्र का अर्थ है साधारण से भिन्न अर्थात् विशिष्ट और स्वभावोक्ति में भी निश्चय ही विशिष्टता का सद्भाव रहता है। स्वभावोक्ति में किसी वस्तु के उन मूल गुणों का वर्णन होता है जो स्वभाव से सुन्दर हों—सभी सामान्य गुणों का यथावत् वर्णन स्वभावोक्ति न होकर वार्ता मात्र होता है। स्वभावोक्ति में कवि रमणीय के ग्रहण तथा अरमणीय के त्याग में अपनी प्रतिभा अथवा कल्पना का उपयोग करता है। इस दृष्टि से उसमें वक्रता या विशिष्टता की मात्रा निश्चय ही वर्तमान रहती है और इसीलिए वह अलंकार है।"

१०. डॉ० पी० वी० काणे ने अपनी पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोयटिक्स' में दण्डी को भामह से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है।

११. दण्डी : काव्यादर्श २।८

१२. डॉ० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० २४२-४३

१३. भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्। —दण्डी : काव्यादर्श

१४. उद्भट : काव्यालंकार सारसंग्रह, ३।८९

१५. वामन काव्यालंकारसूत्राणि, ३।२।१४

१६. भोजदेव-विरचित 'शृंगारप्रकाश' एक वृहद् ग्रन्थ है जिसका अभी संपूर्णतः प्रकाशन नहीं हुआ है। हमारी उपर्युक्त धारणा का आधार डॉ० राघवन कृत 'भोजस शृंगार प्रकाश' ग्रन्थ है जिसमें उन्होंने पृ० ५१३-४२ तक मूल ग्रन्थ को उद्धृत किया है।

१७. डॉ० राघवन : भोजस शृंगार प्रकाश, 'सम कान्सेप्ट ऑफ अलंकारशास्त्र', पृ० १३३, ४३१-३२

१८ रुद्रट : काव्यालंकार, ७।३०

१९. वही, ७।१०

२०. डॉ० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० २४३

२१. वही, पृ० २४३-४४

२२. महिमभट्ट : व्यक्तिविवेक, २।११३, ११४, ११५, ११६

२३. रसानुगुणशब्दार्थचिन्तास्तिमितचेतसः।
क्षणं स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञैव प्रतिभा कवेः ॥११७॥
सा हि चक्षुर्भगवतस्तृतीयमिति गीयते।
येन साक्षात्करोत्येष भावांस्त्रैकाल्यवर्त्तिनः ॥११८॥
इत्यादि प्रतिभातत्वमस्माभिरुपपादितम्।
शास्त्रे तत्वोक्तिकोशाख्य इति नेह प्रपंचितम् ॥११९॥
अर्थं स्वभावस्योक्तिर्या सालंकारतया मता।
यतः साक्षादिवाभान्ति तत्रार्थाः प्रतिभार्पिताः ॥१२०॥

—महिमभट्ट : व्यक्तिविवेक २।११३-२०

२४. सामान्यस्तु स्वभावो यः सोऽन्यालंकारगोचरः।
श्लिष्टमर्थमलंकर्त्तुमन्यथा को हि शक्नुयात्॥ —व्यक्तिविवेक, २।१२१

२५. देखिए—डॉ० राघवन का लेख : 'हिस्ट्री ऑफ स्वभावोक्ति'

२६. काव्ये च लोकनाट्यधर्मिस्थानीयेन स्वभावोक्तिवक्रोक्तिप्रकारद्वयेनालौकिकप्रसन्न-मधुरौजस्विशब्दसमर्प्यमाणविभावादियोगादियमेव रसवार्ता।

२७. भोज : सरस्वती कण्ठाभरण, ३।४

२८. वही, ३।५

२९. डॉ० राघवन : भोजस शृंगार प्रकाश, पृ० १३२

३०. वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्चेति वाङ्मयम्।

३१. डॉ० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० २४५

३२. मम्मट : काव्यप्रकाश, १०।१११

३३. पश्चादङ्घ्री प्रसार्य त्रिकनतिविततं द्राघयित्वाङ्गमुच्चैः।
आसज्याभुग्नकण्ठो मुखमुरसि सटां धूलिधूम्रां विधूय।
घासग्रासाभिलाषादनवरतचलत्प्रोथतुण्डस्तुरङ्गो।
मन्दं शब्दायमानो विलिखति शयनादुत्थितः क्ष्मां खुरेण। —काव्यप्रकाश, ४९२

३४. उद्भट : काव्यालंकारसारसंग्रह, ३।५

३५. वस्तुनश्चित्तवृत्तेश्च सवादः स्फुटता तथा। स्वभावोक्ते रसवतो भाविकस्य च लक्षणम्। —काव्यप्रकाश

३६. रामचन्द्र द्विवेदीकृत अनुवाद : अलकारसर्वस्व संजीवनी टीका।

३७. सूक्ष्म वस्तु-वर्णन होने के कारण ही रुय्यक ने स्वभावोक्ति को गूढ़ार्थ-प्रतीतिमूलक अलंकारों में स्थान दिया है। 'सूक्ष्म वस्तु' से रुय्यक का अभिप्राय है वस्तु का वह रूप जो केवल कवि द्वारा अनुभव किया गया हो।

३८. अनुवादक—रामचन्द्र द्विवेदी : अलकारसर्वस्व संजीवनी टीका, पृ० ३३४-३५

३९. वाग्भट : वाग्भटालंकार, ४।४७

४०. हेमचन्द्र : काव्यानुशासन, पृ० २७५

४१. व्याख्याकार गुरुप्रसाद शास्त्री : चन्द्रालोक, पृ० १७४

४२. वाग्भट : काव्यालंकार, तीसरा अध्याय।

४३. विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, १०।९२ तथा वृत्ति।

४४. दे० व्याख्याकार—डॉ० भोलाशंकर व्यास, ले० अप्पय दीक्षित : कुवलयानन्द।

४५. रामचरित मानस, १।३६।४

४६. डॉ० उदयभानु सिंह : तुलसी-काव्य मीमांसा, पृ० २५८

४७. दिनांक १५-४-७३ को मानस-चतुश्शती-विषयक गोष्ठी के वक्ता।

४८. सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, का० क० अलंकार मञ्जरी, पृ० ३६९-७०

४९. रामचरितमानस में अलंकार योजना, पृ० १९८
(डॉ० साहब की परिभाषा रुय्यक के विचारों से बहुत साम्य रखती है जहाँ रुय्यक स्वभावोक्ति को सूक्ष्म वस्तु-वर्णन कहते हैं, उसी का विस्तार इनकी विचारधारा में है।)

५०. डॉ० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० २४२
५१. कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, १।११
५२. कुन्तक : वक्रोक्ति जीवितम्—१, ग्यारह से पन्द्रह कारिका।
५३. वही, प्रथम उन्मेष ११-१५
५४. डॉ० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ० २४०
५५. आचार्य शुक्ल : चिन्तामणि—भाग १, कविता क्या है ?, पृ० १८३-८४
५६. वही, पृ० १८४
५७. स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।
स्वयोस्तदेकाश्रयोः। रूपं, वर्णः सस्थानं च।। —काव्यप्रकाश, १०।११९
५८. धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश।
५९. मम्मट की परिभाषा मे प्रयुक्त स्वभावोक्ति का लक्षण-रूप एक शब्द।
६०. संस्कृत साहित्यशास्त्र में काव्य शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। वहाँ दृश्य-काव्य एवं श्रव्य-काव्य के वर्गभेद से नाटक, उपन्यास, कहानी आदि विविध साहित्य-रूपों का 'काव्य' में समावेश कर लिया गया है। आधुनिक युग के आलोचना-शास्त्र में नाटक, उपन्यास, कथा आदि को गद्य कहकर काव्य से पृथक् कर दिया गया है। आज भी हम देखते हैं कि काव्य में तो स्वभावोक्ति नवीन चमत्कार की सृष्टि करती ही है, गद्य-क्षेत्र में भी उसका महत्त्व कम नहीं है। उपन्यास नाटक एवं कथादि में भी स्वाभाविकता का तत्त्व चरित्रों का प्राण बनकर उन्हें अत्यधिक विश्वसनीय बनाता हुआ प्रमाता को रसानुभूति कराने में सहायक होता है।
६१. वामन : का० सू० १।२
६२. यदि काव्य में रसोक्ति और वक्रोक्ति को छोड़कर सर्वत्र स्वभावोक्ति मान ली जाए तो उपमादि अन्य अलंकार शुद्ध न रहकर कहीं संकर और कहीं ससृष्टि हो जाएँगे।
६३. यह उल्लेखनीय है कि हम स्वभावोक्ति को अलकार के रूप में स्वीकार करते हैं। प्राचीन संस्कृत आचार्यो की सुदीर्घ परम्परा से हमारे मत का अनुमोदन होता है। वस्तुतः स्वभावोक्ति से भिन्न वस्तु-वर्णन साहित्य में वर्णन मात्र है, अलंकार नहीं। अस्तु, हम सर्वत्र 'स्वभावोक्ति' शब्द का प्रयोग अलंकार के अर्थ मे ही करेंगे।
६४. भोज : सरस्वती कण्ठाभरण, ३।४
६५. दण्डी : काव्यादर्श, २।८
६६. डॉ० वचनदेव कुमार : रामचरित मानस में अलंकार योजना, पृ० १९९
६७. आचार्य शुक्ल : तुलसीदास
६८. विस्तार के लिए देखिए अध्याय व्यापारमूलक स्वभावोक्ति।

३

रूपमूलक स्वभावोक्ति

रूप-वर्णन के क्षेत्र में कवि की कल्पना के लिए मुक्त प्रसारण का पूर्ण अवकाश रहता है। आदि काव्य से लेकर अब तक ही हिन्दी-कवि-परम्परा ने इस अवकाश का लाभ उठाकर स्त्री-पुरुषों (नायक-नायिकादि) के रूपगत लावण्य के अत्यन्त मनोरम चित्र अंकित किए हैं। अतिशय रमणीयता का मोह त्यागकर जहाँ कवि वस्तु के प्रकृत, सहज रूप का यथा-तथ्य वर्णन इस प्रकार की सीधी सरल एवं चित्रमय शैली में कर देता है कि प्रमाता को एक अद्‌भुत आनन्द की अनुभूति हो उठती है, वहाँ पर रूपमूलक स्वभावोक्ति अलंकार का विधान कहा जाता है।

रूपमूलक स्वभावोक्ति को और स्पष्ट करने से पूर्व 'रूप' शब्द के अर्थ-विस्तार पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

रूप से अभिप्राय

भारतीय दर्शन-शास्त्र में 'रूप' शब्द अपने सूक्ष्म अर्थों मे पचतन्मात्राओं मे अन्तर्भूत है। अपने स्थूल अर्थ में वह ज्ञानेन्द्रिय चक्षु का विषय भी कहा गया है।* दर्शन के प्रसिद्ध आचार्यों ने इस सम्पूर्ण विश्व को 'नामरूपात्मक' बताया है,+ जिससे स्पष्ट है कि वस्तु के रूप की उतनी ही महत्ता है जितनी उसके नाम अर्थात् अस्तित्व की।

कोश ग्रन्थों[1] में 'रूप' शब्द को पुंलिङ्ग, संज्ञा मानकर उसके विभिन्न अर्थ दिए गए हैं, जैसे—सूरत, शक्ल, दृश्य पदार्थ, वस्तु (विशेष वर्ण से भिन्न), प्रकृति, स्वभाव, वेश, सौन्दर्य, शरीर, विभक्ति, प्रत्यय के योग से बने शब्द का रूपांतर, स्वरूप, देश-काल का भेद, दशा, लक्षण, चिह्न, विकार, भेद।

'रूप' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में दो प्रकार की सम्भावनाएँ हो सकती हैं। एक के अनुसार 'रु' धातु में 'शिल्पशष्पेति प दीर्घश्च' सूत्र से 'स्वष्प' प्रत्यय लगाकर 'रूपयतीति' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—पशुः, मृगः, स्वभावः, सौन्दर्यं, नामकं, शब्दः, ग्रन्थावृत्तिः, नाटकादिः, श्लोकः, आकारः आदि।

दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार चुरादिगण की परस्मैपद धातु 'रूप्' में अच् प्रत्यय का योग होने से रूप शब्द बना है।[2]

मनु-स्मृति में रूप शब्द आकृति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[3] कालान्तर में इस

शब्द का यह अर्थ पर्याप्त प्रसार पा गया। आधुनिक हिन्दी भाषा में भी यह शब्द इस अर्थ में प्रयोग किया जाता है। रूपगोस्वामी ने इस शब्द को अलंकृत सौन्दर्य के अर्थ में ग्रहण किया है।[४]

इस प्रकार 'रूप' शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ से इतना स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ इस शब्द का अर्थ सुन्दर आकृति से है वहाँ वस्त्रालंकारों से सुसज्जित सुन्दर वेश का भी इसमें संकेत निहित है।

साहित्य शास्त्र में रूप शब्द सुन्दर और असुन्दर दोनों से स्वतन्त्र सत्ता रखता है। रूप प्रायः तीन प्रकार का होता है—सुन्दर, असुन्दर और सामान्य। यद्यपि काव्य में मुख्य रूप से सुन्दर और चित्ताकर्षक रूप का ही वर्णन होता है तथापि भय एवं आश्चर्यादि उद्वेगो को उत्पन्न करके परिपुष्ट करने के लिए कवियों द्वारा असुन्दर अर्थात् कुरूप या विकर्षक रूप का भी अत्यन्त व्यापक वर्णन किया गया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार रूप का अनुभव प्रधानतः चार प्रकार का होता है—अनुरजक, भयावह, आश्चर्यकारक या घृणोत्पादक।[५] किन्तु शुक्ल जी के इस रूप-विभाजन को हम मुख्यतः दो वर्गों-आकर्षक एव विकर्षक—में समाविष्ट कर सकते हैं। सहज एव परिस्थितिजन्य रूप भी उल्लेखनीय हैं। काव्य में रूप-वर्णन की अतिशय महत्ता है। किसी भी वस्तु[६] या व्यक्ति का वर्णन करते समय उसके रूप का वर्णन इसलिए करना पडता है क्योंकि इसी के द्वारा कवि स्वानुभूत वस्तुओं के चित्र पाठक के मानस-पटल पर अंकित कर सकता है। काव्य के वर्ण्य-विषय या तो व्यक्ति होते हैं अथवा वस्तुएँ। दोनो ही की कुछ आकृति-प्रकृति होती है जिसका वर्णन उन वस्तुओं का अत्यन्त स्पष्ट बोधमय चित्र उपस्थित कर देता है। काव्य की जीवन्तता एवं रसमयता के लिए इस प्रकार के चित्रों का सयोजन अनिवार्य है।

सुन्दर या आकर्षक रूप के ससर्ग से सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। वस्तु का यह सौन्दर्य उसकी आकृति में निहित एक विशेष प्रकार की दीप्ति अथवा कान्ति होती है जो दर्शक के मन में सस्कार रूप से स्थित लावण्य-वासना को तृप्ति प्रदान करती है। रूप और नेत्रों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। रूप-दर्शन साध्य है और दर्शक के नेत्र उसका साधन। दूसरे शब्दों मे नेत्रो को सुख देने वाला रूप ही सुन्दर है। कालिदास की सुन्दरी युवती शकुन्तला के मादक सौन्दर्य के प्रति सौन्दर्य-प्रेमी दुष्यन्त का प्रथम अनुभव भी इसी बात को सिद्ध करता है।

सौन्दर्य के बाह्य रूप के अतिरिक्त उसका एक आन्तरिक अस्तित्व भी होता है। नैतिक मान्यताओं के अनुसार कुत्सित एवं गर्हित भाव असुन्दर तथा लोक-कल्याणपरक भाव सुन्दर होते हैं। पाश्चात्य व्यवहारवादियों ने आकृति के सौन्दर्य की उपेक्षा करके कर्म में सौन्दर्य को परखा है।[७] नैतिक मर्यादामूलक दृष्टि बाह्य रूप की अपेक्षा आंतरिक रूप को अधिक महत्ता देती है, किन्तु काव्य और काव्य-शास्त्र तत्त्वतः सौन्दर्य-शास्त्र हैं नीतिशास्त्र नहीं। अतः इसमें बाह्य रूप-सौन्दर्य को अनिवार्यतः महत्त्व दिया जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रीक सौन्दर्यवादियों की धारणा है कि आत्मा उसी की सुन्दर होगी जिसकी आकृति सुन्दर है। प्रसिद्ध छायावादी कवि प्रसाद ने भी सौन्दर्य के सम्बन्ध में

कुछ इसी प्रकार की धारणा व्यक्त की है।[८]

असुन्दर वस्तु के प्रति एक ओर जहाँ मनुष्य में विकर्षक भाव उत्पन्न होता है वहाँ दूसरी ओर यह कुरूपता मनुष्य के लिए बौद्धिक स्तर पर अग्राह्य हो जाती है। असुन्दर के सम्पर्क में आने पर, उसे सहन करने के लिए मनुष्य को मानसिक श्रम करना पड़ता है। वस्तुतः यह कुरूपता तत्त्वगत न होकर तत्त्वों के असामजस्य में निहित होती है। तत्त्वों का उचित समजन ही सौन्दर्य का प्राण है। महान् दार्शनिक श्लेगेल सुन्दर और असुन्दर के निर्धारण का आधार श्रेय की सुखद अभिव्यक्ति को स्वीकार करते हैं।[९]

सुन्दर और असुन्दर दोनों तत्त्वों का अस्तित्व परस्पर सापेक्षिक है। एक के अभाव में दूसरे की सत्ता है और एक की सत्ता दूसरे की सत्ता को अधिक उभार देती है। यदि कुरूपता का सर्वत्र अभाव हो जाए तो सौन्दर्य चर्चा का विषय न रहेगा और यदि सर्वत्र एकमात्र कुरूपता का ही अस्तित्व हो तो कुरूप शब्द अपना 'कु' उपसर्ग छोड़कर सामान्य रूप का वाचक बन जाएगा। अस्तु, सौन्दर्य कुरूपता के माध्यम से ही अपनी अर्थवत्ता को ग्रहण करता है। इसी कारण काव्य में सुन्दर रूप का वर्णन एक पक्ष की पूर्ति करता है तो कुरूपता का वर्णन उसमें विरोधजन्य चमत्कार के द्वारा सर्वांगीण रमणीयता का विधान करता है। किसी भी महाकवि की कला-कृति सुन्दर और असुन्दर रूपों के सम्यक् सन्तुलित वर्णन से ही शिल्पगत वैशिष्ट्य को प्राप्त करती है।

काव्य मे किसी वस्तु या व्यक्ति का रूप-वर्णन प्रायः रहता है किन्तु वह सभी रूपमूलक स्वभावोक्ति अलकार नही है। 'पदार्थ'[१०] के यथावत् वर्णन में भी कवि जहाँ सुन्दर तथ्यों का चयन करके उन्हें अभिधा में किन्तु सार्थक एव चित्रमय शैली में प्रस्तुत करता है वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है। यह स्मरणीय है कि यह रूप-वर्णन आलम्बन अथवा आश्रय धर्म से मुक्त होना चाहिए और व्यक्तिगत होते हुए भी यह जाति का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए। दूसरे शब्दो में स्वभावोक्ति अलंकार में वर्णित रूप अपने व्यक्तिगत वैशिष्ट्य से शून्य होकर सामान्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है। काव्य में रूपमूलक स्वभावोक्ति अलकार के विधान से कवि किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करने में सफल हो जाता है। यदि किसी पात्र का चरित्रांकन करना है तो वह स्वभावोक्ति के माध्यम से सरल एवं सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यह अलंकार काव्य की वस्तु में रमणीयता के साथ-साथ औचित्य एवं यथार्थ का समावेश करता है और साथ ही सहृदय के लिए सहज ही बोधगम्य होता है।

आधुनिक काव्य में स्वभावोक्ति अलकार को विशेष महत्त्व इसी कारण प्रदान किया जा रहा है।[११]

मध्यकालीन हिन्दी राम-काव्य के कवियों ने राम, भरत, सीता आदि पात्रों के व्यक्तित्वों को स्पष्टतः अंकित करने के लिए, व्यक्तिगत रूपों का (आकृति, वस्त्रालंकारों से सज्जित वेश एव परिस्थिति से प्रभावित रूपादि का) सहज, यथावत् किन्तु रम्य वर्णन किया है।

रूप-वर्णन के अन्तर्गत मुख्यतः मनुष्यों, पशु-पक्षियों तथा जड पदार्थों के रूप को लिया जाता है। हमारे विवेच्य राम-काव्यों में कवियों ने मानव रूप-वर्णन को विस्तार

से ग्रहण किया है।[12] पशु-पक्षियों के रूप की अपेक्षा उनके क्रिया-कलाप एवं चेष्टादि का कुछ स्थलों पर प्रभावपूर्ण वर्णन अवश्य मिलता है। जड़ वस्तुओ के वर्णन में नदी-पर्वतादि के इन कवियों ने या तो चलते वर्णन किए हैं जिन्हे साहित्यिक शब्दावली में हम वस्तु-परिगणनात्मक कह सकते है अथवा नीतिमूलक उपदेशात्मक शैली को इन्होंने अपनाया है। अस्तु इन वर्णनों में स्वभावोक्ति अत्यन्त विरल है।

मानवीय रूप-वर्णन के भेद

मानवीय रूप-वर्णन मुख्यतः चार प्रकार का होता है—(१) आकर्षक, (२) विकर्षक, (३) सहज, (४) परिस्थितिजन्य। अब हम विवेच्य राम-काव्य के अन्तर्गत इन सभी रूप-वर्णनों मे स्वभावोक्ति के विविध चमत्कारों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

आकर्षक रूपमूलक स्वभावोक्ति

सूर, तुलसी, केशव आदि राम-काव्य के प्रणेताओं ने अपने भक्तिमूलक ग्रन्थों में राम के लीलाधारी स्वरूप का वर्णन करते समय उनके ललित बाल स्वरूप, कमनीय किशोर रूप एव उदात्त भक्तवत्सल रूप का अपनी सरल वाणी मे जीवन्त चित्रांकन किया है। कहीं-कहीं भक्ति के प्रवाह मे पडकर इन कवियों का हृदय अधिक भाव-विभोर हो उठा है और इसी कारण इनका रूप-वर्णन कुछ स्थलों पर अतिशय रमणीयता-व्यजक हो गया है।

पार्वती एवं सीतादि नारी-पात्रो के तात्त्विक स्वरूप पर इन कवियों का ध्यान केंद्रित रहा है। अत इन अलौकिक पात्रों के दिव्य स्वरूप की व्यजना में अतिशय रमणीयता का स्वभावत: समावेश हो गया है। कहीं-कहीं तो जगदम्बा सीता के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए कवियो को कोई उपमा ही ध्यान में नही आयी है।[13] इन दिव्य पात्रों के स्वरूप-वर्णन में इन कवियों की वाणी अवरुद्ध हो जाती है, शेष और शारदा भी वर्णन करते हुए थक जाते है। अन्त मे कवि इन दिव्य स्वरूपों को अनिर्वचनीय कहकर अपने वक्तव्य की इति करता है।

ध्यान-सम्प्रदाय अथवा रसिक-सम्प्रदाय मे तो राम के रसिक शिरोमणि शृगारी रूप का—जनकतनया सुन्दरी सीता के साथ रस-केलि मे निमग्न रूप का—ध्यान किया जाता है जोकि अत्यन्त अलंकृत एव अतिशय रमणीय होता है। रसिक भक्त अग्रदास ने राम और सीता की युगल जोड़ी के अतिशय अलकृत तथा मनोहारी रूप का ध्यान अपने काव्य[14] मे प्रस्तुत किया है।

रूप-वर्णन मे अनिर्वचनीयता और अतिशयता का समावेश होने के कारण राम-सीता की युगल-जोड़ी रसिक भक्तों के लिए ध्यान-बिन्दु के रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो सकती है किन्तु स्वभावोक्ति के सन्दर्भ में यह रूप-वर्णन महत्त्वपूर्ण नहीं है।

बाल कृष्ण के ललित रूप एवं उनकी बाल-सुलभ चेष्टाओं के जीवन्त वर्णन में जिस प्रकार सूरदास की वाणी मुखर हुई है उसी प्रकार राम-काव्य के पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती के कवियों ने जन-जन के हृदय को हरने वाले बालक राम के सुन्दर रूप का सचित्र

वर्णन कर सरस्वती को धन्य कर दिया है। इन राम-भक्तों के काव्य में सौन्दर्य प्रधान रूपमूलक स्वभावोक्ति अलकार के द्वारा अनेक स्थलों पर औचित्य एवं औदात्त्य का समावेश हुआ है। कहीं राम का बाल-रूप एक साधारण बालक की छविपूर्ण झांकी प्रस्तुत करता है तो कहीं दिव्य सौन्दर्य से मण्डित होकर आस्थावान भक्त-हृदय का परम आराध्यदेव बन जाता है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रेक्षणीय हैं—

(क) कलबल वचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसनविसद वर बारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥[१५]

(ख) करतल सोभित बान धनुहियां।
खेलत फिरत कनकमय आंगन पहिरैं लाल पनहियां।[१६]

(ग) वनु बालबसनभूषनविहार। हरिकरजवक्षउरमुक्तहार।
कचस्यामसघनवक्रितवरूथ। जनुघेरिजलजमिलिभृंगजूथ।
पदरुणितहेमनूपुरप्रहास। हटिचलनिमंदकिलकनिसहास।[१७]

प्रस्तुत उद्धरणों में सूर, तुलसी आदि राम-कवियों ने स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से राम के आकर्षक बाल-रूप का सजीव चित्रांकन किया है। ये पद्यांश अपनी लौकिक अनुभूति में जहाँ पाठक को रस-निमग्न करने की क्षमता रखते हैं[१८] वहाँ अपनी भक्ति-मय दार्शनिक आधार-भूमि पर प्रमाता को परमप्रेमरूपा[१९] भक्ति से विभोर करने में भी समर्थ हैं।

प्रथम उद्धरण में बालक राम के अटपटे बोल, रक्तिम ओष्ठ, दो छोटी चमकती हुई श्वेत दंतुलियाँ, कोमल कपोल, सुडौल नासिका और चंद्र किरणों के समान उज्ज्वल हास्य-रेखा आदि सब मिलकर पाठक के समक्ष एक मधुर आकृति के चपल बालक का ललित बिम्ब प्रस्तुत कर देते हैं। यहाँ यथातथ्य वर्णन और सीधी सरल शब्दावली में भी कवि ने बिम्ब-लालित्य का सृजन कर दिया है।

दूसरे उद्धरण में कवि ने केवल दो पंक्तियों में ही एक रमणीय चित्र प्रस्तुत कर दिया है। शर-क्रीड़ा करते हुए राजपुत्र राम छोटे-से धनुष-बाण लिए राजमहल के स्वर्ण-मंडित आँगन में खेलते फिर रहे हैं। यहाँ राम अपने व्यक्तिगत वैशिष्ट्य से मुक्त होकर एक सामान्य राजकुमार के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। कवि की कुशलता इस बात में है कि उसने थोड़े-से शब्दों में बिना किसी वाग्विदग्धता के ही एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर दिया है। स्वभावोक्तियों के द्वारा कवि किसी पात्र के चरित्र का अधिक स्पष्ट चित्रण कर सकता है। यहाँ बालकराम का मृगया-प्रेम उनके भावी वीर धनुर्धर रूप का स्पष्ट सकेत करता है। बालकपन की इन्हीं रुचियों का विकास हमें राम के चरित्र में अनेक राक्षसों एव रावण के वध में प्राप्त होता है। यदि इन कवियों ने राम के इस स्वभाव को बाल्यावस्था से न जोड़ा होता तो कदाचित् इनके काव्य मे औचित्य का निर्वाह इतनी सफलता से न हो पाता।

तीसरे उद्धरण में कवि ने श्री राम के वस्त्रालंकारों के वर्णन के साथ-साथ उनके सघन-श्यामल केश, हठीली चाल तथा सुमधुर किलक-गुंजित हास्य का वर्णन करके एक

मनोहारी चपल बालक का रम्य रूप अंकित कर दिया है।

राम के किशोर रूप की कमनीयता के प्रसंग में कविवर तुलसी का सहज वर्णन द्रष्टव्य है—

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे धनु काँधे धरे कर सायक लै।
बिकटी भृकुटी बड़री अँखियां अनमोल कपोलन की छवि है।[२०]

महाकवि तुलसीदास ने इन दो पंक्तियों में अपने आराध्य राम के 'कोटि मनोज लजावनि हारे' रूप को स्पष्टतः उभारने के लिए नव किसलय-सज्जित द्रुमडाली को पकड़कर खड़े हुए राम के रूप-लावण्य को अपना वर्ण्य-विषय बनाया है। राम की मनोरम आकृति में बंकिम भृकुटि-रेखा, विशाल कमल-नेत्र एवं ललित कपोल, प्रकृति के नव-पल्लवित परिवेश का सान्निध्य पाकर और भी अधिक चित्ताकर्षक हो उठे हैं। कवि ने प्रकृति का जो सौन्दर्य यहाँ उपस्थित किया है वह राम के किशोर रूप में अत्यधिक ऐन्द्रिय संवेदन का समावेश करता है। कंधे पर धनुष-बाण रखे हुए, वृक्ष की नव-पल्लवित डाली को पकड़कर खड़े होने की मुद्रा राम के रूप को एक बिम्ब से जोड़ती है जिसका आधार स्वभावोक्ति अलंकार है।

महाकवि तुलसी द्वारा राम की इस छवि का यह वर्णन अपनी मर्म-स्पर्शिता में परवर्ती राम-कवियों के अन्तर्मन को कहीं गहरे तक छू गया है और उनके काव्य में इस प्रभाव की स्पष्ट प्रतिध्वनि है। उदाहरण के लिए कवि नरहरि की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

दूर्वादलस्यामलतनदयाल। वनिलोचनकमलायतविसाल।
जटजूटमुकटवनचीरवास। कटितटनिसंगकसिसावकास।
जुतवामपानिधनुजगतजेव। दक्षनकरभ्रामितविशिषदेव।[२१]

यहाँ राम के मनोहारी स्वरूप को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उपमादि अलंकारों के साथ स्वभावोक्ति को संश्लिष्ट करके कवि ने प्रस्तुत किया है। सकर अलंकार वर्ण्य-वस्तु को दोहरा चमत्कार प्रदान करते हैं। इसी कारण यहाँ राम की रूप-माधुरी के साथ-साथ दूर्वादल की मनोरम कोमलता भी पाठक को अभिभूत कर देती है।

"रूप गुण और क्रिया तीनों का अनुभव तीव्र करने के लिए अधिकतर सादृश्य-मूलक उपमा आदि अलंकारों का ही प्रयोग होता है।"[२२] शुक्ल जी के इस कथन से स्पष्ट है कि रूप-गुण अथवा क्रिया का अनुभव तीव्र करना ही कवि की अलंकार-योजना का उद्देश्य होता है। किन्तु उपमान आदि बाहरी पदार्थों को छोड़कर वर्ण्य-वस्तु (उपमेय) के शुद्ध रूप का चित्रण जहाँ साधारण पाठक को भी (बौद्धिक प्रयास न करने पर भी) अत्यन्त आनन्द प्रदान करता है, वह वस्तु को अलंकृत एवं वक्र बनाने वाला स्वभावोक्ति अलंकार होता है, जो शुक्ल जी को मान्य नहीं था।

मध्ययुगीन राम-काव्यों में कवियों ने तथ्य-चयन में अद्भुत कुशलता का परिचय दिया है और साथ ही इन तथ्यों को सहज सरल शब्दों में संयोजन करके अपने शैलीगत वैशिष्ट्य को प्रकट किया है।

राम की रूप-राशि के सहज निश्छल वर्णन के अतिरिक्त इन भक्त कवियों ने उनके दिव्य स्वरूप का भी भव्य चित्रांकन सीधी-सरल शब्दावली में किया है। 'मानस' में सीता की सखी के मुख से कवि ने राम के रूप का जो अलकृत वर्णन प्रस्तुत कराया है, वह रीतिकालीन नायिका के नख-शिख वर्णन का सहज ही स्मरण करा देता है।[२३] किन्तु कवि का चातुर्य यहाँ इस बात में है कि उसने राम के अंग-प्रत्यंग के लावण्य का वर्णन करने के लिए सीता की सखी को चुना है, स्वयं सीधा वर्णन नहीं किया। यदि यह वर्णन सीधा कवि ने इसी धारा-प्रवाह रूप में (सीता की सखी को बीच में न लाते हुए) किया होता तो वह पाठक के लिए चमत्कार-शून्य वर्णन-मात्र होता। कवि की मनोवैज्ञानिक पहुँच के परिणामस्वरूप यह वर्णन सखी के साथ जुड़कर एक नवीन चमत्कार पा गया है जिसे हम स्वभावोक्ति कहते है। प्राय: सखियाँ ही अपनी सखी के प्रेमी अथवा भावी पति का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसके सौन्दर्य का सांगोपांग वर्णन किया करती है। इस प्रकार के वर्णनों में उनकी वाणी में विदग्धता का स्वत: समावेश हो जाया करता है। सीता की सखियों ने तो राम को देखते ही इस सम्बन्ध की कामना प्रकट कर दी थी।[२४] स्वभावत: भी सखियाँ ही किसी किशोर के कमनीय रूप का भव्य वर्णन परस्पर निस्संकोच होकर कर सकती है।

आकर्षक रूप का चित्रांकन करने मे स्वभावोक्ति अलकार की उपादेयता इस बात में है कि वह किस सीमा तक पाठक को रूप की तीव्र अनुभूति करा सकती है और साथ ही उसके हृदय में सहज आकर्षणजन्य प्रीति[२५] के सवेग को किस अश तक उद्बुद्ध कर सकती है? इस दृष्टि से उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि राम-काव्य के कवियों ने स्वभावोक्ति अलंकार का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया है। रूपवर्णनमूलक स्वभावोक्ति का एक अन्य प्रयोजन है—पात्रों के रूपांकन के माध्यम से उनके चरित्र की सांकेतिक व्यजना करना। आकृति का सौन्दर्य ही आत्मा का सौन्दर्य होता है। अत: राम-लक्ष्मण आदि राम-कथा के दिव्य पात्रों के पारलौकिक रूप-सौन्दर्य के चित्रण के माध्यम से इन कवियो ने इनके शीलशक्ति युक्त आत्मिक सौन्दर्य एवं भव्य चरित्रों की व्यंजना की है।

विकर्षक रूप-वर्णनों में स्वभावोक्ति

रूप का लालित्य जहाँ चित्ताकर्षण का मूलाधार है वहाँ बाह्य स्वरूप में व्यवस्थागत दोष-जन्य कुरूपता मानवीय मनोवृत्ति के लिए विकर्षण का कारण बन जाती है। चित्त के विकर्षण की स्थिति में मुख्यत: दो भाव हो सकते हैं—घृणा और भय। राम-काव्य के (विवेच्य) कवियों ने, मुख्यत: महाकवि विष्णुदास ने, विकर्षक रूप-चित्रण में अत्यन्त सहजता एवं स्वाभाविकता का समावेश किया है। कवि-सम्राट् तुलसी एवं महाकवि सूरदास को जहाँ रम्य रूप-वर्णनों में सहज सफलता प्राप्त हुई है वहाँ गोस्वामी विष्णुदास को स्वभावोक्ति के माध्यम से लकावासियों की भयानक, विकराल मुखाकृतियों के सजीव चित्रांकन में अद्भुत सफलता मिली है। पाठक को इन वर्णनों को पढ़कर भय की तीव्र अनुभूति होती है और उसके समक्ष राक्षसों का जीवन्त बिम्ब प्रस्तुत हो जाता है।

विष्णुदास के काव्य-शिल्प का वैशिष्ट्य इसी गुण में निहित है कि उन्होंने सीधे सरल शब्दों में व्यक्ति के रूप, गुण क्रियादि की तीव्र अनुभूति को समग्रतः व्यजित कर अत्यन्त प्रभावशाली बिम्ब प्रस्तुत किए हैं।

मुनि विश्वामित्र के साथ वन को जाते हुए राम-लक्ष्मण को देखकर राक्षसी ताड़का दौड़कर उनकी ओर आती है। उसका स्वरूपाख्यान कवि विष्णुदास की वाणी में देखिए—

धाई सुनत बदन बिकरार। चहुंदिसि सिर बगराएं बार॥
नान्है नयन बदन मसियार। दीसति कुटिल काल अनुहार॥
कान देखियत सूप समान। नासा निमन नैन मसि बान॥
ऊरध जंघ करति अति गाज। सुनतहिं सबद सिंह गज माज॥[२६]

यहाँ कवि ने राक्षसी के विकराल रूप को मूर्तिमान् करने के लिए उसके प्रत्येक अंग की कुरूपता का सहज आख्यान किया है। भयकर आकृति, काली देह और सिर के चारों ओर बिखरे हुए बाल, छोटी-छोटी आँखें, सूप के समान बडे-बड़े कान, नीची (चपटी) नाक आदि अवयवों की पूर्ण अव्यवस्था आकृति में जीवन्त भयंकरता उत्पन्न कर देती है जिसे कवि ने कुटिल काल से उपमित कर दिया है। ताडका के राक्षसी-तत्त्व को उभारने के लिए कवि ने उसकी भयकर गर्जना को भी रूपाकृति में समन्वित कर दिया है। जहाँ तक स्वभावोक्ति के द्वारा रस-विधान का सम्बन्ध है—इस प्रकार के वर्णन भय, आश्चर्य एवं घृणा आदि अनेक संवेगों को सहज ही उद्‌बुद्ध कर देते है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी राम-काव्य के मध्यकालीन कवियों ने स्वभावोक्ति अलकार के सहज प्रयोग द्वारा रसानुभूति को एक विस्तृत आयाम प्रदान किया है।

चरित्र में वीरतामूलक उत्साह को व्यंजित करने वाला परशुराम के तेजस्वी रूप का चित्र एक ओर पाठक को वीर रस की सामग्री प्रदान करता है तो दूसरी ओर स्वभावोक्ति अलंकार के चमत्कार के कारण परशुराम के दिव्य स्वरूप का बिम्ब प्रस्तुत करता है—

भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुं चितवत मनहुं रिसाते॥
वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृग छाला॥
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधें। धनुसर कर कुठारु कल कांधें॥[२७]

यहाँ विशाल स्कंध, बाहु एवं प्रशस्त वक्षादि का अंकन परशुराम के बलिष्ठ शरीर का चित्र मात्र नहीं है अपितु इस वर्णन के द्वारा उनके चरित्र का उत्साह एवं अपूर्व तेज स्पष्टतः व्यक्त होता है। अस्तु यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा कवि ने पाठक को परशुराम के देदीप्यमान स्वरूप का साक्षात्कार कराकर आश्चर्य की अनुभूति करा दी है, साथ ही परशुराम का 'कुठार' सज्जित वेश भी पाठक के समक्ष बिम्ब रूप में उपस्थित हो जाता है।

हनुमान जब लंका में प्रवेश करते हैं तब उन्हें स्वयं अपना आकार भी परिवर्तित करना पड़ता है। उस समय उनकी आकृति तथा राक्षसियों के विकराल रूप का समन्वित

चित्र कवि विष्णुदास प्रस्तुत करते है—

इतने कहि तिहि कीनौ रूप। मानहु पर्वत मेर अनूप॥
मुंह रातौ पियरौ जु सरीर। सीता देख्यौ हनुमत बीर॥
विकट दंत नख तीक्ष्ण कराल। चहुंदिसि सिर मुकराएं बाल॥[२८]

हनुमान द्वारा अपने शरीर का विस्तार कर लेना अनेक कवियों ने राम-कथा के प्रसंग में वर्णित किया है।[२९] किन्तु विशाल पर्वताकार हनुमान के पीले शरीर एव लाल मुखाकृति ने उनके रूप की भयकरता को जीवन्त बना दिया है साथ ही इस भयकरता को और अधिक घनीभूत करने के लिए कवि ने राक्षसियों का चित्र भी अंकित कर दिया है। हनुमान के भयंकर रूप को जैसे ही सीता ने देखा वैसे ही हनुमान को सीता के निकट खड़ी राक्षसियाँ दिखाई दीं। इन राक्षसियों के दाँत अपने पूर्ण भयावह रूप में बाहर निकले हुए थे, अत्यन्त पैने उनके बड़े-बड़े नख दिखाई दे रहे थे। इस प्रकार पाठक पहले तो हनुमान की विकराल आकृति के बिम्ब से अभिभूत होता है तत्पश्चात् उसके समक्ष राक्षसियों के लम्बे-लम्बे दाँत और नाखून आकर उसकी अनुभूति मे एक सिहरन उत्पन्न कर देते हैं।

हमारे आलोच्य राम-कवियों में भयकर आकृति-वर्णन के क्षेत्र में कवि विष्णुदास की लेखनी ने अपूर्व शक्तिमत्ता का परिचय दिया है। सूर का लालित्य-प्रेमी हृदय, तुलसी की विशद प्रतिभा, अग्रदास की अलंकृत सौन्दर्याभिभूत वाणी तथा केशव और सेनापति की कवित्व-शक्ति—कोई भी विष्णुदास के समान भयंकर आकृति-वर्णन मे नहीं रम सकी। लंकावासियों का रूप-वर्णन करते समय कवि स्वभावोक्ति के माध्यम से जीती जागती लंका का चित्र प्रस्तुत कर देता है—

इक इक अंखि बहुत तिन बंक। एकति लंब कान अति नंक॥
एकति मुंह बिगराल। एकनि कंठ मुंड की माल॥
एक जूथ पर्वत आकार। खिनकु न कर छोडहि हथियार॥[३०]

हमारे कवि के अनुसार लंका में रहने वाले निशाचर सभी विभिन्न प्रकार की विरूपता लिए हुए है। किसी की आँखें टेढी हैं तो किसी के नाक या कान अत्यधिक लम्बे हैं। एक ने अपने भयंकर मुख को खोल रखा है तो एक के गले में नरमुण्डों की माला है। कोई-कोई अत्यन्त विशाल पर्वत के आकार वाला है। कोई भी हाथ से क्षण भर को भी हथियार नहीं छोड़ रहा है। नित्य ही दिन-रात वे मदिरा पान करते है। हनुमान अपने शरीर को सूक्ष्म करके लका के इस विचित्र रूप को देख रहे है।

इस समस्त वर्णन में लका का जो चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है वह राक्षसों के रूप की अनुभूति को तीव्रतर करने के साथ उनके नित्य विलासी मदिराप्रेमी चरित्र की भी स्पष्ट व्यंजना करता है। इस प्रकार यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार की योजना द्वारा कवि ने वस्तुगत रमणीयता के साथ चरित्रांकन पर भी बल दिया है।

सीता को सताती हुई राक्षसियों के भी अत्यन्त भयावह चित्र हमारे आलोच्य काव्य में उपलब्ध होते हैं, यथा—

बैठी सोचि सघन तरु डार। देखि राखसी ऊँच लिलार॥
लांमैं ओठ कान नख दंत। भ्रू लौं केस रूरे झूलंत॥
लांमी नाक कान बाहिरी। दीसहिं बिकट बावनी तिरी॥[३१]

रूपाकृति की भयंकरता में अभिवृद्धि करने के लिए कवि ने क्रियाओं का रूप के साथ ही सन्निवेश करके संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया है—

सीता वचन सुनत सब नारि। चौहूं तन उठियौ किलकारि॥
जीभ पसारहिं मुंह बिकराल। कट कटंति तिन दसन कराल॥[३२]

सीता को भय दिखाती हुई राक्षसियों की आकृति—लम्बे दाँत, ओठ, कुरूप नासिका तथा चारों ओर फैले बालों के कारण जितनी भयकर है उससे अधिक भयंकर वह उस समय हो जाती है जब वे किलकारती हैं, जीभ पसारती (लपलपाती) है और दाँत किटकिटाती हैं। इस प्रकार राम-भक्त कवियों के काव्य मे स्थिर रूप-चित्रण की अपेक्षा सुन्दर गतिशील रूपों के जीवन्त बिम्ब प्रस्तुत किए गए हैं।

कुम्भकर्ण के भूधराकार शरीर का वर्णन कवि केवल वर्णनात्मक शैली में न करके उसके साथ एक विशेष स्थिति जोड़ देता है—

नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥
सहज भीम पुनि बिनु श्रुतिनासा। देखत कपिदल उपजी त्रासा॥[३३]

कुम्भकर्ण को भयावह बनाने के लिए यहाँ नाक और कान से विहीन उसके विकर्षक रूप को कवि ने ग्रहण किया है। विकर्षक होने पर भी वह वीर और रण-कुशल है। उसके योद्धा रूप की व्यंजना को तीव्रतर बनाने के लिए कवि कपिदल पर उसकी प्रतिक्रिया का साथ ही अकन कर देता है।

सहज रूपमूलक स्वभावोक्ति

कोई व्यक्ति आकर्षक अथवा विकर्षक न होकर जब सामान्य रूप का बोध कराता है तो उसके यथातथ्य वर्णन को सहज रूपमूलक स्वभावोक्ति कहते हैं। सहज रूप के वर्णन में जहाँ कवि-प्रतिभा चमत्कार उत्पन्न करती है वहीं रसानुभूति का अवसर उत्पन्न हो जाता है।

मध्ययुगीन राम-कवियों ने अपने आराध्य के अतिरमणीय रूप के जहाँ आह्लाद-कारी चित्र अंकित किए हैं वहाँ कुछ स्थलों पर सहज रूप को भी अपना वर्ण्य विषय बनाया है। यद्यपि हमारे आलोच्य राम-काव्य में सहज रूप-वर्णन के स्थल अत्यल्प हैं तथापि अपनी मार्मिकता में वे सहज प्रशंसनीय हैं।

राम के नहछू का अवसर है। नाइन आदि सामान्य स्त्रियाँ उत्साहपूर्वक उसमें भाग ले रही हैं। राम-कवियों की दृष्टि लोक-संस्कृति के भीतर झाँककर अपने वर्ण्य-विषय का पर्याप्त विस्तार करती हुई प्रतीत होती है। महाकवि तुलसीदास के काव्य से दो उद्धरण यहाँ पठनीय हैं—

(क) नाउनि अति गुनखानि तौ बेगि बोलाइ हो।
करि सिंगार अति लोन तो बिहसति आई हो॥
कनक चूनिन सों लसित नहरनी लिये कर हो।
आनंद हिय न समाइ देखि रामहि वर हो॥[३४]

(ख) काने कनक-तरीवन, बेसरि सोहइ हो।
गजमुकुता कर हार कंठभनि मोहइ हो॥
कर कंकन कटि किंकिनि नुपुर बाजइ हो।
रानी कै दीन्हीं सारी तौ अधिक विराजइ हो॥[३५]

उपर्युक्त उद्धरणों में नाइन का वस्त्राभूषणों से अलकृत रूप अत्यन्त स्वाभाविक शैली में प्रस्तुत किया गया है। दो छन्दों में महाकवि ने नाइन के गुण-युक्त आन्तरिक व्यक्तित्व तथा कर्णफूल, बेसरि, मुक्ताहार, किंकिनि-नूपुर, एव साड़ी से सुसज्जित बाह्य व्यक्तित्व का सयुक्त चित्र अकित कर दिया है। सामान्य शब्दों में जीवन्त बिम्ब को प्रकाशित करने वाला यह वर्णन रसानुभूति का अनन्य सहयोगी सहज रूपमूलक स्वभावोक्ति अलकार है।

अहिल्या के सम्मुख खड़े श्रीराम का सहज रूप भी अत्यन्त प्रभावशाली शब्दावली में राम-कवियों ने प्रस्तुत किया है, उदाहरार्थ—

नीलजलदतनस्याममंदमुखहासविलासित।
वसनपीतकौसेयकनककुंडलमकराकृत।
उरविसालउत्तंगभाललोचनकमलाइत।
कटिनिषंगकरधनुर्वानभुजजानुप्रलंबित।
सप्रसन्नवदनसानुजसदय श्रीयसेवितअसरनसरन।
अवलोकिअहिल्याउच्यरीयहरित्रिलोकसंकटहरन।[३६]

यहाँ कवि ने श्रीराम की मुखाकृति एवं वेश-सज्जा के अतिरिक्त उनके प्रसन्न-विलसित मुख का वर्णन करके वस्तु-वर्णन को नूतन चमत्कार मडित रूप प्रदान किया है। वस्तु-वर्णन का यही चमत्कार उसकी अलकारता है।

एक स्थान पर भील-जाति के सामान्य रूप-वेश का वर्णन अधिक जीवन्त बनाने के लिए कवि ने उसमें अत्यन्त सामान्य थोड़ी-सी चेष्टाओं को भी सम्मिलित कर लिया है, उदाहरण द्रष्टव्य है—

अंगरी पहिरि कूड़ि सिर धरहीं। फरसा, बांस सेल सम करहीं॥
एक कुसल अति ओड़न खांड़े। कूदहिं गगन मनहुं छिति छांड़े॥[३७]

यहाँ अंगरी पहने हुए फरसा-बाँस धारी भीलों का कूदना उनके वर्णन को चित्रात्मक बना देता है। रूप-वर्णन की जीवन्तता का मुख्य तत्त्व है गतिशीलता।

राम कवियों ने अपने सहज रूप-वर्णनों में भी लघु और क्षणिक क्रियाओं को जोड़कर गतिशीलता के तत्त्व का प्रायः समावेश किया है। विषपान करते हुए शिव का

रमणीय चित्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है—

है कुशलवृषभविषसूलसेष। मृगचर्मवाघवारनविशेष।
कनकवनभस्ममानुषकपाल। करदंडज्वलितमंगलकराल।
स्रपताशशिभूतपिशाचसाथ। मेषलीझोलिकापंचमाथ।
आवरनगट्टकौपीनअंग। आरक्तनेत्रअलसातअंग।
उनमत्तबीजभंगीअहार। विषअमलचढ़ावतवारवार।[३८]

यहाँ शूलपाणि महादेव वृषभ एव शेष से सहित मृगचर्म धारण किए हैं। भस्म एव नर-कपाल मडित, दड तथा भूत-पिशाचों से घिरे झोलिका एवं कौपीन (लंगोट) धारी, आरक्त नेत्र, अलसाते हुए महादेव उन्मत्त होकर बार-बार कठ में विष चढा रहे हैं। प्रस्तुत वर्णन मे महादेव के अरुण नेत्र, अलसाती हुई देह तथा निरन्तर विषपान करने की क्रियाएँ चित्र को चामत्कारिक गत्वरता प्रदान करती है। रूखे-सूखे गतिहीन वर्णनों में स्वभावोक्ति अलकार गति के चमत्कार से जीवन्तता का विधान कर देती है।

ऊपर उल्लिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि राम-कवियों ने सहज रूप के अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन प्रस्तुत किए है। सामान्य वस्तु-वर्णन एवं स्वभावोक्ति रूप-वर्णन का अन्तर स्पष्ट करने के लिए हम बिहारी का एक दोहा उद्धृत करते है—

सीस मुकुट कटि काछनी उर बैजन्ती माल।
यह बानिक मो मन बसै सदा बिहारीलाल।।[३९]

प्रस्तुत दोहे में वस्तु-वर्णन तो है किन्तु स्वभावोक्ति का चमत्कार नही। पिछले पृष्ठों पर उद्धृत नाइन अथवा शिव के वेश-वर्णन का-सा चमत्कार हमें यहाँ उपलब्ध नही होता। यद्यपि स्वभावोक्ति वस्तुमूलक अलकार है तथापि वस्तु की यथातथ्यता में भी तथ्य-चयन की कवि-प्रतिभा का चमत्कार ही वस्तु में अलकारता के गुण का सन्निवेश करता है।

परिस्थितिजन्य रूपमूलक स्वभावोक्ति

किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति का प्रकृत रूप चाहे वह आकर्षक हो अथवा विकर्षक, उसका पूर्ण अस्तित्व नही होता। वस्तु विशेष का किसी विशेष परिस्थिति में एक भिन्न प्रकार का रूप हो जाता है। किसी वियोगिनी स्त्री का अस्त-व्यस्त रूप, किसी मदिरान्ध व्यक्ति का रूखा-सूखा रूप, किसी के प्रति क्रोध, प्रेम, हर्ष, विषाद आदि भावों की प्रतिक्रिया-मूलक परिस्थिति में परिवर्तित रूप इस तथ्य की पुष्टि के लिए उदाहरणार्थ लिए जा सकते हैं।

मध्यकालीन राम-भक्त कवियों ने राम के वियोग में अत्यन्त विकल तथा जीवन के प्रत्येक रस-रंग से उदासीन भरत के रूप का स्वाभाविक चित्र सीधी सरल शब्दावली में प्रस्तुत किया है। अपने अग्रज के प्रति अत्यन्त निश्छल तीव्र अनुराग रखने वाले भरत को राम का वियोग असह्य हो जाता है। यद्यपि भरत की माता ने उसके लिए निष्कंटक राज्य की कामना की थी किन्तु जिस कामना के पूर्ण होने पर परम स्नेही व्यक्ति का अकारण वियोग भोगना पड़े, ऐसे साम्राज्य की भरत के मन में तनिक भी इच्छा नहीं

है। मध्ययुगीन राम-भक्त कवियों ने भरत के चरित्र में उदात्त तत्त्व की अत्यन्त उच्च धरातल पर अवतारणा की है। राम के प्रति भरत के सहज स्नेह को तुलसी ने 'भायप भगती'[४०] कहा है। इससे स्पष्ट है कि भरत ने राम को बड़ा भाई ही नहीं सर्वत्र अपना स्वामी समझा है। भरत के राम के प्रति अनन्य अनुराग की भक्तिदर्शनमूलक व्याख्या करते हुए डॉ० रामनिरजन पांडेय लिखते हैं

"भरत का राम-प्रेम विराट् आनन्द की अभेदानुभूति की प्रकाशमय समाधि है। इस अभेद की अनुभूति में वैयक्तिक जीवन के हर्ष-शोक, सुख-दु ख सब समाप्त हो जाते हैं। केवल विराट् आनन्द का प्रकाश ही अवशिष्ट रह जाता है।"[४१]

अपनी दार्शनिक पीठिका पर भरत की राम-चरणों मे प्रीति भले ही उच्च कोटि की भक्ति हो किन्तु लौकिक स्तर पर तो उसे हम भ्रातृ स्नेह का उज्ज्वल रूप ही स्वीकार करेंगे। भरत का प्रेम अपने लौकिक और पारलौकिक दोनो ही स्तरों पर पाठक के मन को विमुग्ध करने वाला है। राम के वियोग में भरत के आसक्तिहीन रूप का चित्रांकन कुछ पद्यांशो में द्रष्टव्य है—

(क) **देखौ कपिराज भरत वे आये।**
मम पांवरी सीस पर जाके करि अंगुरी रघुनाथ बताये।
छीन सरीर बीर के बिछुरें राग भोग चितते बिसराये।[४२]

(ख) **खोदि भूमि थानी संथरी। बकला पहिर जटासिर धरी॥**
राम नाम हियरां धरै। इहि बिधि भरथ कुंवर ब्यापरै॥[४३]

(ग) **बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।**
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥[४४]

इन सभी उद्धरणों में भरत के विरक्त रूप को उभारने के लिए उसके क्षीण शरीर, वैरागी चित्त, सिर पर योगियों की-सी जटाएँ, वल्कल वस्त्र एव कुश-आसन पर बैठना आदि तथ्यों के द्वारा भरत के स्वरूप का मार्मिक अंकन किया गया है। साथ ही इन कवियों ने भरत के बाह्य रूप की विरक्ति को अधिक मर्मस्पर्शी बनाने के लिए, उसकी भावनाओं का भी चित्रण कर दिया है। मुख से निरन्तर राम का नाम जपना, नेत्रों से अश्रु-धारा बहाकर अपने भ्राता—तात्त्विक दृष्टि से इष्टदेव—के प्रति अपने अनन्य अनुराग को प्रकट करने वाला भरत का यह रूप पाठक के सम्मुख एक ओर जहाँ विरक्त अवस्थाजन्य सहज रूप का स्पष्ट बिम्ब प्रस्तुत करता है वहाँ दूसरी ओर उनके चरित्र के औदात्त्य की भी स्पष्ट व्यजना करता है। लौकिक स्तर पर भरत का यह चरित्र एक उच्च कोटि का पारिवारिक आदर्श प्रस्तुत करता है। मध्यकालीन समाज के टूटते हुए पारिवारिक आदर्शों के बीच[४५] राम-भक्त कवियों द्वारा प्रस्तुत भरत का भ्रातृ-प्रेम-पगा निर्मल चरित्र एक सशक्त सामाजिक चेतना का प्रतिफलन है। वन को प्रस्थान करते हुए राम-लक्ष्मण आदि का परिस्थितिजन्य परिवर्तित वेश कवि हृदयराम ने अत्यन्त भावमय शब्दावली में चित्रित किया है, उदाहरणार्थ—

भसम लगाऊं गात चंदन उतारी तात
कुंडल उतारो मुद्रा कान पहिराइयों।
जटाउ संवारों केस गोरख को करो भेस
जानकी लखन को हौं कंथाऊ सिवाइयों॥
खप्पर लें हाथ भीखू हौंहूं भांग आन देउं
देखें मुख जीऊं नहीं प्रानन बहाइयों॥[४६]

यहाँ राम-लक्ष्मण आदि के राजकीय सुसज्जित वेश को योगियों की मुद्रा-धारिणी वेश-भूषा में परिवर्तित करने का चित्र अधिक चमत्कारपूर्ण इस कारण हो उठा है कि कवि ने एक-एक वस्तु का उसकी विरोधी वस्तु के साथ अंकन किया है। सुकोमल युवा शरीरों से सुवासित चंदन उतारकर भस्म लगाना, कानों में स्वर्ण-मणि-खचित कुंडल उतारकर मुद्रा धारण करना, केशों को जटाओं के रूप मे अस्त-व्यस्त करना, कंथा-वस्त्र एवं हाथ में खप्पर धारण करने से रामादि का वेश वीतराग योगियों का हो गया है। इस प्रकार के विरोधमूलक वर्णन को पढकर सहृदय के मानस-पटल पर एक विचित्र बिम्ब उभर आता है। राजकीय पोषाक के स्थान पर कंथा वस्त्र एव राजदण्ड[४७] (मुद्रा) धारण करने के स्थान पर खप्पर धारण करना अपने आप में अत्यन्त मार्मिक स्थिति को व्यक्त करता है।

रूप के इस भावपूर्ण स्वाभाविक वर्णन की दृष्टि से हृदयराम अन्य कवियों से पार्थक्य रखते है।

मध्ययुगीन राम-काव्यो में महासती सीता के वियोग-जर्जरित रूप के अत्यन्त मार्मिक चित्र उपलब्ध होते हैं। रूपमूलक स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग करके इन कवियों ने सीता के गुणी चरित्र को अनन्त युगजीवी बना दिया है। सीता की वियोगजन्य कृशता, चिंता एव पीडा से सवलित रूप के कुछ चित्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये जा सकते हैं-

(क) बिछुरी मनौ संग ते हिरनी।[४८]
चितवत रहत चकित चारौं दिसि उपजी विरह तन जरनी।
तरुवर मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी।
वसन कुचील चिहुर लपिटाने विपति जाति नहिं बरनी।
लेति उसास नयन जल भरि भरि धुकि सौं परै धरि धरनी।
सूर सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी।[४९]

(ख) धरे एक वेनी मिली मैल सारी।
× × ×
सदा राम नामै रटे दीन बानी।[५०]

(ग) सीता बैठी लंका मांह। राम जपति सीसे की छांह॥
पहिरैं वीर पटोरी चीर। रूंधे नयन झिरैं अति नीर॥[५१]

(घ) मैं देखी जब जाइ जानकी, मनहु विरह-मूरति मन मारे॥
चित्र से नयन अरु गढ़े-से चरन-कर, मढ़े स्रवन नहिं सुनति पुकारे।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रहै, नित निजपद कमल निहारे॥[५२]

(ङ) ओंधे बदन गयौ आनंदु। मानहु राहु गिल्यौ है चंदु॥
मैले कपड़ा आंसू भीन। दीसति सीता अति गति दीन॥
× × ×
आंसू हियें परत मनियार। जनु टूटहिं मोतिन की मार॥
बैनी दंड मैल जरि रह्यौ। ता मुख चन्द्र राहु जनु ग्रह्यौ॥
मलिन अंग सोहति सुंदरी। कनक पत्र पंकज जनु भरी॥
ना कर कंकन कुंडल हार। नाहिन नेवर पग झुनकार॥[43]

निस्तब्धता, अनन्यता, कृशता, संतप्तता चिंता और प्रेम की पीडा व्यक्त करने वाले उपर्युक्त उद्धरणों में सीता के मैले वस्त्र, एक वेणी (शृंगारहीन वेश की प्रतीक) और निरन्तर सजल नेत्रों से पति का नाम रटना हमारे सम्मुख सीता के वियोग-विकल रूप में घनीभूत सवेदना का समावेश कर देते हैं। तीसरे उद्धरण में तुलसी द्वारा सीता का अत्यन्त मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। विरह-विदग्धा सीता के नयन निर्निमेष हैं, हाथ-पैर निष्क्रिय हैं, श्रवण पुकारने पर भी सुन नहीं रहे हैं, उनकी जिह्वा नित्य निरन्तर अपने प्रिय पति का नाम लेती रहती है और उनका हाथ बहुत देर तक सिर पर रखा रहता है, दृष्टि अपने ही चरणों को निहारती रहती है। यहाँ कवि ने रूप एवं चेष्टा का कुछ इस प्रकार के अनुपात में मिश्रण किया है कि उसका वस्तु-वर्णन साधारण शब्दों में एक गहरी अनुभूति का सुन्दर, जीवन्त बिम्ब प्रस्तुत करने में समर्थ हो गया है। स्वभावोक्ति अलकार के माध्यम से यहाँ कवि ने सीता के अनन्य पति-अनुराग की सांकेतिक व्यंजना की है। अन्तिम उद्धरण में कवि विष्णुदास द्वारा सीता का अनलंकृत रूप (कंगन, कुंडल, हार तथा नूपुरों से रहित रूप) एक ओर जहाँ सीता के वियोगजन्य रूप की व्यंजना करता हुआ औचित्य का निर्वाह करता है वहाँ दूसरी ओर एक मनोवैज्ञानिक सत्य का प्रकाशन भी करता है। कोई भी स्त्री अपने पति से वियुक्त होकर शृंगार में रुचि नहीं रख सकती और उसकी प्रसन्नता भी पति वियोग में लुप्त हो जाती है।

सारांशतः स्वभावोक्तियों मे प्रस्तुत मनोवैज्ञानिक सत्य एक ओर तो काव्य को अधिक मर्मस्पर्शी बनाते हैं तथा दूसरी ओर वे कवि के लोक-अनुभव को भी प्रकट करते हैं। वस्तु में रमणीयता तथा चित्रमयता के समावेश के साथ-साथ इन स्वभावोक्तियों ने रस-सिद्धि के अवसरों को सुलभ बनाया है। इस रूप में ये स्वभावोक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। रूपमूलक स्वभावोक्तियों में वस्तु के यथार्थ रूप का प्रमाता को प्रत्यक्ष दर्शन होता है जिससे उसकी आनन्द वृत्ति में चमत्कारपूर्ण आह्लादवर्धन होता है। प्रमाता के पक्ष में ये स्वभावोक्तियाँ जहाँ वस्तु को अत्यन्त आनन्दानुरंजित रूप में प्रस्तुत करती हैं वहाँ कवि के मुख्य काव्योद्देश्य की सिद्धि में अनन्य सहायक सिद्ध होती हैं। प्रत्येक कवि का मुख्य उद्देश्य है—अपने कथ्य को अधिकाधिक प्रेषणीय रूप में प्रस्तुत करना। रूपमूलक स्वभावोक्ति वस्तु को साक्षात् रूप में प्रस्तुत करके कवि के इस उद्देश्य की अन्यतम सिद्धि करती है।

मानवेतर रूप-वर्णन में स्वभावोक्ति

हमारे आलोच्य कवियों की वृत्ति मानवेतर पशु-पक्षियों अथवा जड पदार्थों के रूप-वर्णन

में नहीं रमी है। तुलसी जैसे महाकवि ने भी महाकाव्योचित वर्णनों के अन्तर्गत नदी, पर्वत, वन, आश्रमों, ऋतुओं, महल, नगर आदि के वर्णन या तो सामान्य वस्तु-वर्णन-शैली में किए हैं अथवा नीतिपरक उपदेशात्मक भूमिका पर आधारित करके। अग्रदास के कुछ पदों में अयोध्या नगरी का रमणीय वर्णन अवश्य उपलब्ध होता है। किन्तु वह अपनी अलंकारता के कारण स्वभावोक्ति के क्षेत्र में नहीं रखा जा सकता। अन्ततः यही कहा जा सकता है कि राम-कवियों ने मानवीय रूपों की विविध चित्रावलियाँ स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से प्रस्तुत की हैं।

वन-वर्णन के प्रसंग में दो-एक स्थल ही हमें चमत्कारपूर्ण दिखाई देते हैं। केशवदास के लक्ष्मण ऋषि भरद्वाज के आश्रम का शांत रूप वर्णन करते हुए वहाँ के पशु-पक्षियों का एक रम्य चित्र-सा उपस्थित कर देते है। हृदय राम के हनुमन्नाटक में भी इसी प्रकार की झलक वाला एक पद देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए दोनों पद पठनीय हैं—

(क) केसोदास मृगज बेछेरू चूसें बाघनीन,
चाटत सुरभि बाघ-बालक-वदन है।
सिंहन की सटा ऐंचें कलभ करनि करि,
सिंहन कौ आसन गयंद को रदन है॥
फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि,
सिव कौ समाज कैधौं-ऋषि को सदन है॥[५४]

(ख) जहं सिंह कुरंगन बैर गटी मृग संतत सिंहनि दूध जटी।
सोऊ नैकु न देखत जात लटी अहि पौढ़त मोरन पुंज तटी।
चढ़ि केहरि कंध अजा लपटी नहिं भूख लगी कबहूं झपटी।
जिनकी दुख फांस कहूं न कटी तिन के सिर है सुख सांत सटी।[५५]

उपर्युक्त वर्णनों में क्रमशः भरद्वाज-आश्रम एवं पंचवटी के प्राकृतिक दृश्यो के चित्र कवियों ने अंकित किए हैं किन्तु ये दोनों ही चित्र धर्म भावना से प्रेरित होने के कारण तनिक अतिशयोक्तिमूलक हो गए हैं। इसका कारण यह है कि इन दोनों कवियों की दृष्टि वातावरण की शान्ति पर तो केन्द्रित है किन्तु वन के हरितिमापूर्ण सौन्दर्य का ध्यान इन्हें नहीं है। अतः कहा जा सकता है कि शुद्ध प्रकृति के रूपों अथवा वस्तुओं के विशुद्ध रूपों का स्वाभाविक चित्रण राम-काव्यों में विरल ही है।

सन्दर्भ

* तत्र रूपं चक्षुर्मात्रग्राह्यो विशेषगुणः। तर्कभाषा, चौखम्बा १९५२, पृ० २०५

+ द्रष्टव्य, वाक्यपदीय १।११८, ११९

१. (क) हलायुध कोश, सं० जयशंकर जोशी, सरस्वती भवन, बाराणसी प्र० सं०।
(ख) बृहत् हिन्दी कोश, स० कालिका प्रसाद, ज्ञान मण्डल लि० बनारस द्वितीय संस्करण।

२. मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत-अंग्रेजी-कोश में इसी व्युत्पित्ति को व्यावहारिक अर्थगत सटीकता के लिए उपयुक्त स्वीकार किया है। उन्होंने इसके अंग्रेजी पर्याय इस प्रकार दिए हैं—To form, figure, represent, exhibit by gesture act, any outward appearance or phenomenon or colour.

३. तदध्यासोद्वहेद्भार्या सवर्णां लक्षणान्विताम्।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम्। —मनुस्मृति

४. शुक्लादि: नाणकम् 'अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद्भूषणादिना।
येन भूषितवद्भान्ति यद्रूपमिति कथ्यते' —इत्युज्ज्वलनीलमणि ८१६

५. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १३३

६. वस्तु शब्द से हमारा अभिप्राय काव्य के वर्ण्य विषय अथवा पदार्थ मात्र से है।

७. 'Handsome is he who handsome does.'

८. उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं —जयशंकर प्रसाद : कामायनी, (लज्जा)

९. 'Beauty is defined as the pleasant manifestation of the good, ugliness, as the unpleasant manifestation of the bad.'
—Fr. V. Schlagels : 'Essay on the study of Greek Poetry.'

१०. भामह ने स्वभावोक्ति में अर्थ की अवस्था को विशेष महत्त्व दिया है, उनके अनुसार —'अर्थस्य तदवस्थत्व स्वभावोऽभिहितो यथा'

११. साकेतादि आधुनिक राम-काव्यों में लोकोत्तर तत्त्वों को यथार्थ और बुद्धिग्राह्य बनाकर प्रस्तुत करने के लिए कवियों ने इस अलकार का अधिकांशत: प्रयोग किया है।

१२. यह उल्लेखनीय है कि रूप-वर्णन के अन्तर्गत हम आकृति एवं वेश-विन्यास को समन्वित रूप में ग्रहण करेंगे।

१३. (क) सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरों विदेह कुमारी॥
(ख) सुन्दरता कह सुन्दर करई। छबि गृह दीप सिखा जनु बरई॥
—तुलसी : रा० च० मा० १।२२९।४

१४. अग्रदास : ध्यान मञ्जरी (डॉ० अमरपाल कृत तुलसी-पूर्व राम-साहित्य में संकलित, पृ० २७१)

१५. तुलसीदास : रामचरित मानस, ७।७६।२

१६. सूरदास : सूर सागर, नवम स्कन्ध (रामचरितांश) पद ४६३

१७. नरहरि : पौरुषेय रामायण (अवतार चरित्र का अंश), पृ० २०९

१८. प्रसिद्ध आलंकारिकों (भामह, दण्डी, उद्भट आदि) ने अलंकारों की उपादेयता रस को पुष्ट करने में ही स्वीकार की है।

१९. 'सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा'—ना० भ० सू०
२०. तुलसीदास : कवितावली, २।१३
२१. नरहरि : पौ० रा०, पृ० ३६९
२२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १३३
२३. सोभा सींव सुभग द्वौउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा।
मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ॥१॥
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छवि छाए।
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे ॥२॥
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला।
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं ॥३॥
उर मनिमाल कबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बलसींवा।
सुमन समेत बाम कर दोना। सावंर कुअर सखी सुठि लोना ॥४॥
—तुलसीदास : रा० च० मा० १।२३२।१-४
२४. सखि हमरे आरति अति तातें। कबहुंक ए आवहिं ऐहि नाते ॥
—वही, १।२२१।४
२५. प्रमाता के हृदय में काव्य के पात्र—बालक, युवा, वृद्ध के लिए उत्पन्न सहज प्रेम।
२६. विष्णुदास : रामायन कथा, पृ० ७
२७. तुलसी : रा० च० मा० बा० का० २६७-६८ दो० के बीच।
२८. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १०४
२९. 'राम की शक्तिपूजा' में निराला ने भी हनुमान के शरीर विस्तार का अत्यन्त ओजस्वी चित्र अंकित किया है।
३०. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ९३-९४
३१. वही, पृ० ९५
३२. वही, पृ० ९९
३३. तुलसी : रा० च० मा०, ६।६४-१
३४. सं० सद्गुरुशरण अवस्थी : तुलसी के चार दल, पृ० १०-११
३५. श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने इन छन्दों में स्वभावोक्ति अलंकार माना है—तुलसी के चार दल, पृ० १०-११
३६. नरहरि : पौरुषेय रामायण, पृ० २२६
३७. तुलसी : रा० च० मा० २।१९०।३
३८. नरहरि : पौ० रा०, पृ० २४७
३९. इस दोहे को कोश-ग्रन्थ (हिन्दी-साहित्य-कोश) में स्वभावोक्ति का उदाहरण कहा गया है।
४०. तुलसी : रा० च० मा० २।२२२।१
४१. रामनिरंजन पांडेय : राम भक्ति शाखा, पृ० १९९
४२. सूरदास : सूर सागर ९।३५७

४३. विष्णुदास : रामायन कथा, पृ० ३१
४४. तुलसी : रा० च० मा० ७।१ (ख)
४५. (क) सुत मानहिं मातु पिता तब लौं,
अबलानन दीख नहीं जब लौं।
(ख) ससुरारि पियारि लगी जब तैं,
रिपु रूप कुटुंब भए तब तें।

—तुलसी : रा० च० मा० ७।१००।२-३

४६. हृदयराम : हनुमन्नाटक २।६२
४७. राजाओ के हाथ में अधिकार का प्रतीक मुद्रा अथवा राजदण्ड।
४८. डॉ० रामनिरंजन पांडेय ने प्रस्तुत पद्य में सीता की विरह चेतना को भक्ति की एक विशिष्ट अवस्था से सम्बद्ध कर दिया है। उनके शब्दों में—"इस चित्र में भक्त ने अपने को मिटाकर भगवान के अखण्ड प्रेम की साधना की है।"

—रामभक्ति शाखा, पृ० ४०५

४९. सूरदास : सूर सागर, पद सं० ५१७
५०. केशवदास : रामचन्द्रिका, ५।१५
५१. विष्णुदास : रामायन कथा, पृ० ८४
५२. तुलसीदास : गीतावली, ५।१८
५३. विष्णुदास : रामायन कथा, पृ० ९५-९६
५४. केशवदास : रा० च० ६।१६८
५५. हृदयराम : हनुमन्नाटक, ३।५६

४

गुणमूलक स्वभावोक्ति

गुण शब्द का अभिप्राय

किसी वस्तु के जातिस्वभाव, लक्षण या विशेषता को गुण कहा जाता है।[१] भारतीय दर्शन-शास्त्र में सृष्टि-कर्त्ता के तीन मूल गुण स्वीकार किए गए हैं।[२] संस्कृत काव्यशास्त्र में गुण शब्द का व्यापक और बहुशः प्रयोग मिलता है। भरत मुनि के अनुसार भावगत विशेषताएँ ही गुण कहलाती हैं और इनकी संख्या दस है।[३-४] दण्डी ने भी भरत मुनि का अनुसरण कर गुणों को इसी रूप में स्वीकार कर लिया है जबकि आनन्दवर्द्धन, अभिनव गुप्त और मम्मट आदि आचार्यों के अनुसार गुण रस के धर्म हैं क्योंकि काव्य में रस ही अंगी अर्थात् प्रधान होता है—

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥

—काव्यप्रकाश ८।८७

वामन आदि रीतिवादी आचार्यों ने काव्य में अलंकार को अनित्य तथा गुणों को नित्य धर्म के रूप में स्वीकार किया है। आधुनिक युग में गुण शब्द विशेषता मात्र का वाचक न होकर सद्गुण के अर्थ में रूढ़ हो गया है। किन्तु 'गुणमूलक स्वभावोक्ति' पद में अन्तर्भुक्त गुण शब्द का अर्थ मात्र विशेषता ही है।

गुणमूलक स्वभावोक्ति का अर्थ

जहाँ कहीं किसी पदार्थ (काव्य का वर्ण्य विषय) की विशेषताओं का अत्यन्त सजीव और स्वतन्त्र वर्णन चित्रमय शैली में किया जाए वहाँ गुणमूलक स्वभावोक्ति अलकार का विधान होता है।

चरित्र का मूल तत्त्व गुण होने के कारण चरित्रमूलक काव्यों में गुण-वर्णन का महत्त्व अप्रतिम हो उठता है। आचार्य शुक्ल ने भी शील या चरित्र का मूल तत्त्व भावों[५] का विशेष प्रकार का संगठन माना है—"शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संगठन में ही समझना चाहिए।"[६] मध्यकालीन हिन्दी राम-काव्य में विभिन्न पात्रों की विशेषताओं का यत्र-तत्र सजीव अभिव्यंजन प्राप्त होता है। राम-कथा के

विविध पात्रों को जीवन्त रूप प्रदान करने के लिए राम-कवियों ने[७] गुणमूलक स्वभावोक्ति अलंकार का बहुश: प्रयोग किया है। पात्र-वैविध्य के कारण राम-काव्यों में इस प्रकार की स्वभावोक्तियाँ भी अनेक रूपों में सहजत: समाविष्ट हो सकी हैं।

आलोच्य राम-काव्यों में स्त्री, पुरुष, बालक एव पशु-पक्षी आदि के विविध गुणों का सहज रमणीय चित्रांकन हुआ है। हम इसका अध्ययन क्रमश: बाल, प्रौढ, नारी, मानवेत्तर प्राणी एवं जड-पदार्थ आदि शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे।

बाल-वर्णन में गुणमूलक स्वभावोक्ति

बाल-चरित्र का वर्णन साहित्य का एक मनोरम अंश है। बालक के सुकोमल रूप की भाँति ही उसका चचल चरित्र भी चित्ताकर्षक होता है।

राजा दशरथ के घर पुत्र रूप में जन्म लेने वाले राम आदि चारों भाई तत्त्वत: परब्रह्म विष्णु के अश है। परन्तु मानवीय गुणों की स्थापना करके कवियों ने इन दिव्य चरित्रों को अत्यन्त सामान्य बना दिया है। भोजन करते हुए पिता द्वारा बुलाए जाने पर क्रीडामग्न राम का अपनी मित्र-मण्डली को छोड़कर न आना बाल-चरित्र का एक अत्यन्त सामान्य गुण है।[८] भोजनरत राम का चापल्यवश किलकारी भरकर उठना बाल-प्रकृति के सामान्य गुणों का सहज चित्र उपस्थित करता है।[९]

जनकपुर से आए हुए पत्र को पिता के हाथ में देखकर लज्जा से संकुचित से भरत पूछ उठते हैं—

पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ ते पाती आई॥[१०]

शीलवन्त भरत के इस सरल विनीत व्यवहार मे संकोचशील कुमार की निश्छल जिज्ञासा का परिचय प्राप्त होता है। भरत के चरित्र को स्पष्टत: तीव्र अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए राम-काव्यों में उनके चरित्र के मूल गुण शील को सर्वत्र पूर्ण रूप से ग्रहण किया गया है।

सभी राम-काव्यों में भरत का चित्रण बाल्यावस्था से ही जितना शीलवन्त[११] दिखाया गया है उतना ही लक्ष्मण का चपल तथा तेजस्वी। सभी राम कवियों के अनुसार लक्ष्मण के चरित्रका मूल गुण है अन्याय का सर्वत्र दृढता से विरोध करना। इसी गुण का विकास हम लक्ष्मण के वीर क्षत्रियोचित दर्प के रूप में देखते हैं।

परशुराम से विवाद करते हुए बालक लक्ष्मण की व्यंग्योक्तियाँ पाठक को केवल हास्य की ही अनुभूति नहीं कराती हैं अपितु उनके चरित्र के निर्भयता आदि गुणों को भी प्रकट करती हैं।

जनकपुर में रंगभूमि की ओर जाते हुए सुन्दर किशोरवय राम-लक्ष्मण को देख कर वहाँ के बालक सहज ही आकर्षित हो जाते हैं। अनेक प्रकार से सुमधुर वार्त्तालाप करते हुए ये शिशु भगवान राम के 'कोटि मनोज लजावनिहारे' रूप के दर्शन के प्रलोभन से उन्हें प्रेमपूर्वक यज्ञ-रचना दिखाते हैं।[१२] सुन्दर नवागन्तुकों की ओर आकर्षित होना बालकों का सामान्य स्वभाव है। बालकों की सरलता और भोलापन उनके इस चरित्र-

ख्यान से और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि वे क्षणिक परिचय में ही राम-लक्ष्मण के प्रति तीव्र अनुराग की अनुभूति करने लगते हैं।[13]

प्रेम की प्रगाढ़ावस्था में जनकपुर के बाल-समाज की विचित्र दशा हो जाती है। उनका शरीर पुलकित और हृदय हर्षोन्मत्त हो जाता है। बार-बार वे राम-लक्ष्मण के मनोहारी रूप को देखकर भाव-विभोर हो उठते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने बाल्यावस्था की प्रवृत्तियों के बीच संग्रह प्रवृत्ति को अत्यन्त प्रबल माना है। इस प्रकार की एकाधिकारपूर्ण प्रवृत्ति संग्रह-गुण की अपेक्षा दोषों की जन्मदात्री है। किन्तु बाल स्वभाव का यह एक मुख्य तत्त्व है। सीता के शिशुओं (लव तथा कुश) को अनेक मुनि और मुनि-कुमार जब खेलने के खिलौने देते हैं तो वे उन्हें छिपाकर रख देते हैं।[14]

बालक को अपने खिलौनों से इतना अधिक मोह होता है कि वह खाते समय भी उसे अपने पास रखना चाहता है। बालकों के इस मोह गुण की अभिव्यक्ति लालदास के काव्य में अवलोकनीय है—

गहे खिलौना हाथन माही ।। षातहु षेल तजत है नाही ।।
छारे सषा बुलाव सनेही ।। रानी देषि देषि तिन्ह देही ।।
यैतो सुठि सबही षिलवारे ।। रंच न घर रहे पावत बारे ।।[15]

रानी द्वारा बालकों के घर पर न रहने की सामान्य प्रवृत्ति का संकेत उनके क्रीड़ारत बाल्य गुण को प्रकट करता है। स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से यहाँ कवि ने भोजन-रत सामान्य बालक का चित्र अंकित किया है, जिसके सखा बाहर खड़े हैं।

इस प्रकार राम-काव्यों में बाल-गुण-वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार के सफल सन्निवेश द्वारा सहृदय-आह्लादकारी रम्य चित्रों की सृष्टि हुई है। राम-कवियों की यह विशेषता रही है कि इन्होंने राजमहल से लेकर गली-कूचों में खेलने वाले साधारण बालकों तक की सहज प्रवृत्तियों को भी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है। राम-लक्ष्मण राजपुत्र होने के कारण यदि सरयू-तट पर मृगया खेलते फिरते हैं[16] तो जनकपुर की जनता के साधारण बालक राजकुमारों को स्पर्श करके ही तृप्ति का अनुभव कर लेते हैं। राज-परिवार की कथा को जन-मानस में सहज रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए राम-कवियों ने उच्चवर्गीय पात्रों का सामान्य पात्रो से निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क बनाए रखा है।

इस प्रकार अपनी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का प्रयोग करके राम-भक्त कवियों ने राम-कथा को अधिक सरस, सशक्त एवं सहज विश्वसनीय रूप प्रदान किया है। इन कवियों के उद्देश्य की पूर्ति का मुख्य साधन स्वभावोक्ति अलंकार ही रहा है। इस अलंकार के माध्यम से राम-कवियों ने वस्तु-परिष्कार एवं चरित्रोत्कर्ष के साथ-साथ मानवीय जीवन की साधारण स्थितियों का चित्रांकन कर अभिजात्य कथा-परम्परा में लोक तत्त्व का सन्निवेश किया है।

प्रौढ़ों के गुण-वर्णन में स्वभावोक्ति

राम-कथा के प्रौढ़ पात्रों में मुख्य रूप से दशरथ, जनक, वसिष्ठ, विश्वामित्र, रावण,

कुम्भकर्ण आदि को परिगणित किया जा सकता है। इन पात्रों के गुणों का आख्यान राम-कवियों ने जिस अभिधा मे किया है वह चमत्कारपूर्ण न होने से स्थूल वर्णन मात्र है। किन्तु अयोध्या के व्यापक जन-समुदाय में परिव्याप्त युवराज राम के प्रति तीव्र सहानुभूति के गुण को तुलसी, सूर एव नरहरि आदि राम-कवियों ने स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से अत्यन्त सहज रूप में अभिव्यक्त किया है, उदाहरणार्थ—

(अ) यहिमें को पति त्रिया तुम्हारौ पुरजन पूछैं धाई।
राजिबनैन मैन की मूरति सैनन माहिं बताई।
गए सकल मिलि संग दूरि लौं मन न फिरत पुरवास।
सूरदास स्वामी के बिछुरत भरि भरि लेत उसास।[१७]

(आ) चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहुविधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिर आवहिं॥

जन सामान्य में व्याप्त सहानुभूति के गुण को गहन रूप में अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से स्वभावोक्ति का विधान करके इन कवियों ने पौराणिक अर्थात् ख्यात चरित्रों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि का स्पर्श प्रदान किया है।

मानवीय चरित्र के मूल तत्त्व गुण हैं जिन्हे आचार्य शुक्ल ने मनोविकारों की संज्ञा दी है। हिन्दी-साहित्य में मनोविकारों के स्थायी स्वरूप के आधार पर शील-निरूपण अथवा चरित्र-चित्रण का वैज्ञानिक प्रयास सर्वप्रथम आचार्य शुक्ल ने किया। शुक्ल जी के अनुसार शील अथवा चरित्र विभिन्न अवसरों पर अभिव्यक्त होने वाले विविध मनोविकारों का ही रूप है। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि की चरित्र-कल्पना मनोविकारों अथवा गुणों के सहज चित्रण द्वारा अत्यन्त सशक्त रूप धारण करती है।

राम-कथा में पुरुष पात्रों की भाँति नारी पात्रों का चरित्र भी जीवन्त रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

नारी गुण-वर्णन में स्वभावोक्ति

नारी सामाजिक जीवन-चक्र का केन्द्र बिन्दु है। मानव जीवन की विराट चेतना को अभिव्यक्त करने वाले राम-काव्यों में नारी-चरित्र को विशेष रूप में ग्रहण किया गया है। परम्परा-प्रसिद्ध राम-कथा में सीता का दुहरा व्यक्तित्व है। वे अवतारी पुरुष राम की पत्नी होने के साथ ही जनक-सुनयना की प्राणप्रिय पुत्री, दशरथ-कौशल्या की नेत्र-ज्योति के समान पुत्र-वधू, लक्ष्मण-भरत आदि की मातृतुल्य भाभी आदि सभी सम्बन्धो का केन्द्र हैं। दूसरी ओर वे शाश्वत ब्रह्म की आद्या शक्ति है। इसी प्रख्यात कथा मे कैकई, सुमित्रा, कौशल्या, अनुसूया आदि सौम्य चरित्र वाली नारियों के अतिरिक्त, तारा, ताडका, शूर्पणखा, सुलोचना, मन्दोदरी आदि राक्षस एवं वानर-कुल की स्त्रियों को भी ग्रहण किया गया है। पौराणिक राम-कथा एव कृतियों में नारी के विविध रूपो की कल्पना कर ली गई है। मध्य कालीन राम-काव्यों में परम्परागत राम-कथा के पात्रों को यद्यपि यथावत् ग्रहण कर लिया है[१८] किन्तु उनके चरित्रांकन में कवियों ने सूक्ष्म मनो-

वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है।

ख्यात चरित्रों मे कवि परिवर्तन नहीं कर सकता किन्तु ऐसे चरित्र के निश्चित विकास की क्रम-शृंखलाएँ कवि जोड़ सकता है और इसी से चरित्र के ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक ढाँचे में नवीन जीवन्तता का समावेश हो जाता है। गुणमूलक स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा कवि चरित्रों के रूढ़िगत स्वरूपों में नवीन चमत्कार की सृष्टि करता है। इसी प्रकार का मनोरम प्रयास हमे तुलसी आदि राम-कवियो के नारी-चित्राकन में प्राप्त होता है। इस दृष्टि से कौशल्या, सीता आदि उदात्त नारी-चरित्रों का विश्लेषण प्रथमत: करते है।

शील-गुण

भारतीय सस्कृति में लज्जा नारी का आभूषण माना गया है। नारी के चरित्र अथवा शील की मूल भित्ति लज्जा पर ही अवलम्बित है। रग भूमि में खडी हुई सीता सलज्ज युवती की साक्षात् प्रतिमा है। राम के प्रति आकर्षण का अनुभव करते हुए भी वे अपनी मर्यादा में बधी होने के कारण कुछ नहीं कहती।[१९] यह जानकर भी कि पिता की प्रतिज्ञा उनके लिए अन्याय बन सकती है, वे गुरुजन की उपस्थिति में अपने नेत्रों के अश्रुओं को छिपाकर संकुचित हो उठती हैं।[२०] लज्जा और शीलजन्य मर्यादा आदर्श नारी-चरित्र के मूल गुण हैं, यह तथ्य उपर्युक्त चित्रांकन में स्पष्टत: प्रतिबिम्बित है।

सखी-प्रेम या सौहार्द गुण

नारी-स्वभाव का एक अन्य गुण है सखी-प्रेम, जिसका हमारे आलोच्य राम-काव्यों में अत्यन्त विशद चित्रण हुआ है। जनक-पुर में सीता की सभी सखियाँ सहृदया हैं। राम के लावण्ययुक्त सुरूप को देखकर वे अपनी कमनीय सखी के साथ उनके मधुर सम्बन्ध की परिकल्पना पहले ही कर लेती हैं। वाटिका में पुष्प-चयनरत राम-लक्ष्मण को देखकर सीता को जब दिव्य प्रेम की अनुभूति होती है तो कवि तुलसी की परिष्कृत प्रतिभा सखियों के माध्यम से उनके पुनर्मिलन का सकेत देकर उन्हें लौकिक धरातल पर अवतरित करती है। मनोवैज्ञानिक सत्य भी यही है कि प्रेम का प्रथम परिचय पाकर हृदय की आकुलता बढ़ जाती है और इस आकुलता का रहस्य सखियाँ जान जाती हैं, फिर वही सखियाँ इसका समाधान पाने में भी सहायक होती हैं। इतना ही नहीं सीता की सखियाँ प्रेम-विभोर होकर मन ही मन अपनी सखी के लिए देवताओं से राम को वर रूप में माँगती हैं।[२१]

सहृदय युवतियों की यह सहज सहानुभूति काव्य के नायक-नायिका का चरित्रोत्कर्ष करती है। सम्पूर्ण राम-कथा में राम आदि आदर्श पात्रों के प्रति सार्वभौम सहानुभूति और सहृदयता का जो एक वातावरण राम-कवियों ने रचा है, जनकपुर की युवतियों की सीता के लिए मंगल-कामना उसी का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

जिज्ञासा

सम्पूर्ण नारी जाति मे विपुलता से उपलब्ध होने वाला गुण है जिज्ञासा। यह जिज्ञासा

नारी-स्वभाव का एक अनिवार्य अग है जिसकी अभिव्यक्ति हम विविध रूपों में देखते हैं। छिपकर किसी की बातें सुनना अथवा चार व्यक्तियों की भीड़ को देखकर शीघ्र ही घटना-स्थल पर पहुँचना आदि इसी गुण के विविध अभिव्यक्त रूप हैं।

(क) नव वधू को देखने की जिज्ञासा

पालकी में जाती हुई सीता, उर्मिला आदि नव वधुओं को देखने के लिए मार्ग में स्त्री समुदाय उमड पड़ता है। अवध की प्रौढ़ अँगनाएँ व्याकुलता से शिविका के पट हटाकर जब नव वधुओं को देख लेती हैं तभी उनके रूप-लावण्य के दर्शन से तृप्त होती हैं, यथा—

(क) नारी उहार उघार दुलहिनिन्ह देखहिं।
नैनलाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं॥[२२]

(ख) सिविका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी।[२३]

इस एक संक्षिप्त से वाक्य में ही पर्दे में झाँकती हुई असख्य स्त्रियों के समूह का चित्र उभर आता है। यह कवि के काव्य-चातुर्य अथवा कुशलता का प्रमाण है कि वह सीमित शब्दों मे ही एक जीवित चित्र की सर्जना करने में समर्थ है। राम-काव्यों में वर्णित इन्हीं सहज स्वाभाविक मानवीय प्रकृति-चित्रों के कारण राम-कथा इतनी अधिक लोकप्रिय होकर हमारे सामाजिक जीवन के अति निकट पहुँचकर उसमे घुलमिल गई है।

(ख) अपरिचितों से परिचय पूछने की प्रवृत्ति

नारी-मात्र का सहज स्वभाव है कि वह अपने सम्पर्क में आने वाले अपरिचित व्यक्ति का पूर्ण परिचय पाना चाहती है। नगर की स्त्रियों की अपेक्षा ग्राम-वधुएँ इस कला में अधिक पटु होती है। वे कुछ ही क्षणों में किसी अपरिचित व्यक्ति का परिचय उसकी पूर्ण वंशावली के साथ पूछ लेती हैं। वन मार्ग मे जाते हुए राम-लक्ष्मण और सीता को देखकर ग्राम-वधुएँ निस्संकोच होकर स्पष्ट रूप से पूछ लेती है—

सखी री कौन तिहारी जात।
राजिव नैन धनुस कर लीने बदन मनोहर गात।
लज्जित रही पुर बधू पूंछें अंग अंग मुसक्यात।[२४]

ग्रामीण नारी-समाज का चित्र उपस्थित करने के लिए कवि ने उनकी इस सामान्य प्रवृत्ति या गुण को अभिव्यक्ति का आधार बनाया है। सीता को उपर्युक्त उद्धरण में कवि ने 'पुर वधू' कहा है तथा वे ग्राम वधुओं के सरल जिज्ञासु प्रश्न को सुनकर लज्जित हो उठती है। इससे स्पष्ट है कि कवि के अनुसार नगर की स्त्रियों की तुलना में ग्रामीणाएँ अधिक मुखर, निस्सकोच एव सरल होती हैं।

सरल और निश्छल व्यवहारयुक्त ग्रामीण नारी-समूह प्रत्येक अपरिचित का सर्वांगीण परिचय पाने को जहाँ आतुर रहता है वहाँ सामान्य परिचय में ही सहानुभूति-

परक भावनात्मक सम्बन्ध जोड़ लेने की भी उसकी अपनी ही विशेषता होती है। कोमल मृदुल सौन्दर्य की प्रतिमा राम-लक्ष्मण एवं सीता को कष्ट-संकुल वन मार्ग में देखकर तुलसी की सरल ग्रामीणाएँ कह उठती हैं[२५]—

आंखिन में सखि राखिबे जोग इन्हें किमि कै बनवास दियौ है।

महाकवि तुलसी के इस भाव-विदग्ध वर्णन को आचार्य शुक्ल ने उनकी भावुकता कहा है। शुक्ल जी के प्रशंसात्मक शब्द इस प्रकार हैं—

"तदनंतर पथिक वेशधारी राम-जानकी के साथ-साथ चलकर पाठक ग्रामीण स्त्री पुरुषों के उस विशुद्ध सात्विक प्रेम का अनुभव करते हैं जिसे हम दांपत्य, वात्सल्य आदि कोई विशेषण नहीं दे सकते, पर जो मनुष्यमात्र में स्वाभाविक है।"[२६]

उपर्युक्त कथन में शुक्ल जी का अभिप्राय स्पष्ट है कि सहानुभूति का गुण मानव ही नहीं मानवेतर प्राणियों में भी स्पष्टतः उपलब्ध होता है। इसी लोक-व्यापी गुण को उसकी अत्यन्त सहज अवस्था में प्रस्तुत करके गोस्वामी जी ने लोकोत्तर चरित्रों को लोकधर्मी भावभूमि पर अवतरित कर दिया है।

तुलसी की निश्छल स्नेह पाश में बधी हुई सरल हृदया ग्राम वधुएँ अपनी मुखरता का परिचय देती हुई सीता से ही उनके पति के विषय में चंचलता से पूछ लेती हैं—

सादर बारहिं बार चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्रामबधू सिय सो 'कहो सांवरे से, सखि रावरे को हैं।'[२७]

प्रस्तुत कथन में ग्रामवधुओं के अनुमान की सटीकता की भी व्यंजना है। सांवरे के प्रति ही सीता का पति होने का उनके मन में संदेह है। राम की सरल चितवन से अपने मन पर पड़े प्रभाव को भी वे सहज ही स्वीकार कर लेती हैं। राम-काव्यों की ये ग्रामवधुएँ कथा-सूत्र से मुक्त साधारण ग्रामीण नारी-वर्ग का चरित्र-चित्र उपस्थित करती हैं। सामान्यतः ग्रामीण नारियाँ सरस उपहास प्रस्तुत करने में नगर की नारियों की अपेक्षा अधिक मुखर होती हैं।

राम-कथा की ग्रामवधुओं के रसीले प्रश्न का उन्हीं की शैली अपना कर जानकी तिरछी चितवन से उत्तर देती हैं।[२८] यहाँ सीता अवध की राजरानी के रूप में नहीं, सामान्य ग्रामीण स्त्री के अनुरूप व्यवहार करती है।[२९] इसका कारण है कि वे चतुर हैं और अवसर की अनुकूलता भली प्रकार पहचानती हैं। उनसे भी अधिक उनके इस रूप के सर्जक कलाकार की प्रतिभा का चमत्कार प्रशंसनीय है जिसने जानकी के आदर्श चरित्र में निहित गूढ दिव्य गुणों को परिवेश की सहजता में सफलतापूर्वक अभिव्यंजित किया है और जहाँ जानकी भारतीय वधू के जीवन की प्रतिनिधि बन गई हैं।

महाकवि तुलसी के ग्राम-वधू-प्रसंग की सरस एवं चित्ताकर्षक छटा का प्रभाव उनके परवर्ती कवि नरहरि के काव्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, उदाहरणार्थ—

मृदुअंगवयसकिशोरमूरतिचरनचखनचीर।
अतिघोरहृदयकठोरउनकेवज्रहूंतेवीर।

हमहूं जु देषत फटत हीय बिपरीति दुःसहवात।
बिनु दोष ऐसे बाल बिछुरन मात उर हिसमात।[30]

उपर्युक्त उद्धरण में तुलसी की अभिव्यंजना के प्रभाव की यद्यपि स्पष्ट छाप है तथापि नरहरि कवि की सरल सुबोध शुद्ध ब्रज भाषा उनके व्यक्तिगत वैशिष्ट्य का दृढ़ प्रमाण प्रस्तुत करती है।

कवि केशवदास ने राम-कथा के इस मार्मिक और सरल प्रसंग की उपेक्षा कर दी है। मार्मिक स्थलो की पहचान की चर्चा के प्रसंग में आचार्य शुक्ल ने केशव की दुर्बलता को तटस्थ आलोचक की भाँति जहाँ स्पष्ट रूप से स्वीकार किया वहाँ गोस्वामी जी द्वारा भावसंकुल कोमल प्रसगों के जीवित मूर्तिमान् वर्णन की उन्होंने अत्यन्त सहृदयता से, मुक्तकंठ प्रशंसा की है। शुक्ल जी के शब्दों में—

"मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामी जी के हृदय का सामंजस्य हम देखते हैं उतना अधिक हिन्दी-भाषा के और किसी कवि का नही।"[31]

नारी के वर्गगत स्वभाव की चर्चा करते हुए डॉ० श्रीधर सिंह ने मानस में इस प्रकार के चरित्रांकन की विवेचना निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत की है—

"स्त्रियों के स्वभाव का परिचय मानस में तीन बार प्राप्त होता है। (१) पहली बार जनकपुर की नागरियों का, (२) दूसरी बार रनिवास की मंथरा का और (३) तीसरी बार वनमार्ग की ग्रामवधुओं का। एक में सौन्दर्य का मोह और तज्जन्य अह्लाद है, दूसरे में ईर्ष्या और उसका नग्न नृत्य है तथा तीसरे में किसी के कुभाग्य पर आत्मद्रुति और करुणा है।"[32]

आह्लाद, ईर्ष्या और आत्मद्रुति नारी-चरित्र के अत्यन्त सहज गुण हैं। वस्तुतः उपर्युक्त कथन सभी राम-कवियों के काव्यों पर घटित हो जाता है, जहाँ भी इन प्रसंगों की अवतारणा हुई है।

पुरुष के रूप की ओर नारी का आकर्षण एक सहज प्राकृतिक गुण है। स्वभावतः नारी पुरुष की ओर आर्कषित होती है तथा अपनी सम्पूर्ण सहानुभूति भी उसके प्रति अर्पित कर देती है। नारी के इस गुण का परिचय हमें राम-काव्यों में सुध-बुध भूली जनकपुर की तरुणियों के चरित्र-विश्लेषण में प्राप्त होता है।[33] जनकपुर में स्वयंवर के अवसर पर पहुँचे हुए राम-लक्ष्मण के मनोहारी रूप की चर्चा सुनकर सभी तरुणियाँ अपने भवनों की अट्टालिकाओं पर चढ़ जाती हैं—

चढ़ीं प्रति मंदिर सोभ बढ़ी,
तरुनी अवलोकन को रघुनंदन।[34]

तरुणियाँ अपनी सहज जिज्ञासु प्रवृत्ति को नियंत्रित न कर सकने के कारण राम के अनुपम रूप को देखकर अपनी नेत्र-तृषा तृप्त करने के लिए भवनों पर चढ़ गई हैं। विवाहादि के अवसर पर बारात या वर को देखने के लिए सोत्साह उमड़ता हुआ नारी-समूह उपर्युक्त चित्र में स्पष्टतः अंकित है। सुन्दर पुरुषों की ओर आकृष्ट होकर देखना सामान्यतः स्त्री-चरित्र का दुर्बलताजन्य दूषण माना जाता है किन्तु सामाजिक उत्सवों के अवसर

पर प्रायः स्त्रियों की मुखरता और चंचलता दोष नहीं कही जातीं। मर्यादावादी राम-काव्यों में जन-कल्याण के व्यापक उदात्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इस प्रवृत्ति का अत्यन्त परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया गया है।

संकोच और कोमलता का गुण

मर्यादाशील भारतीय नारी के चरित्र के मुख्य गुण संकोचशीलता, कोमलता, उदारता एवं हृदय की गूढ सहनशक्ति आदि हैं। आधुनिक कवि प्रसाद भी नारी को दया, माया, ममता आदि गुणों से युक्त रूप में देखते हैं।[३५] इन सब गुणों से ऊपर नारी समर्पणशील होती है। मानस के कौशल्या, सीता आदि-पात्र अपनी पारलौकिक प्रतिछवियों से परे उपर्युक्त सभी गुणों से अभिमंडित दिखाई पड़ते हैं। सीता की सुकुमारता को राम कवियों ने विविध रूपों में अभिव्यक्त किया है—

(१) पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥[३६]

(२) पुर तें निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै।[३७]

सीता की इस सुकुमारता का यह सुन्दर वर्णन पाठक को विभोर कर देता है। स्वभावोक्ति अलकार वस्तु में अनेक प्रकार के औचित्य का समावेश करता है उदाहरणार्थ (क) स्वभावौचित्य, (ख) वस्तु-औचित्य आदि।

गुणमूलक स्वभावोक्ति एक ओर स्वभाव की सहज स्पष्ट रूप-रेखा प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर लोक-प्रसिद्ध चरित्रों के यथावत् ग्रहण के कारण चरित्रौचित्य का भी निर्वाह करती है।

वस्तु को अधिकाधिक विश्वसनीय बनाने के लिए वस्तु-औचित्य का निर्वाह किया जाता है। उदाहरण के लिए मानस में तुलसी ने सीता की सुकुमारता का अधिक सूक्ष्म चित्रांकन करना उचित नहीं समझा है क्योंकि मानस की सीता जिस भव्य आदर्श से प्रेरित होकर वनगामी पति का अनुसरण करती है वहाँ इस प्रकार की कोमलता का वर्णन एक प्रकार का विरोधी तत्त्व ही होता। परन्तु कवि तुलसी के मन को आपदा-संकुल वनमार्ग पर अग्रसरित सीता की अबोध सुकुमारता कहीं भीतर तक छू गई थी। अतः वे उसका वर्णन आर्द्र कंठ होकर करना चाहते थे। मानस की गहन उज्ज्वल चेतना में जब कवि के स्वर को फूटने का अवकाश न मिला तो उन्होंने कवितावली में अपनी साध पूरी करते हुए लिखा—

पुर तें निकसी रघुबीर बधू-धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तुलसी तिय की लखि आतुरता पिय की अखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।

—कवि० २।११

यहाँ महाकवि ने 'रघुवीर वधू' आदि शब्दों का प्रयोग करके राम और सीता को निर्वासित साधारण जन की पंक्ति में खड़ा कर दिया है जो उनके राजसी वैभव की विपरीत अवस्था है। इस प्रकार दो विरोधी तत्त्वों के तीक्ष्ण समन्वय द्वारा तुलसी ने सहृदय को गहन करुणा की अनुभूति करा दी है। नारी के जातीय गुण कोमलता को प्रश्रय देकर इस प्रसंग में राम कवियों ने सहज स्वाभाविकता का समावेश किया है। मानस में राम वन मार्ग मे चलते हुए सीता को विथकित जानकर कहीं-कहीं विश्राम करने के लिए स्वयं कहते है।[३८] किन्तु मानस की तुलना मे कवितावली में वर्णित सीता की श्रम-कातरता का प्रसग अधिक भाव-प्रवण तथा मानवीय सत्य के अनुकूल है। कवि की कलात्मक प्रतिभा के फलस्वरूप पाठक श्रीराम और जानकी को दिव्य पात्र समझकर उनसे दूरी अनुभव नहीं करता वरन् एक साधारण दम्पति की विपत्तिग्रस्त अवस्था का सहज चित्र उसके दृगों के समक्ष खिच आता है। पात्रो के शील-चित्रण मे तुलसी का स्थान सर्वोपरि है। डॉ० त्रिपाठी के शब्दों में "अपने प्रमुख पात्रो के शील की जितनी रक्षा तुलसी ने की है, अन्य कोई राम-कथाकार नही कर सका है।"[३९] डॉ० रमानाथ त्रिपाठी के शब्दों से तुलसी के उच्चादर्श प्रतिष्ठापन का तुलनात्मक महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

मध्ययुगीन राम-काव्यों में संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रन्थों (वाल्मीकि-रामायण, प्रसन्न राघव, रघुवशादि) के आधार पर ख्यात वृत्त एव परम्परापुष्ट चरित्रों का ग्रहण करके भी कवियो ने अपने दिव्य पात्रों के चारों ओर यथार्थ वातावरण का ताना-बाना बुना है जिससे कथा लोक सत्यों से अनुप्राणित एवं चरित्र जीवन्त भव्यता पा सके हैं।

कौशल्या के हृदय की कोमलता को सभी राम-कवियों ने उनके उदार हृदय की विशालता के रूप में ही चित्रित किया है। उनके आदर्श मातृत्व की प्रशंसा करते हुए उनकी दो विशेषताएँ स्पष्टत: परिलक्षित होती हैं (अ) पुत्र के कर्त्तव्य-मार्ग में बाधा न बनकर उसका पथ प्रशस्त करना, (आ) अपने स्निग्ध मातृत्व-पय को राम के अतिरिक्त सभी को बाँटना। पुत्र-वियोग मे विदीर्ण-हृदया कौशल्या भरत की भेंट को राम के मिलने के समान समझती हैं—

सरल सुभाय भायं हियं लाए। अति हित मनहुं राम फिरि आए॥[४०]

ननिहाल से लौटकर आये भरत को हृदय से लगाकर कौशल्या के नेत्रों से जल और आँचल से दूध स्रवित हो उठता है।[४१]

तुलसी की कौशल्या पुत्रों पर जितनी ममता रखती हैं, पुत्र-वधू पर भी कुछ कम नहीं। वनवास के अवसर पर कर्त्तव्य से बंधी सीता जब पति के अनुसरण की आज्ञा सास से लेती हैं तो कौशल्या अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक उन्हें पति की आज्ञा के अनुकूल आचरण करने की सम्मति देती हैं।[४२] तुलसी की कौशल्या की भाँति कवि नरहरि की कौशल्या भी सीता की अल्पवयस्क अवस्था के कारण अत्यन्त सहानुभूति प्रकट करती है।[४३] आदर्श पात्र सीता का सकोचशील स्वभाव वस्तुत: स्पृह्य है। कौशल्या से वन गमन के लिए पूछते हुए सीता अत्यन्त संकोचपूर्वक अपने पग-नख से धरती कुरेदने लगती हैं—

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥[४४]

सीता ही नहीं जनक की रानियाँ भी सीता जी की सासुओं से मिलते समय लज्जा और संकोच के भार से धरती को पैरों के नखों से कुरेदने लगती हैं—

सीलु सनेह सकल दुहु ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥
पुलक सिथिल तन बारि बिलोचनना। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥[४५]

वन-गमन के पश्चात् सीता की माता सुनयना एवं जनक जी की अन्य रानियाँ सीता जी से मिलने के लिए वन में ही पहुँचती हैं। जहाँ पहले से ही पहुँचे अयोध्यावासियों से उनकी भेंट होती है। वहीं पर सुनयना आदि अपने समधी-पक्ष के लोगों को देखकर संकुचित हो उठती हैं। वस्तुतः भारतीय संस्कृति में कन्या के परकीय हो जाने पर उसके परिवार का सम्मान करते हैं। माता-पिता कन्या के घर का अन्न-जल ग्रहण नहीं करते और साथ ही कन्या के सास-ससुर के सम्मुख अत्यन्त संकोच का अनुभव करते हैं।[४६] इस अत्यन्त स्वाभाविक स्थिति को सहज रूप में ग्रहण करके राम-कवियों ने भारतीय संस्कृति का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

दृढ़ पातिव्रत का गुण

राम-काव्यों में यद्यपि कौशल्या, सुनयना, पार्वती, मैना अनुसूया आदि अनेक नारी-पात्रों को पतिव्रता के रूप में वर्णित किया गया है किन्तु जानकी का पातिव्रत विशेष रूप में चित्रित किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि सीता राम-कथा की नायिका हैं और राम-भक्त कवियों की दृष्टि में सम्पूर्ण सृष्टि की आदि शक्ति भी हैं। पुरुष के अस्तित्व में ओज गुण जिस प्रकार मूलतः विद्यमान रहता है उसी प्रकार स्त्री-चरित्र का मूल गुण वह पातिव्रत है जो कोमलता और शील की भित्ति पर टिका होता है। राम का एक पत्नीव्रत जहाँ स्वप्न मे भी परस्त्री से दूर रहता है[४७] वहाँ सीता का अपने पति में अनन्य अनुराग अत्यन्त सहज है। महासती सीता के चरित्र का यह गुण उस समय उभर कर सामने आता है जब रावण उसे धोखे से हरण करके ले जाता है।

(क) अपने पति को बार-बार स्मरण करके रोती हुई सीता अपने वस्त्र और आभूषणों को मार्ग में फेंकती है—

पियरे बर्न पटोरे फारि। चली सिया तिन ऊपर डारि॥
डारे कंकन हार उतारि। खोजु चलहि हमि बोलहि नारि॥[४८]

सीता का अपने पति का अनवरत चिन्तन करना तथा कुसमय में तत्काल बुद्धि का प्रयोग करके अपने वस्त्राभूषण मार्ग में चिह्न रूप में फेंक देना उसके चरित्र में निहित उत्कृष्ट गुणों की व्यंजना करता है। स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से यहाँ कवि ने एक सच्चरित्र नारी के विपत्ति काल में प्रकट होने वाले उत्कृष्ट गुणों की व्यंजना द्वारा अपनी नायिका के चरित्र को गौरव-मंडित किया है।

(ख) अतुलित रूप, बल-पराक्रम एवं विराट् वैभव से सम्पन्न रावण सीता के मन को प्रभावित नहीं कर पाता। तापस वेशधारी श्रीराम की मूर्ति ही सीता के हृदय में निरन्तर विद्यमान रहती है। गौरव-गर्वान्ध रावण द्वारा अनेक प्रकार की यातनाएँ दिए

जाने पर भी सीता की उसके प्रति दृष्टि नहीं बदलती। सभी राम-काव्यों में इस प्रसंग का अत्यन्त सहज एवं भावरंजित वर्णन उपलब्ध होता है। नीति-कुशल लम्पट रावण सीता को पटरानी बनाने का प्रलोभन भी देता है[४६] किन्तु कोमलांगी सीता इन प्रलोभनों के समक्ष पाषाणवत् कठोर रहती है। दुष्ट रावण द्वारा अनेक प्रकार से त्रास दिखाये जाने पर सीता दुखित अवश्य हो जाती हैं किन्तु भयातुर नहीं—

कठिन बचन सुनि श्रवन जानकी सकी न बचन सहार।
तृन अंतर पै दृष्टि तिरौछी दई नैन जलधार।[५०]

कोमल हृदया सीता के नेत्रों से विपत्ति एवं व्यथा के कारण अश्रु प्रवाहित हो उठते हैं किन्तु वे रावण से प्रभावित अथवा भयभीत नहीं होतीं। सभी राम-कवियों द्वारा वर्णित सीता का यह दृढ चरित्र परम्परानुमोदित ख्यात चरित्र होने के कारण लोक-विश्वास की रक्षा करता है। लोक-धारणा से स्वतन्त्र होकर जब हम राम-काव्यों में वर्णित सीता के दृढ चरित्र पर दृष्टिपात करते हैं तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सीता की चरित्रगत दृढता क्षत्राणी के चरित्र की अनिवार्य वस्तु है।

पति के प्रति अनन्य प्रेम होने के कारण ही सीता हनुमान के सम्मुख कुछ संदेश कहना चाहकर भी नहीं कहतीं। वे सोचती हैं कि मेरे कष्टों से अवगत होकर मेरे पति दुखित होंगे अतः वह अपनी असह्य व्यथा को अपने हृदय में समेट लेती हैं—

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायो॥
कहन चह्यो संदेस नहि कह्यो, पिय के जिय की जानि
हृदय दुसह दुख दुरायो।[५१]

सीता का अपने पति के कष्ट एव चिन्ता की कल्पना मात्र से गहन दु.ख को छिपा लेना उनके गूढ़ पति प्रेम एव असाधारण सहनशक्ति आदि गुणो का स्पष्ट परिचय देता है।

सामान्य नारी-पात्रों मे पतिव्रत

महाकवि तुलसी जैसे धर्मप्रबुद्ध राम-कवियों ने तो सुलोचना, तारा, मन्दोदरी आदि शत्रु-पक्ष की एवं साधारण नारी-पात्रों में भी पतिव्रत के भव्य आदर्श का अंकन किया है। वस्तुतः तुलसीदास के इस प्रकार के चित्रणों का औदात्य वस्तु को भव्यता प्रदान करने के साथ-साथ सुसस्कृत, शीलवान् समाज की परिकल्पना को लेकर चलता है। भक्त कवि तुलसी का सम्पूर्ण काव्य राम-भक्ति के अगाध रस मे निमग्न होने के कारण राक्षस नारियों पर भी भक्ति का आवरण सर्वत्र मिलता है।

मातृत्व की सरलता का गुण

नारी की पूर्ण गरिमा मातृत्व की उपलब्धि में है। पुराण एवं प्रसिद्ध काव्यादि पर आधारित कौशल्या के सुप्रसिद्ध चरित्र का मध्ययुगीन हिन्दी-राम-कवियों ने अत्यन्त सहज एवं मनोरम अंकन किया है। नारी-स्वभाव के विविध गुणों को प्रकाशित करने

वाली स्वभावोक्तियों के अन्तर्गत सरल मातृत्व की कोमल भावना का गुण भी इन कवियों ने ग्रहण किया है।

बाहर दूर खेलने जाने से रोकने के लिए माताएँ प्रायः बालकों को डराया करती हैं। कभी वे हाऊ का भय दिखाती हैं तो कभी अन्य प्रकार के बहानों से बालकों को घर में ही खेलने के लिए प्रेरित करती हैं। माताओं की इसी प्रवृत्ति, स्वभाव अथवा गुण का स्वभावोक्तिमूलक वर्णन हमें कविवर लालदास के 'अवध विलास' में दिखाई देता है, उदाहरणार्थ—

बड़ी बार खेलत किहि छाही ।। राम लला आये घर नाही
दौर सखी दास तह धावै ।। बल करि धरि धरि लै आवै
मैया कहत लेत हिय लाई ।। महलन मह खेलहु बलि जाई
वाहित जात करत हौ फेला ।। जुगिया धरि करिहे पुनि चेला
बगिया महं बंदरा है आये ।। लरिकन्ह कौ फारत मुष बाये
नदिया में घोघ रहे ब्याने ।। तहं जनि जाहु कहूं बिन जाने[५२]

माता के द्वारा जोगी का, बदर और घोघ का भय दिखाकर श्रीराम को महलों में खेलने के लिए प्रवृत्त करना अपनी पृष्ठभूमि में मातृ-हृदय की उस व्याकुलता को समेटे हुए है जो बालक के बहुत देर तक घर न आने पर माताओं को प्रायः हो जाया करती है। दास-दासियों को इधर-उधर दौड़ाना इसी व्याकुलता का परिणाम है। हमारे सभी आलोच्य राम-काव्यों में मातृ-हृदय के सारल्य गुण का इतना मनोहारी स्वाभाविक चित्रांकन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता।

बालक राम जब माता के उपर्युक्त कथन से भयभीत नही होते तो वे अन्य युक्तियों से उन्हें भयभीत करने का प्रयत्न करती है। इस संदर्भ में एक अन्य सहज गुण-मूलक वर्णन द्रष्टव्य है—

हाथन छुरी तुरक दढ़ियारे ।। कटिहैं नाक जाहु जनि धारे ।।
अबही कहत है बात लगाई ।। येक कहूं डाइनि है आई ।।
कहत है ठग आवति है रोरा ।। लरिकन्ह वेगि लेत है घोरा ।।
बाबू केउ जाहु जनि काटी ।। बहिर तौ बिगवा है बाटी ।।
कुकुर येक फिरत बौरानो ।। काटत दौरि दौरि मन सानो ।।[५३]

यहाँ माता द्वारा हाथ में छुरी धारण किए दाढ़ी वाले तुरक, डाइन, ठग एव पागल कुत्ते का उल्लेख अपनी यथार्थ आधारभूमि पर इतना सहज एव सामान्य है कि प्रत्येक घर में इसका स्वाभाविक रूप देखा जा सकता है।

सन्तान को भोजन कराती हुई सरल हृदया माता का और खाने का आग्रह करना अत्यन्त स्वाभाविक है। नारी मात्र के स्वभाव में यह गुण प्रवृत्ति के रूप में उपलब्ध होता है। सूरदास के कृष्ण जहाँ दूध पीते हुए अपनी चोटी का बढ़ना अपने हाथ को सिर पर फेरते हुए देखते हैं[५४] वहाँ लालदास की कौशल्या राम के सम्मुख मनोवैज्ञानिक ठोस तर्क प्रस्तुत करती हैं—

येक जु और कौर लेहु भैया ।। अति बड अबहि बढहु बलि भैया ।।
बेर बेर सिर पर कर फेरै ।। कोमल सिषा परसि मुष हेरै ।।
देषि देषि छवि रूप अपारा ।। किये न जात हिये तें न्यारा ।।[५५]

कौशल्या राम को सर्वांग विकास का आश्वासन देते हुए एक कौर और ग्रहण करने के लिए कहती हैं। नारी-स्वभाव-चित्रण की दृष्टि से लालदास के वर्णन अन्य कवियों की अपेक्षा सरस, मनोरम एव सहज हैं।

नारी-स्वभाव-सांकेतिक कथन

नारी का अत्यन्त सामान्य स्वभाव है, प्रत्येक बात को रहस्यमय बनाकर सांकेतिक रूप से कहना। इस अत्यन्त साधारण स्वभाव को राम-कवियों ने सीता जैसे दिव्य स्त्री-पात्रों में भी अवतरित किया है। इसे स्त्रीसुलभ वाक्चातुर्य की संज्ञा दी जाती है।

गौतम-ऋषि की पत्नी अहल्या के उद्धार की दशा का विचार करके सीता भगवान राम के चरण स्पर्श नहीं करतीं—

गौतम तिय गति सुरति करि नहि परसति पद पानि।
मन बिहंसे रघुबंस मनि प्रीति अलौकिक जानि ।।[५६]

सीता के इस चातुर्य को देखकर भगवान राम मन-ही-मन प्रसन्न हो उठते हैं। डॉ० चन्द्रभूषण ने प्रस्तुत प्रसंग में सूक्ष्म अलंकार का निर्देश किया है।[५७] वास्तव में आलंकारिकों के अनुसार सूक्ष्म वस्तु-वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार का भी एक लक्षण है। इस प्रकार सीता का उपर्युक्त आचरण नारी-वर्ग के गुणों को व्यंजित कर वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

इसी प्रकार अपनी श्रम-कातरता का प्रत्यक्ष कथन न करके सीता सांकेतिक रूप से अपना मन्तव्य प्रस्तुत करती है—

जल को गए लक्खनु हैं लरिका, परिखौ पिय, छाहं घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ।।
तुलसी रघुबीर प्रियाश्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकीं नाह को नेंहु लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ।।[५८]

यहाँ सीता सीधे शब्दों में यह न कहकर कि 'मैं थक गई हूँ' कहती हैं कि लक्ष्मण जल लेने गए हुए हैं इसलिए कुछ देर छाया में विश्राम कर लिया जाए। इन्हीं सांकेतिक अभिव्यक्तियों के कारण नारी को रहस्यमयी कहा जाता है।

राम-सीता के विवाह के अवसर पर सीता की सखियाँ वर-वधू के पास से उठती हुई हास्यमय व्यंग्योक्ति कह उठती हैं—

उठी सखी हंसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन ।।[५९]

उपर्युक्त छन्द में सखियों के स्वभाव का अत्यन्त सहज चित्र प्रस्तुत हुआ है। विवाहादि के

अवसर पर वर-वधू के निकट पहुँचकर सखियाँ हास्य-व्यंग्यमय उक्तियों द्वारा वातावरण को मुग्धकारी प्रभाव प्रदान किया करती हैं। यहाँ नारी के चतुर स्वभाव का यथावत् वर्णन किया गया है।

राम-कवियों ने सीता जी की सखियों के माध्यम से सामान्य नारी-चरित्र के गुणों का चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त अपनी परम आराध्या सीता के दिव्य चरित्र को भी मानवीय गुणों की सहज प्रतिष्ठा द्वारा इन्होने (उनके चरित्र को) एक ओर तो विश्वसनीय एवं पूज्य बनाया है तथा दूसरी ओर मानवीय संवेदनों से युक्त एक जीवन्त चरित्र की सृष्टि की है।

नारी-चरित्र का दूषण : कुटिलता

नारी के सद्गुणों के समान ही उसके दोष अथवा दुर्गुण भी सहज हैं। अधम नारियों के चरित्रगत दोषों का चित्रण राम-कवियों ने उतनी ही सरसता एव सहजता से किया है जितना सच्चरित्र स्त्रियों का गुण-वर्णन।

(क) विवेकशील रावण की सुन्दरी बहिन शूर्पणखा का वह शिथिल चरित्र—जिससे प्रेरित होकर वह तपस्वी राम-लक्ष्मण के सम्मुख विवाह का लज्जास्पद प्रस्ताव स्वयं लेकर जाती है[६०]—इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। शूर्पणखा की निर्लज्जता का राम-कवियों ने बहुत स्पष्ट कथन किया है। वह स्वय काम-पीड़ित दशा का अपने मुख से कथन करती है।[६१] भारतीय नारी का चरित्रगत शील उसे अपनी कामातुरता का कथन करने से वर्जित करता है। निर्लज्जता नारी-चरित्र का सर्वथा निन्दनीय तत्त्व है। राम-कवियों ने शूर्पणखा के चरित्र में इस दुर्गुण का चित्रण करके उसके राक्षसी आचरण का प्रमाण जुटाया है। यों तो प्रख्यात राम-कथा में त्रिजटा, मन्दोदरी, सुलोचना आदि शत्रु-पक्ष की स्त्रियाँ राक्षस कुल से सम्बद्ध हैं किन्तु भक्त कवियों ने इन स्त्री-पात्रो में विवेक, पतिव्रत एवं भक्ति आदि गुणों का चित्रण करके इन पात्रों को उत्कृष्टता प्रदान की है।

(ख) मंथरा की कुटिलता

राम-कथा मे मंथरा का चरित्र ऐसी गहन कुटिलता लिए हुए है जिसका प्रक्षालन आज तक कोई कवि नही कर पाया है। वस्तुतः मंथरा ऐतिहासिक चरित्र है और ख्यात चरित्र को नितान्त विपरीत अवस्था मे चित्रित करना एक तो चरित्रगत अनौचित्य होगा और दूसरे वह लोक-विश्वास के प्रतिकूल भी होगा। राम-काव्यों मे मथरा के कुटिलतम चरित्र का यही रहस्य है।

भक्त कवियों के राम-काव्यों में मंथरा सम्पूर्ण कथा का मुख्य सूत्र है। राज्याभिषेक तक की सीधी चलती हुई कथा को फलागम की ओर मोड़ने वाला मुख्य चरित्र मथरा का है। राम-कथा के नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से मंथरा एक महत्त्वपूर्ण चरित्र है। मंथरा के द्वारा कैकेयी को फुसलाना एक ऐसी कुटिलता है जो समाज भी अनेक स्त्रियों में समय-समय पर देखी जा सकती हैं। ईर्ष्यालु और चुगली करने वाली मंथरा के चरित्र को डॉ० श्रीधर सिंह ने एक वर्गगत चरित्र के रूप में लिया है। उनके शब्दों में—

"ईर्ष्यालु और 'चुगली' करने वाली नारी का जितना सफल चित्रण मानस में है, उतना अन्यत्र नहीं। इस प्रकार की स्त्रियाँ 'त्रियाचरित्र' मे बडी ही प्रवीण होती हैं और आँसू तो उनकी पलको पर रखा रहता है। यही आँसू उनका ब्रह्मास्त्र है।"[६२]

यही चरित्र प्रदर्शित करके मंथरा ने कैकेयी को वशीभूत किया था और मथरा से प्रशिक्षित कैकेयी ने अपने इसी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग वचनबद्ध राजा दशरथ पर किया और नारी की इसी कुटिलता ने कथा को एक कारुणिक मोड़ दिया।

(ग) निम्न वर्ग की स्त्रियाँ

तुलसी के रामलला नहछू में रामचन्द्र के नहछू के अवसर पर नाइन, तम्बोलिन, अहीरिन आदि विभिन्न वर्ग की स्त्रियों का वर्णन हुआ है। राजा दशरथ की सुपरिचित नाइन ऐसे अवसर पर अत्यन्त निर्लज्ज मजाक करती है—

काहे रामजिउ सांवर, लछिमन गोर हो।
कीह्हुं रानि कौसिलहि परिगा मोर हो।
राम अहहिं दसरथ के लछिमन आन क हो।
भरत सत्रुहन भाइ तौ श्रीरघुनाथ क हो।।[६३]

नाइन आदि हर्ष और उल्लास के ऐसे अवसरों में गम्भीरता परिहास कर उठती हैं। राजा के महल की मुंहलगी नाइन एक-एक कर सभी रानियों से आक्षेप भरा परिहास करती है क्योंकि ऐसे उन्मत्त वातावरण में इस प्रकार के कथनों का बुरा नहीं माना जाता है। यहाँ अवधपुर की यह नाइन एक सामान्य वर्गमूलक चरित्र उपस्थित करती है।

इस प्रकार राम-काव्यों में नारी-चरित्र के विविध पक्षों का विस्तृत अंकन करने वाली विविधोन्मुखी स्वभावोक्तियों का यत्र-तत्र ग्रहण करके महाकाव्योचित कथा को गरिमा और औदात्य प्रदान किया गया है।

मानवेतर प्राणियों के वर्णन में गुणमूलक स्वभावोक्ति

राम-काव्यों की महाकाव्योचित कथा-वस्तु की व्यापक परिधि में मानव-जीवन के विविध पक्षों के साथ ही मानवेतर प्रकृति और प्राणि-वर्ग भी समाहित कर लिया गया है। कथा-नायक राम की सहायता करने वाले वानर-भालुओं को राम-कथा में पात्रों के रूप में देखा गया है। इसी कारण मानवेतर प्राणियों के सचित्र एवं सरस गुण-वर्णन राम-काव्यों में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं।

वानर स्वभाव-वर्णन

रामावतार की पृष्ठभूमि में नारद मुनि के मोह का प्रसग सरस हास्य के साथ-साथ वानर की सामान्य प्रवृत्ति का भी उद्‌घाटत करता है।[६४] वानरो की उछक्ष-कूद की सहज प्रवृत्ति उनके वानरत्व से सम्बद्ध वह विशिष्ट गुण है जिसके चित्रण के अभाव में

वानरों का कोई भी वर्णन पूर्ण नहीं कहा जा सकता। वानरों की अत्यन्त स्वाभाविक चाल का कवि केशव ने अत्यन्त जीवन्त वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

सूखे सब सरवर सरिता सकल जब,
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।[६५]

श्रीराम की वानर-सेना के प्रस्थान के उपर्युक्त दृश्य साधारण वानरों के एक समूह की चाल का यथार्थ चित्र पाठक की कल्पना में उभार देता है।

वानर-स्वभाव का एक अन्य सहज गुण है वृक्ष उखाड़ना, वस्तुओं को तोड़ना-फोड़ना और वृक्षों की डालियाँ पकड़कर लटकते हुए झूलना आदि। कवि विष्णुदास ने वानर-समूह के उपर्युक्त गुणों का अत्यन्त जीवन्त चित्र उपस्थित किया है, उदाहरणार्थ—

(क) **आंवरे केरि अकाथ बीजों आम ऊमरि लारि।**
तोरि डारे मूढ़ बन्दर जरें लई उखारि॥[६६]

(ख) **बंदर चढ़े दसों दिसि पूरि। फल खाये तरु डारे चूरि॥**
एकति झूलहिं गहि गहि डार। एकति फांदि करें सरपार॥
ता वन बहुत कुलाहल भयौ। हांकत दधिमुख सामुह गयौ॥[६७]

वानर-जाति का यह वर्णन गुण प्रधान वर्णन होने के कारण वानरों की अत्यन्त सहज प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करता है।

इसी प्रकार रावण की राक्षस-सेना का यत्र-तत्र सहज स्वाभाविक वर्णन राम-काव्यों में उपलब्ध होता है किन्तु यह वर्णन स्वतन्त्र न होकर सर्वत्र ही कवियों की भावनाओं से दबा हुआ है। इसी कारण हम इसे स्वाभाविक नहीं कह सकते।

लंका-विजय के पश्चात् अवधपुरी लौटने पर श्रीराम जब वानरों को अपनी बहु-मूल्य मणिमाला उपहारस्वरूप देते हैं तब वानरों की प्रतिक्रिया का दृश्य देखने ही योग्य होता है। राम-कवियों ने इस दृश्य का अत्यन्त सजीव वर्णन करके वानर मात्र के चरित्रगत गुणों को स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान की है—

मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं।[६८]

यहाँ वानरों का अत्यन्त सहज स्वभाव—प्रत्येक उपलब्ध हुई वस्तु को तोड़-फोडकर मुख में डालने की प्रवृत्ति—यथार्थतः वर्णित हुई है।[६९] यद्यपि महाकवि तुलसी का यह वर्णन प्रत्यक्षतः वानरों में भी श्रेष्ठ भक्ति गुण की व्यंजना करता है किन्तु अवान्तर रूप से यह वानर-प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डालता है।

पक्षियों के गुण-वर्णन

पक्षियों द्वारा हर्षातिरेक से विभोर होकर नृत्य करना उनका एक प्राकृत गुण है। प्रकृति के क्रोड़ में नृत्य करता हुआ मयूर तो अत्यन्त यथार्थ अस्तित्व का बोध देता है। कवि-कल्पना से स्पृष्ट, चिड़ियों तथा जलपक्षियों का जल-स्नान तो साधारण द्रष्टा को भी

अभिभूत कर देता है। इन्हीं प्रकृतिगत यथार्थ गुणों के कवियों ने कहीं अतिरंजित एवं कहीं सहज स्निग्ध चित्र उपस्थित किए हैं।

राम को अयोध्यापुरी लौट आए जानकर अवध के पक्षी हर्ष-विभोर होकर नृत्य करने लगते हैं। उनके उल्लासमय नृत्य का एक सहज वर्णन प्रस्तुत है—

> मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत ।।
> जहं तहं देखहिं निज परछाहीं। बहु विधि कूजहिं नृत्य कराहीं ।।[७०]

अपनी क्रीड़ामग्न अवस्था मे वृत्ताकार नृत्य करना पक्षियों की सहज प्रवृत्ति है। किन्तु इसी सामान्य तथ्य को राम-कवियों ने अपने कथा-नायक राम के साथ जोड़कर अपनी महती काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है। अपनी कथा को व्यापकता एवं औदात्त्ययुक्त विस्तार प्रदान करने के लिए तथा अपने कथा-नायक के प्रति सम्पूर्ण प्रकृति में विराट् सहानुभूति का सृजन करने के लिए राम-कवियों ने गुणमूलक स्वभावोक्ति अलकार द्वारा सरस, सरल एवं सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। सूक्ष्म तथा अदृश्य गुणों को स्वभावोक्तियों द्वारा मूर्तिमन्त करके राम-कवियों ने रचना-कौशल का विलक्षण परिचय दिया है। इन स्वभावोक्तियों से कथागत पात्रों का चरित्र जीवन्त एवं सशक्त रूप में अभिव्यक्त हो सका है।

जड़ वस्तुओं के गुण-वर्णन में स्वभावोक्ति

हमारे विवेच्य मध्ययुगीन राम-काव्यों में भक्ति तत्त्व का इतना अधिक प्राधान्य है कि सभी कवियों ने काव्य-कौशल का साफल्य इष्टदेव श्रीराम एवं जग-जननी जानकी के उज्ज्वल चरित्र गान में ही माना है। सभी मध्ययुगीन राम-काव्यों में स्वभावोक्ति के विविध रूप रस-व्यजना को सहज सम्प्रेष्य बनाते हैं किन्तु वस्तु-वर्णन[७१] के क्षेत्र में जड वस्तुओं का प्रायः तथ्यात्मक वर्णन ही उपलब्ध होता है। ऐसा वर्णन चमत्कार-शून्य होने के कारण स्वभावोक्ति अलकार की सीमा में नहीं ग्रहण किया जा सकता। स्वभावोक्ति अलंकार वास्तव में वस्तुमूलक अलंकार है किन्तु उसकी अलंकारता वस्तु के वर्णन में निहित न होकर उसके चमत्कारपूर्ण वर्णन में निहित रहती है। तुलसी, केशव आदि प्रसिद्ध (मध्ययुगीन) राम-कवियों ने जहाँ जड वस्तुओं अथवा प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है वहाँ या तो उसे नीति में समन्वित कर दिया है अथवा वस्तुओं के नाम ही परिगणित किए गए हैं जो चमत्कारशून्य एक तालिका मात्र हैं, स्वभावोक्ति अलकार नहीं।

सभी आलोच्य काव्य-कृतियों का अध्ययन करने पर केवल कतिपय स्थलों पर ही प्रकृति के गुणपरक सहज रम्य चित्र देखने को मिलते हैं। अपने उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए हम दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

> (क) उत्तरविभागगिरिचित्रअंग। इकदरीमनहुसालाप्रसंग।
> वनगहनविविधतरुकुसुमवास। अलिमत्तभ्रमितआमोदग्रास।
> तरुलताविपुलसंकुलतमाल। शुभकुंजमनहुसंकेतशाल।

अतिश्रमिततहांसीयरामआइ। बनवनिविहारक्रीडाविहाइ।
अवलोकिफटिकमयशिलाएक। अतिरंगचित्रसौरभअनेक।[७२]

(ख) रंगरंगपल्लवमिलिमंजर। सौरभसुमनअमृतफलसंचर।
वारिगहरगरिजविकसांही। मिलिमधुमत्तजु भ्रमरप्रमाहीं।
करतमधुपझंकृतकोलाहल। जलदवितानमनहुंछायोजल।
मीनजातिविहरततहांअनिमिति। आपआपक्रीड़तउचलतअति।
मकरग्राहकमठींअनमानहि। जलचरजातिअनेकहुजानहि।
दादुरखसुनीयतचौहूंदिस। मनहुरटतआगमऋषिगुरुवस।
षड्गीमहिषवराहजंतुषल। विषददेहमातंगमहाबल।
जहाँ तहाँ मदमोरवसुगाजत। सलिलअगाधनिभज्जनसाजत।[७३]

यहाँ कवि ने प्रथम उद्धरण में चित्रकूट पर्वत के तरु-लताच्छादित रमणीय वातावरण का सहज चित्र प्रस्तुत किया है। यह वर्णन तथ्यात्मक होने पर भी तरु, तमाल वृक्षों, लताओं, पुष्पों एवं भ्रमरों के सुन्दर सुरुचिपूर्ण चयन एवं ललित वर्णन के कारण पर्वतीय स्थल मात्र के वर्णन को अलंकृत कर रहा है। द्वितीय उद्धरण में कवि ने अपेक्षाकृत अधिक सजगता एव सूझ-बूझ का परिचय दिया है। कमल-दल का विकसित होना, मधुमत्त भ्रमरावली का गुंजार, वितानवत मेघाच्छन्न आकाश, क्रीड़ारत विविध मीन मंडलियाँ, दादुरादि अनेक जलजीवों की प्रकृति-सौन्दर्य से प्रेरित आह्लाद-प्रदर्शन, मदमत्त मयूरों का नर्तन आदि को एक स्थल पर सुव्यवस्थित रूप से वर्णित करके कवि ने अपनी चयन-प्रतिभा एवं वर्णन-क्षमता दोनों का एक-साथ प्रकट किया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती के (विवेच्य) राम-कवियों की रुचि जड-वस्तुओं के वर्णन में प्राप्त नहीं होती। उनके वस्तु-वर्णन या तो मानव-गुण वर्णन प्रधान हैं अथवा पशु-पक्षियों तक उनका परिसर व्याप्त देखा जा सकता है। जड वस्तुओं के गुण-वर्णन का विषय इन कवियों के काव्य में प्राय: दुष्प्राप्य है। मानवीय पात्रों के चरित्रांकन के लिए राम-कवियों ने गुणमूलक स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग करके अपनी विलक्षण काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है।

सन्दर्भ

१. संक्षिप्त हिन्दी-शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
२. सत्वरजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रय:। —भागवत २, ५, १८
३. श्लेष: प्रसाद: समता समाधि:
माधुर्यसोज: पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च
कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते॥ —नाट्यशास्त्र

४. भरत ने 'अत एव विपर्यस्ता:' कहकर दोषों के विपरीत जो कुछ है वही गुण है, यह मत प्रकाशित किया है। —काव्यदर्पण, पृ० ३०९

५. भरत मुनि के अनुसार गुण भागवत विशेषताएँ हैं।

६. आचार्य शुक्ल : चिन्तामणि, भाग-१, पृ० ४

७. प्रस्तुत अध्याय में हमारा अध्ययन बहुत कुछ महाकवि तुलसी पर आधारित है। इसके दो कारण हैं—(अ) सन् १४५० से १६५० ई० तक के सभी राम-कवियों से तुलनात्मक दृष्टि से तुलसी का काव्य परिमाण एवं गुण में महनीय है, (आ) गुण-मूलक स्वभावोक्ति के सन्दर्भ तुलसी-इतर राम-काव्यों में अत्यन्त विरल हैं।

८. तुलसीदास : रा० च० मा० १, २०२, ४-५

९. वही, २०३

१०. वही, १, २८९, ४

११. वाल्मीकि रामायण में सबसे अधिक दोषमुक्त चरित्र भरत का है और मध्यकालीन राम-काव्यों पर वाल्मीकि की चरित्र-कल्पना का पूर्ण प्रभाव मिलता है।

१२. पुर बालक कहि कहि मृदु बचना।
सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥ —तुलसी : रा० च० मा० १।२२३।४

१३. सब सिसु एहि मिस प्रेम बस परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियं देखि देखि दोउ भ्रात॥ —वही, १।२२४

१४. बालक सीय के विहरत मुदित मनु दोउ भाइ।
नाम लव कुस राम सिय अनुहरति सुन्दरताइ॥१॥
देत मुनि सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ। —तुलसी : गीतावली ७-३६

१५. लालदास : अवध विलास, पृ० १६३

१६. पद कंजनि मंजु बनी पनही धुनही सर पंकज पानि लिए।
लरिका संग खेलत डोलत है सरजू तट चौहट हाट हिए॥
—तुलसी : कवितावली १।६

१७. सूरदास : सूरसागर ९।२८२

१८. भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के सिद्धान्त की स्थापना की। इसी औचित्य का एक रूप है स्वभावौचित्य—जिसका अभिप्राय है लोक प्रसिद्ध पात्रों के स्वभाव में परिवर्तन न करना। इसी कारण मध्यकालीन राम-काव्यों में पात्रों के स्वभाव पात्रों की मूल पौराणिक धारणा पर आधारित हैं।

१९. प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मण्डल डोल॥
—तुलसी : रा० च० मा० १।२५८

२०. मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में नारी का चरित्र एक ओर शिथिल हो रहा था दूसरी ओर उसकी सामाजिक मर्यादा नष्ट होने लगी थी। अत: ऐसे समय में राम-कवियों ने आदर्श पात्रों को मनोवैज्ञानिक स्पर्श देकर लोक के लिए स्पृह्य बना दिया।

२१. जौं बिधि बस अस बनै संजोगू । तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ।।
सखि हमरें आरति अति तातें । कबहुंक ए आवहिं एहि नातें ।।
—तुलसी : रा० च० मा० १।२२१।४

२२. तुलसी : जानकी मंगल, २११

२३. तुलसी : रा० च० मा० १।३४७।४

२४. सूरदास : सूर सागर ९।२८२

२५. तुलसी : रा० च० मा० २।१११।४, २

२६. आचार्य शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ५३, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

२७. तुलसी : कवितावली, २।२१

२८. सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन, तिन्हें समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली ।।
—तुलसी : कवितावली २।२२

२९. बहुरि बदन बिधु अंचल ढांकी । पिय तन चितइ भौंह करि बांकी ।
खजन मंजु तिरीछे नैननि । निज पति कहेउ तिनहि सिय सैननि ।।
—रा० च० मा० २।११६।३-४

३०. नरहरि, 'दक्षावतार चरित्र' के पौरुषेय रामायण अंश से (कु० स्नेह गुप्त द्वारा उपलब्ध हस्तलिखित प्रति से पृ० ३४०)

३१. आचार्य शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ५४

३२. डॉ० श्रीधरसिंह : तुलसी की कारयित्री प्रतिभा का अध्ययन, पृ० ४११

३३. करि आरती निछावरि बरहिं निहारहिं ।
प्रेममगन प्रमदागन तनु न सम्हारहिं ।। —जानकी मंगल १५२

३४. केशव : रामचन्द्रिका, ७।२०

३५. दया माया ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास । —कामायनी, श्रद्धा सर्ग

३६. तुलसी : रा० च० मा० २।५८।३

३७. तुलसी : कवितावली २।११

३८. तब रघुबीर श्रमित सिय जानी । देखि निकट बटु सीतल पानी ।।
तहं बसि कंद मूल फल खाई । प्रात नहाइ चले रघुराई ।।
—तुलसी : रा० च० मा० २।१२३।२

३९. डॉ० रमानाथ त्रिपाठी : कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १८६

४०. तुलसी : मानस, २।१६४।१

४१. वही, २।१६८।३

४२. वही, २।५१।४

४३. धरिधीरमैथिलीरहहुधाम । वनगमनउचिततुमकौनकाम ।
पुनिसासुकह्योदृगजलप्रवाहु । जानकी अल्पवयवननजाहु ।
—नरहरि : पौरुषेय रामायण, पृ० ३३१

४४. तुलसी : रा० च० मा० २।५७।३

४५. वही, २।२८०।३

४६. गोस्वामी तुलसीदास ने भारतीय संस्कृति के जिन गुणों को अपने काव्य में ग्रहण किया है अधिकांश राम-कवियों ने उनका अनुसरण करने का प्रयास किया है। राम-काव्य वस्तुतः भक्ति-रस के माध्यम से चित्तवृत्तियों के उदात्तीकरण का मेरु प्रयास है जिसमें यत्र-तत्र सांस्कृतिक सूत्रों को समाविष्ट करके उसे उज्ज्वल बनाया गया है।

४७. जेहिं सपनेहुं परनारि न हेरी। —रा० च० मा० १।२३०।३

४८. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० ४०

४९. कह रावनु सुनु सुमखि सयानी। मंदोदरी आदि सबरानी।
तव अनुचरीं करउं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥
—रा० च० मा० ५।८।२-३

५०. सूरदास : सूर सागर, ४।३०७

५१. तुलसी : गीतावली, सुन्दरकाण्ड, १५

५२. लालदास : अवध विलास, पृ० १६३ (हस्तलिखित प्रति से)

५३. वही

५४. मैया कबहूं बढ़ै मोरी चोटी—सूरदास का प्रसिद्ध पद, सू० सा० १०।१७५

५५. लालदास : अवध विलास, पृ० १६३

५६. तुलसी : मानस १।२६५

५७. डॉ० चन्द्रभूषण : तुलसी का काव्य सौन्दर्य, पृ० २९९

५८. तुलसी : कवितावली, २।१२

५९. तुलसी : बरवै रामायण, बरवै १८

६०. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति और सामाजिक मूल्यों की प्रतिकूलता के कारण शूर्पणखा का पौराणिक ख्यात चरित्र भी निन्दनीय बना।

६१. सूरदास : सूर सागर, ९।२९०

६२. डॉ० श्रीधर सिंह : तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा का अध्ययन, पृ० ३१२

६३. तुलसी : रामलला नहछू, छन्द १२

६४. पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।
देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥ —रा० च० मा० १।१३४।१

६५. केशव : रामचन्द्रिका, ५।७७

६६. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० १०८

६७. वही, पृ० १२०

६८. तुलसी : रा० च० मा० ६।११६।४

६९. तुलसी के अनुसार राम से पुरस्कार रूप में माला पाकर हनुमान आदि वानर माला के मोतियों को तोड़कर यह खोजने लगे कि कहीं उन पर राम-नाम भी लिखा है अथवा नहीं।

७०. तुलसी : रा० च० मा० ७।२७।३

७१. 'वस्तु' शब्द यद्यपि काव्य-शास्त्र में अति व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है—काव्य में वर्णित प्रत्येक विषय को 'वस्तु' की संज्ञा दी जाती है, किन्तु हमारा अभिप्राय यहाँ केवल मनुष्य, पशु-पक्षी—इतर पदार्थों से है।

७२. नरहरि : पौ० रा०, पृ० ३४४

७३. वही, पृ० ४०६

५

अवस्थामूलक स्वभावोक्ति

अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार काव्यगत पात्रों के चरित्र को जीवन्त रूप प्रदान करता है। किसी पात्र की किसी विशेष भाव-दशा में मानसिक तथा शारीरिक अवस्था का यथातथ्य चित्र अंकित करके पाठक को प्रत्यक्षानुभव के समान अनुभूति करा देने का जो चमत्कार है, उसे अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं। अवस्थामूलक स्वभावोक्ति का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करने से पूर्व 'अवस्था' शब्द के अर्थ-गाम्भीर्य पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

'अवस्था' शब्द स्पष्टतः 'स्था' धातु मे 'अव' उपसर्ग के योग से बना है। 'स्था' का अर्थ है स्थित होना और 'अवस्था' का अर्थ हुआ स्थिति। कोश ग्रन्थों[1] में अवस्था शब्द को संज्ञा स्त्रीलिंग शब्द बताकर इसके निम्नलिखित अर्थ दिए गए हैं—

(क) दशा, समय, काल, आयु स्थिति।
(ख) मनुष्य जीवन की चार अवस्थाएँ—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय।
(ग) मनुष्य जीवन की आठ अवस्थाएँ—बाल, कौमार, कैशोर, पौगंड, यौवन, तरुण, वृद्ध, वर्षीयान।

भारतीय काव्यशास्त्र में अवस्था शब्द मुख्यतः अपने पारिभाषिक रूप में रूपक (नाटक आदि) के कार्य की विविध विकास-स्थितियाँ प्रकट करता है। कार्य के विकास की ये अवस्थाएँ नाटक में कथावस्तु की सुसम्बद्ध एवं अविच्छिन्न संघटना के लिए प्रयुक्त होती हैं जो मुख्यतः पाँच हैं—(१) आरम्भ (२) यत्न (३) प्राप्त्याशा (४) नियताप्ति तथा (५) फलागम।[2]

१. हमारा अभिप्रेत अर्थ

अवस्थामूलक स्वभावोक्ति के सन्दर्भ में व्यवहृत 'अवस्था' शब्द से हमारा तात्पर्य मूलतः न तो कोश-ग्रन्थों में प्रसिद्ध साधारण अर्थ से है और न ही भारतीय काव्यशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली में प्रचलित अर्थ से। वास्तव में हमारा 'अवस्था' शब्द स्वभावोक्ति के 'भाव' शब्द का अर्थोन्मेषक है। भाव ही विविध क्रियाओं और रूपों का आश्रय होने के कारण प्रत्येक काव्य के वर्णनों में सूक्ष्म रूप से निहित रहता है। भाव-दशा मन की विकारात्मक अवस्था है। मन की किसी भी विकार-क्षुब्ध दशा का वर्णन कवि जहाँ

अत्यन्त स्पष्ट, सरल एवं मर्मस्पर्शी शब्दावली में करता है वहाँ वस्तु के मूल रूप को विशिष्ट चमत्कारक बनाता हुआ रस को सिद्धि प्रदान करने वाला यह (वर्णन) अवस्था-मूलक स्वभावोक्ति अलंकार हुआ करता है।

प्राक्तनों ने स्वभावोक्ति अलंकार के वर्गभेद के रूप में जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य को लिया था।[3] वस्तुतः 'द्रव्य' शब्द अपने व्यापक अर्थ मे सम्पूर्ण वाङ्मय की समस्त व्यंजनाओं का आधार बन जाता है। स्वभावोक्ति अलंकार के सन्दर्भ में द्रव्य की अपेक्षा अवस्था शब्द अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अस्तु, अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार द्रव्य की किसी विशेष दशा को अत्यधिक अनुभूति-प्रवण रूप में प्रस्तुत करता है।

२. रस, भाव और विविध अवस्थाएँ

मानव-चित्त की विविध अवस्थाएँ अनेक भावों से प्रेरित रहती हैं। भाव से उत्पन्न होने पर भी अवस्था भाव को स्पष्टतः अभिव्यक्त करते हुए स्थायी रूप प्रदान करती है। काव्यशास्त्र के मनीषियों ने मानवीय भाव-दशाओं के अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किए है।[४] रसवादी आचार्यों ने अनुभाव तथा संचारी भावों के अन्तर्गत विविध मनो-दशाओं को बाँध लिया है। संचारियों की संख्या तैंतीस से भी अधिक स्वीकार की गई है। 'हाव', 'भाव' तथा 'हेला' आदि सत्वज अलंकारों में 'भाव' तो स्पष्टतः भाव-दशा की व्यंजना करता है। 'हाव' तथा 'हेला' के अन्तर्गत परिगणित होने वाली विविध रति-चेष्टाएँ भी प्रणयावस्था को ही अभिव्यक्त करती हैं।[५]

अवस्थामूलक स्वभावोक्ति में रस से तो स्पष्ट भेद इस बात को लेकर है कि रस में विभाव, अनुभाव और संचारी आदि के द्वारा परिपुष्ट 'स्थायी' रस कहलाता है किन्तु स्वभावोक्ति मे प्राप्त होने वाली अवस्था भाव की परिपुष्ट अवस्था नहीं होती। स्वभावोक्ति की अलंकारता का निषेध करके उसे 'रस-पद्धति का एक अशमात्र'[६] कहने वाले आचार्य शुक्ल काव्य के उन स्थलों में कौन से रस का विधान स्वीकार करेंगे जहाँ वानर, घोड़ा अथवा सूअर आदि के सहज स्वभाव का अत्यन्त सरल शब्दावली में चित्रमय आख्यान हुआ है।

यह सत्य है कि स्वभावोक्ति (अवस्थामूलक मुख्य रूप से) रस-विधान में अपनी सीधी सरल अभिव्यक्ति के कारण अतीव सहायक होती है किन्तु उसे रस का ही अंश मानकर उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का निषेध करना भूल होगी। यदि स्वभावोक्ति रस-पद्धति का अंश है तो उपमा-रूपक आदि अलकार, लक्षणा-व्यंजना आदि शक्तियाँ तथा वाक्-वैदग्ध की सभी युक्तियाँ रस के ही साधक होने के कारण उसके अंश ही हैं और वाणी की जो युक्तियाँ रसाभिव्यंजन में व्याघात बन जाती हैं वे काव्य मे दोष कही जाने के कारण त्याज्य हैं। अस्तु, रस-पद्धति का अंश बन जाने से स्वभावोक्ति के अस्तित्व का निषेध नहीं होता। डॉ० रामप्रकाश के शब्द भी हमारे उपर्युक्त विचार का समर्थन करते हैं—"इस अलंकार का प्रयोग कई स्थलों पर रस के विभाव-विधान में सहायक होता है फिर भी अनेक स्थलों पर उसका अस्तित्व स्वतन्त्र एवं आकर्षक है।"[७]

'हाव', 'भाव' आदि सत्वज अलंकारों का जहाँ तक प्रश्न है, वे शृंगार रस तक परिमित होने के कारण स्वभावोक्ति से सर्वथा भिन्न हैं। हाँ इन सत्वज अलंकारों में वर्ण्य अवस्थाएँ अवस्थामूलक स्वभावोक्ति का एक आंशिक विषय हो सकती हैं। इस प्रकार अवस्थामूलक स्वभावोक्ति 'भाव' की अपरिपक्व अवस्था के कारण रस-वर्ग से विभेद रखती है तथा शृंगार के एकमात्र भाव से सम्बद्ध हावादि सात्विकों से इसके विषय-वैविध्य के कारण इसका पार्थक्य है।

विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण (तृतीय परिच्छेद) में रस का विवेचन करते हुए लिखा है कि यदि विभावादि रस के अवयवों में से किसी एक या दो का वर्णन किया जाता है तो वहाँ व्यंजना के द्वारा अन्य को आक्षिप्त मान लिया जाता है।[८] रस की इस व्यंजना-मूलक अभिव्यक्ति का स्वभावोक्ति से भेद प्रतिपादन शैली को लेकर है। रस-विधान व्यंजनात्मक होता है और अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अभिधात्मक।

चरितमूलक काव्यों में पात्रों के चरित्र को स्पष्टतः अंकित करने के उद्देश्य से कवि प्रायः अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार का आश्रय लेता है। डॉ० वचनदेव कुमार के शब्दों में—"गोस्वामी जी ने स्वभावोक्ति का उपयोग कहीं तो चरित्र-चित्रण एवं कहीं स्वरूप निरूपण के लिए किया है।"[९] डॉ० साहब के शब्दों से हम यह अनुमान कर सकते हैं कि स्वभावोक्ति अलकार का सहज विधान कवि के द्वारा दो उद्देश्यों को लेकर हुआ करता है—

[क] (वस्तु का) स्वरूप-चित्रण।

[ख] (मानव वर्ग का) चरित्रांकन।

वस्तु के स्वरूप-चित्रण मे सहज विच्छित्ति का विधान करने के लिए कवि प्रायः रूपमूलक स्वभावोक्ति का प्रयोग करता है और मानवीय चरित्र की सहज व्यंजना के लिए अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार का आश्रय ग्रहण करता है। अवस्थामूलक स्वभावोक्ति भावों से घनिष्ठ रूप मे सम्बद्ध है और भाव मानवीय चरित्र का प्राण तत्त्व है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी भाव को चरित्र का एक प्रधान तत्त्व स्वीकार करते हुए लिखते हैं —"शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के सगठन मे ही समझना चाहिए।"[१०] अस्तु, चरित्रोत्कर्ष की व्यंजना में अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलकार अत्यन्त उपादेय सिद्ध होता है। विशुद्ध भाव-दशा का रमणीय चित्रांकन कहीं-कहीं रसाभिव्यक्ति का अन्यन्य उपकरण बन जाने पर भी स्वभावोक्ति के रूप मे अपनी पृथक् सत्ता रखता है।

३. अवस्थामूलक स्वभावोक्ति के विविध रूप

राम-कवियों ने राम-कथा में अपनी कलित कल्पना के विनियोग द्वारा अनेक प्रकार की मनोरम भाव-छवियों का सहज एवं स्वाभाविक रूप में अंकन किया है। इन कवियों ने विविध भावावस्थाओं को आकर्षक चित्रों में बाँधने के लिए अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार का यत्र-तत्र बहुलता से प्रयोग किया है। राम-काव्य में कथानायक राम का भावात्मक सम्बन्ध चूँकि अपने पारिवारिक वृत्त से ऊपर उठकर अवध की सम्पूर्ण प्रजा

से तथा वन-मार्ग में मिलने वाले अनेक प्राणियों से है, इसी कारण वहाँ भाव की अवस्थाओं को विराट् स्तर पर वैविध्य प्राप्त हो सका है।

अपने कथानायक के जीवन की विशद गाथा के सम्बन्ध में पन्द्रहवीं से सत्रहवीं शती तक के राम-कवियों ने वात्सल्य, शृंगार, भ्रातृ-प्रेम, हर्ष, शोक, आतुरता, जिज्ञासा, बाल चापल्य, भय, आश्चर्य आदि अनेक प्रकार की मानसिक अवस्थाओं के सहज रमणीय चित्र स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से प्रस्तुत किए हैं। अब हम अपने विवेच्य राम-काव्य में उपलब्ध विविध अवस्थाओं से सम्बद्ध स्वभावोक्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। सर्वप्रथम हम चित्त की वात्सल्यावस्था के चित्रांकन में उपलब्ध स्वभावोक्ति की विस्तृत विवेचना करेंगे।

(क) वात्सल्यावस्थामूलक स्वभावोक्ति

वात्सल्यमूलक स्वभावोक्ति का अनुशीलन करने से पूर्व 'वात्सल्य' शब्द का अर्थ जानना विषयान्तर न होगा। 'वत्स' शब्द से वात्सल्य की व्युत्पत्ति हुई है। 'वत्स' का अर्थ है पुत्र या आत्मज। 'वात्सल्य' शब्द अपने मूलार्थ की अपेक्षा अधिक गम्भीर है। माता-पिता का अपने बालक के प्रति ही नहीं किसी भी परिजन, स्वजन, गुरुजन आदि का शिशु ही नहीं अपने से छोटे किसी के भी प्रति स्नेह की अनुभूति वत्सल भाव होता है।

वत्सल भाव मानव हृदय के प्रथम स्पन्दन की भाँति प्राचीन है। यद्यपि साहित्य-शास्त्र में वात्सल्य को रस-रूप में मान्यता बहुत बाद[११] में मिली परन्तु वात्सल्यावस्था के मार्मिक चित्र और अनूठी उपमाएँ ऋग्वेद में भी प्राप्त होती हैं। बच्चों का माता का आँचल पकड़कर घूमना[१२], दूध पीते हुए बालक को थपथपाकर माता का स्नेह प्रकट करना[१३], स्तनों में दूध आने पर माता का बच्चे के लिए व्यग्र हो उठना[१४] आदि वात्सल्या-वस्थामूलक स्वाभाविक चित्र ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। माता की गोद में बैठे हुए[१५] अथवा मचलते हुए[१६] या उसके आँचल से प्रेमपूर्वक ढके हुए[१७] शिशु की कल्पनाएँ भी, जोकि वात्सल्यमूलक स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा वात्सल्य रस की पोषक हैं, ऋग्वेद में प्राप्त होती हैं।

राम-काव्य में चित्त की वत्सल अवस्था विविध रूपों में अंकित हुई है। भक्त साधकों की साधना के अनन्य आधार-स्तम्भ राम अपने शरणागत भक्तों के प्रति वात्सल्य की महानिधि हैं। अवध के प्रजापति राम अपने नगर की जनता के प्रति सहज वात्सल्य से द्रवीभूत रहते हैं। अपने परम आज्ञाकारी चिर-चरणसेवी अनुजों के प्रति निरन्तर वात्सल्य-मग्न हैं। दशरथ और कौशल्या का अपने रामादि पुत्रों के प्रति वात्सल्य तो परम्परामुक्त काव्यशास्त्रीय परिभाषा के अन्तर्गत ही आ जाता है।

आचार्यों ने वात्सल्य के दो भेद स्वीकार किए हैं—(क) संयोग वात्सल्य (ख) वियोग वात्सल्य। अब हम पहले वात्सल्य के संयोग पक्ष का और बाद में वियोग-पक्ष का सूक्ष्म विवेचन करेंगे।

(१) वात्सल्य की संयोगावस्था

बालक के प्रति स्नेह से चित्त आर्द्र हो जाता है और चित्त की यही आर्द्रता संयोगजनित

आनन्दावस्था है। राम का जन्म होने पर अवध में विशाल उत्सव होते हैं।[१८] चौथेपन में चार पुत्र पाकर दशरथ-कौशल्या का सन्तान के चिर अभाव से व्याकुल हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। जननी-जनक अपने सलोने पुत्रों पर वात्सल्य लुटाने लगते हैं।

माता कौशल्या बार-बार अपने सुन्दर शिशु का मुखारविंद देखती हैं, कभी उसे चूमती हैं, कभी उत्साह में भरकर अपने शिशु को गोद में हिलाने लगती हैं, कभी पालने में झुलाने लगती हैं। वे कभी तो बालक को गोद में रखती हैं और कभी हृदय से लगा लेती हैं। इस अवस्था में उनके नेत्रों से हर्ष के अश्रु प्रवाहित हो उठते हैं तथा वात्सल्य-वेग से स्तनों से दुग्ध-धारा स्रवित हो उठती है। कौशल्या की इस वात्सल्य-परितुष्ट अवस्था के चित्र द्रष्टव्य हैं—

(क) बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाए॥[१९]

(ख) लै उछंग कबहुंक हलरावैं। कबहुं पालने घालि झुलावैं॥[२०]

(ग) कबहुं पौढ़ि पयपान करावति कबहूं राखति लाइ हिये।
बालकेलि गावति हलरावति पुलकित प्रेम-पियूष पिये॥[२१]

माता के हृदय मे वात्सल्य का वेग बढ़ने पर और शिशु के भूखा होने पर स्तनों से दूध का स्राव अत्यन्त प्राकृतिक अवस्था है। कवि ने इसी सहज अवस्था का सरल शब्दावली मे एक सुन्दर चित्र उपस्थित कर दिया है।

महाकवि तुलसी का अनुभव लोक की सूक्ष्म से सूक्ष्म अवस्थाओं को भी स्पर्श कर गया है। बालक की यदा-कदा उपस्थित होने वाली अन्यमनस्क अवस्था भी उनकी तत्वभेदिनी दृष्टि से छिप न सकी। राम की अन्यमनस्क अवस्था का एक चित्र देखिए—

आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे ठाढ़े, पालने झुलावत हू, रोवत राम मेरो सो सोच सबही के।[२२]

राम की आज अनरस अवस्था हो रही है। वे प्रातःकाल से ही ठीक प्रकार से दूध नहीं पी रहे है। उन्हें गोद मे लेकर खड़े हो जाने पर अथवा बैठ जाने पर, या पालने में झुलाने पर भी वे चुप नहीं हो रहे हैं। चिन्तातुर कौशल्या कहती है कि मेरा राम निरन्तर रो रहा है, सभी लोगों को उसकी चिन्ता हो रही है।

बालक की ऐसी अवस्था होने पर माता को सर्वाधिक चिन्ता हुआ करती है। महाकवि के 'रोवत राम मेरो' शब्दों मे इसी ममत्व की स्पष्टतः अभिव्यक्ति हुई है। ममत्व के एक अन्य रूप की व्यजना मैना के मातृ हृदयोद्गारों में हुई है। अपनी अत्यन्त प्रिय पुत्री के द्वारा भयानक और अश्लील वेश वाले शिव का वरण करने का संकल्प देख हिमवान् की पत्नी मैना अत्यन्त दारुण विलाप करते हुए अपनी पुत्री को अपने हृदय से लगा लेती है। उनकी वात्सल्यमय अवस्था का चित्र द्रष्टव्य है —

सुनि पति वचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं॥
उमहि विलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥
बारहिं बार लेति उर लाइ। गद गद कंठ न कछु कहि जाई॥[२३]

अपनी सुन्दर कन्या का एक बावले असामान्य वेश (अयोग्य) वर के साथ विवाह होता हुआ देखकर किसी भी माँ के हृदय में कारुणिक वात्सल्य की अवस्था उत्पन्न हो सकती है। प्रत्येक माँ स्वभावतः अपनी कन्या का अत्यन्त श्रेष्ठ वर के साथ विवाह करने की इच्छुक होती है। कवि का यह वर्णन उसके व्यापक एव सूक्ष्म लोक-निरीक्षण को प्रकट करता है।

राम-काव्य में वात्सल्य की उदात्त अवस्था का चित्रांकन हम कौशल्या के भरत-प्रेम के रूप में पाते हैं। विमाता के लोकप्रसिद्ध ईर्ष्यालु स्वभाव के विपरीत भरत के ननिहाल से लौटते ही कौशल्या उन्हें हृदय से लगा लेती है—

अस कहि मातु भरत हियं लाए। धन पय स्रवित नयन जल छाए॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँति। बैठेहिं बीति गई सब राती॥[२४]

अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य तो सभी माताओं का सहज स्वभाव है किन्तु अपनी उस पत्नी के पुत्र के प्रति— जिसने पति के प्राण एक छोटी-सी हठ के लिए ले लिए हों— इस प्रकार का सहज पुनीत प्रेम कौशल्या के चरित्र में आदर्श की भव्यता का विधान करता है।[२५] पात्रों के चरित्र की स्पष्ट व्यंजना करने के लिए अवस्थामूलक स्वभावोक्ति कदाचित् सबसे उपयुक्त अलकार है। यहाँ कौशल्या के चरित्र का उदात्त तत्त्व कवि ने अत्यन्त सरल एव बोधगम्य रूप में उपस्थित कर दिया है।

कौशल्या का भरत के प्रति तथा सुमित्रादि का राम के प्रति प्रगाढ़ वात्सल्य भारतीय संयुक्त परिवार का एक भव्य आदर्श प्रस्तुत करता है। राम-काव्य में पारिवारिक सम्बन्धों का यह माधुर्य ही व्यापक होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदात्त धारणा के रूप में अभिव्यजित हुआ है। भव्य सामाजिक आदर्शों का सृजन करने में राम-कवि और उनमें भी विशेषतः तुलसी कदाचित् विश्व-साहित्य में अद्वितीय हैं।

पति-वियोग से दग्ध कौशल्या के साथ ही पितृ-स्नेह से चिर-वियुक्त, शोक-संतप्त भरत का जागते हुए बैठकर सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत कर देना—दो मूक हृदयों द्वारा एक ही दारुण व्यथा की अनुभूति करना है। डॉ० श्रीधरसिंह ने कौशल्या के इस दिव्य चरित्र को सहज विकास कहा है—

"कौसल्या ने राम को वन जाने के लिए जिस प्रकार उत्साहित किया अथवा भरत के प्रति जिस प्रकार प्रेम प्रदर्शित किया वह उनकी अन्तः प्रकृति से पूर्ण साम्य रखने वाला ही है, कृत्रिम नहीं।"[२६]

राम-काव्य में संयोग वात्सल्य के अनेक प्रकार के मुग्धकारी चित्र उपलब्ध होते हैं। वियोग के पश्चात् होने वाला संयोग अधिक सुखद होता है। राम-कथा में राम के वन से लौटने के अवसर पर माताओं की भाव-विह्वल अवस्था अत्यन्त मर्मस्पर्शी वस्तु है। कवि केशवदास ने वन से लौटे हुए राम-लक्ष्मण-सीता से मिलती हुई माताओं की वात्सल्य-द्रवित अवस्था का अत्यन्त जीवन्त वर्णन किया है, उदाहरणार्थ—

मातन के सुभ पाइ परे सब दुःख हरे।
आंसुन अन्वाहे भागनि आये।
जीवन पाये अंक भरे अरु अंक धरे॥

ते बदन निहारें सरबसु वारें।
देहिं सबै सबहीन धनो अरु लेहिं धनो।
तन मन न संभारें यहै विचारें।
भाग बड़ो यह है अपनो किधौं है सपनो ॥[२७]

राम-लक्ष्मण के द्वारा चरण-स्पर्श करने पर माताएँ अत्यन्त गदगद हो उठती हैं। वे अपने वात्सल्य के अवरुद्ध वेग को जोर से फूटने पर रोक नहीं पातीं और आंसुओं से अपने प्रिय पुत्रों को स्नात कर देती हैं। बार-बार अपने पुत्रों को हृदय से लगाती हैं। उनका मुखारविंद देखकर उन पर अपना सर्वस्व निछावर कर देती हैं। इसी प्रसन्नता में वे बहुत कुछ दान-पुण्य कर रही हैं। अपने तन-मन की अवस्था का उन्हें ज्ञान नहीं है और वे हर्षातिरेक से उन्मत्त-सी हुई यह सोच रही हैं कि यह हमारा बड़ा भाग्य है या कोई स्वप्न है।

बहुत दिनों से बिछुड़े पुत्र को अनायास सम्मुख पाकर माता के हृदय की इसी प्रकार की विचित्र अवस्था हो जाया करती है। वह अपने पुत्र के पुनः मिलन को कभी तो स्वप्न समझती है और कभी उसके अस्तित्व को छूकर सत्यापन करती हुई अपने बड़े भाग्य की प्रशंसा करती है। माता मात्र की यह मानसिक अवस्था कौशल्यादि के माध्यम से कवि ने अत्यन्त रमणीय रूप में उपस्थित की है।

(२) वात्सल्य की वियोगावस्था

बालक की माता-पिता से बिछुड़ने की अवस्था को वियोग वात्सल्य कहा जाता है। बालक से बिछुडकर माता-पिता के हृदय की इसी अवस्था का वर्णन जब कवि सीधी, सरल शब्दावली में कर देता है तो वहाँ अभिव्यक्ति की स्पष्टता से वर्णन मे एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न हो जाता है।

मध्यकालीन राम-भक्त कवियों ने वियोग-वात्सल्यावस्था के विविध चित्त-द्रावक चित्र अंकित किए हैं। इन कवियों के वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार के प्रयोग द्वारा अधिक मार्मिक और रमणीय बन गए हैं।

यज्ञ-रक्षा के लिए मुनि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हैं। उस समय दशरथ के पितृ-हृदय में पुत्र-वियोग से व्याकुल भावविदग्ध अवस्था उत्पन्न हो जाती है। मुनि को वे राम-लक्ष्मण को यज्ञ-रक्षा के लिए ले जाते हुए रोक भी नहीं सकते थे और राम-लक्ष्मण को ऋषि के साथ जाते हुए देख भी नहीं सकते थे। दशरथ के हृदय की इस विषादयुक्त अवस्था का चित्र केशवदास के शब्दों में द्रष्टव्य है—

राम चलत नृप के युग लोचन
वारिभरित भै वारिदरोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठि गै भीतर भौनहिं ॥[२८]

वात्सल्य का चिर-तृषित दशरथ का हृदय राम का वन-गमन न देख सका और

वे आर्द्र नयन तथा मौन कंठ लिए अपने भवन के भीतर चले गए। पिता के हृदय की व्याकुलता को व्यक्त करने के लिए दशरथ का भवन के भीतर चले जाने का वर्णन ही अत्यन्त मार्मिक है। इसी प्रकार भावावस्था के सहज सरल वर्णन के द्वारा प्रमाता के हृदय में स्थित वात्सल्य का सहज उद्रेक कवि नरहरि के वर्णन से हो जाता है।[२६] दशरथ की मूक स्तब्ध किन्तु अन्तर्वेदना से व्याकुल अवस्था का चित्र पाठक के मानस-पटल पर उभर आता है। इस प्रकार स्वभावोक्ति अलंकार की रसोद्रेक के प्रसंग मे जो सार्थकता राम-काव्य के मध्यकालीन कवियो के वर्णनों मे उपलब्ध होती है, वह अपने प्रभावगत मूल्यों के कारण प्रशसनीय है।

विलाप का जो स्थान शोक के करुण प्रसगो में है वही वात्सल्य की वियोगावस्था में भी। दशरण का पुत्र-वियोग मे दारुण विलाप करना एव राम-लक्ष्मण को स्मरण कर अत्यन्त व्याकुल अवस्था को प्राप्त होना—राम-कवियों के निकट अवस्था-वर्णनमूलक स्वभावोक्ति का एक मर्मस्पर्शी विषय रहा है। कवि विष्णुदास की भावानुगामिनी शब्दावली मे दशरथ की अवस्था का एक चित्र प्रस्तुत है—

तुम पुनि पलटे कहं पहुंचाइ। कहि कहि नृप बूझत अकुलाइ॥
× × ×
लछिमन तुम सौं कह्यौ संदेस। जैसे विकलन भये नरेस॥
पां पां चलहिं कूद खनि खाहिं। इक वन छाड़ि एक वन जाहिं॥
पलिका भूमि सुपंती घासु। तरु मंदिर वारि गुफा अवासु॥
सुनि ब्योहारु राउल खरयौ। एक महूरत धरती पर्‌यौ॥
अति दुख मूल्यो चेतु न जाम। पल ही पल संभारियौ राम॥
एक घरी मुरछौ दू बार। गई मूरि गिरि लही न सार॥
रानी पास सबै घिरि रहीं। नैन नीर झिरना दुख गहीं॥[३०]

दशरथ सुमंत्र से व्याकुल होकर पूछ रहे है कि तुम रामादि को कहाँ पहुँचाकर लौटे हो, वे किस दशा में हैं। सुमंत्र के द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता के वन-मार्ग की कठिनाइयों का समाचार जानकर दशरथ मूछित हो जाते हैं, वे बार-बार राम का स्मरण करते हैं। उनके बार-बार मूर्द्धित होने पर सभी रानियाँ उनके निकट आकर शोकमग्न हो जाती हैं।

प्रस्तुत सहज अवस्था-चित्र में कवि ने रानियों के शोक का भी वर्णन करके वातावरण को अत्यन्त स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत कर दिया है। कवि के वर्णन मे दशरथ की व्याकुल-विषण्ण अवस्था का यथातथ्य चित्रांकन हुआ है। तुलसी के दशरथ की अवस्था तो वास्तव में इतनी ही व्याकुल है किन्तु उसके वर्णन में कवि ने उपमा तथा उत्प्रेक्षा आदि के विधान के द्वारा अभिव्यक्ति को रमणीय बनाने की चेष्टा की है।[३१] दूसरे शब्दों में तुलसीदास का दशरथ-वियोगावस्था-वर्णन विष्णुदास की भाँति सीधी सरल शब्दावली में नहीं हो पाया है। तुलसीदास के अन्य किसी भी काव्य में दशरथ की इस व्याकुल अवस्था का मार्मिक वर्णन उपलब्ध नहीं होता है।

कवि नरहरि[३२] एवं सूरदास ने भी दशरथ के वियोग-विकल हृदय का चित्रांकन अत्यन्त सहृदयतापूर्वक किया है। सूर का यह वर्णन विष्णुदास के उपर्युक्त वर्णन से बहुत कुछ भाव-साम्य रखता है, उदाहरणार्थ—

फिरि फिरि नृपति चलावत बात।
× × ×
हा हा राम लखनु अरु सीता, फल भोजन जु डसावै पात।
ह्वै वियोग सिर जटा धरैं द्रुम, चर्म भस्म सब गात।
बिन रथ रूढ़ दुसह दुख मारग बिन पद त्रान चलै दोउ भ्रात।
एहि विधि सोच करत अति ही नृप, जानकी ओर निरखि बिलखात।
इतनी सुनत सिमिटि सब आये, प्रेम सहित धारे अश्रुपात।
तादिन 'सूर' सहर सब चकृत सब रस नेह तज्यौ पितु मात।[३३]

राजकीय ऐश्वर्य-सुख का त्याग करके आपदा-सकुल वन्य प्रदेश में जाने वाले अपने किशोरवय पुत्रों एव कोमलांगी पुत्रवधू को देखकर किस पिता का हृदय दारुण व्यथा से फट नही जाएगा? राम-काव्य में सर्वत्र ही दशरथ के हृदय की आर्त्तवेदना के चित्राकन के माध्यम से अपने सुकोमल बालकों से विलग होते हुए ममतामय पिता के मर्मविद्ध हृदय का शोक फूट पड़ा है। स्वभावोक्तिमूलक यह चित्रांकन एक ओर दशरथ के चरित्र को मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर पिता मात्र के भाव-विह्वल हृदय का चित्र अकित करता है।

अपने पुत्र-रत्नों से वियुक्त होकर जहाँ पिता का हृदय इतना मर्म-व्यथित है वहाँ माता के शोकार्त्त हृदय की अभिव्यक्ति किन शब्दों में की जा सकती है? सूरदास, ईश्वर-दास, केशव आदि कवियों ने तो इस मार्मिक प्रसग को यथार्थ अभिव्यक्ति ही नहीं दी है। इनके वर्णन अधिक मर्मस्पर्शी न होकर सांकेतिक मात्र हैं। तुलसी की कौशल्या तो पति की दुर्दशा देखकर, घबराकर समयानुकूल अपने पति को समझाने लगती है।[३४] राम के मुख से वन-गमन का समाचार सुनकर कौशल्या का मुख सूख जाता है। वे थर-थर काँपती हुई सजल नयनों से पूछती है कि पिता ने किस अपराध के कारण राजतिलक के स्थान पर तुम्हें वनवास दिया है।[३५] तुलसी की कौशल्या यथार्थ और आदर्श भावना का सघर्ष लेकर अवतरित की गई है। यथार्थ पर आदर्श की विजय के रूप में तुलसी की कौशल्या अपने पुत्र को कहती है कि "हे तात! यदि केवल पिताजी की आज्ञा हो तो माता को (पिता से) बड़ी जानकर वन को मत जाओ। किन्तु यदि माता-पिता दोनों ने वन जाने को कहा है तो वन तुम्हारे लिए सैंकड़ों अयोध्या के समान है।"[३६]

विष्णुदास कवि ने वात्सल्यमयी कौशल्या के पुत्रवियोगजन्य वज्राघात-पीडित हृदय का यथार्थ चित्रांकन किया है—

कहै बात जहं जैसी भई। मुरछि धरनि कौसल्या गई॥
जब चेती तब लई उसास। कहां दई तें टौरी आस॥

जल बरसत बरसे जु अंगार। का करि का कीनौ करतार।।
सीत लगत विष परस्यौ अंग। सुख तै भयौ दुरगति सौं संग।।[३७]

राज्याभिषेक के स्थान पर वन-निर्वासन का समाचार सुनकर कौशल्या मूर्छित हो जाती है और जब वे चैतन्य होती हैं तब विविध प्रकार से विधाता के इस वामाचरण पर शोकजन्य प्रलाप करती है।

कवि नरहरि की कौशल्या तो अत्यन्त अश्रुपूरित नेत्रों से सीता को वन-गमन से रोकती है—

धरिधीरमैथिलीरहहुधाम। वनगमनउचिततुमकौनवाम।
पुनिसासुकह्यौद्रगजलप्रवाहु। जानकीअल्पवयवननजाहु।[३८]

जानकी को अल्पवय बताकर कौशल्या इस विषमता से विकल हो उठती हैं कि वन्य-जीवन की कठोर भीषणता एव अल्पवय सुकुमारी का संयोग होने जा रहा है। यहाँ कवि के सरल, स्पष्ट वर्णन से कौशल्या की चरित्रगत कोमलता व्यक्त होकर उनके चरित्र को भव्यता प्रदान करती है।

अपने से छोटे लक्ष्मण के प्रति राम के चित्त की वत्सल-अवस्था एक भिन्न प्रकार की भाव-दशा प्रस्तुत करती है। लक्ष्मण-शक्ति-प्रसंग में मूछित लक्ष्मण को गोद में लेकर राम अत्यन्त घोर विलाप करते हैं। तुलसी, सूर आदि ने राम का शोकार्त्त-विलाप मार्मिक शब्दावली में प्रस्तुत किया है।[३९] केशव ने राम की दशा को अधिक भाव-प्रवण रूप देने के लिए शोकातुर राम की चेष्टाओं का सरल शब्दावली मे एक जीवन्त चित्र उपस्थित कर दिया है, यथा—

चूमि मुख सूंघि सिर अंक रघुनाथ धरि,
अश्रुजल लोचननि पेखि उर लाइयौ।[४०]

मूर्छित लक्ष्मण के मुख को चूमना, उसके सिर को सूँघना तदनन्तर उसे अपने शोक-द्रवित अश्रुजल से भिगोते हुए हृदय से लगा लेना आदि वर्णन पाठक के मानस-चक्षुओं के समक्ष भ्रातृ-शोक से पीड़ित एक साधारण मानव का चित्र उपस्थित कर देता है। इस प्रकार यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा राम के चरित्रोत्कर्ष के साथ-साथ स्वाभाविक अवस्था-वर्णन के द्वारा वस्तु में रमणीयता का विधान भी होता है। यही सहज अनलंकृत वर्णन रसानुभूति में सहज सहायक बनते हैं।

किसी की दीर्घ-प्रतीक्षा मनुष्य को अत्यन्त व्याकुल कर देती है। राम की प्रतीक्षा करते-करते कौशल्या की विचित्र अवस्था हो जाती है। वे अपनी अट्टलिका पर चढ़कर राम के आगमन की आशा लिए दक्षिण दिशा से आने वाले पथिकों से पूछती हैं—

अवधि आज किधौं औरो दिन ह्वै है।
चढ़ि घोरहर विलोकि दखिन दिसि, बूझ धौं पथिक कहां ते आये वे हैं।।
बहुरि विचारि हारि हिय सोचति, पुलकित गात तागे लोचन च्वे हैं।
निज बासरिन बरष पुरवैगो, मेरे कहां करम कठिन बृत क्वैहैं।[४१]

कौशल्या की यह वात्सल्य विरहावस्था अपनी सन्तान की प्रतीक्षा में रत एक साधारण माँ के चित्त की अवस्था का चित्रांकन है।

इस प्रकार राम-काव्य में वात्सल्य की विविध अवस्थाओं का अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलकार के माध्यम से सहज सुन्दर अकन हुआ है।

(३) वात्सल्यावस्था का प्रत्युत्तरात्मक[४२] पक्ष

अपने से छोटे के प्रति जहाँ भी कोई स्नेह प्रकट करता है वहाँ छोटे के द्वारा उसे सम्मान प्रदान किया जाता है। छोटे से प्राप्त होने वाला यही सम्मानयुत प्रेम, भाव-क्षेत्र में वात्सल्य का प्रत्युत्तरात्मक पक्ष कहा जाता है।

राम-काव्य में राम का जिन-जिन लोगों पर वात्सल्य भाव रहा है उनका राम के प्रति अत्यन्त सम्मान का भाव वर्णित किया गया है। लक्ष्मण, भरत आदि की और यहाँ तक कि राम द्वारा पालित घोड़ों की भी राम के विरह में जो करुण दशा चित्रित की गई है वह साहित्य-जगत् में अतीव मार्मिक है।

(अ) लक्ष्मण की प्रेमावस्था

अपने सहज वत्सल आदर्श भ्राता राम के प्रति लक्ष्मण का प्रेम असीम है। उन्हें जब यह समाचार प्राप्त होता है कि राम को चौदह वर्ष का वनवास दिया गया है तो उनके हृदय की अत्यन्त व्याकुल अवस्था हो जाती है—

समाचार जब लछमन पाए। व्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥[४३]

परम स्नेही ज्येष्ठ भ्राता राम के प्रति लक्ष्मण की प्रेम विभोर अवस्था का परिचय हमें उनके कंप, रोमांच और सजल नयनों से प्राप्त हो जाता है। अनुज के हृदय की इस निगूढ भ्रात-प्रेम की प्रवृत्ति को हम वात्सल्य का प्रत्युत्तरात्मक पक्ष कह सकते हैं, यद्यपि तुलसी ने इसके लिए 'भायप भगति'[४४] शब्द का प्रयोग किया है।

(आ) भरत की भावविह्वल अवस्था

इसी प्रकार भरत का सूनी अयोध्या में मन नहीं लगता और समस्त राज्य-कार्यों को छोड़ कर सर्वप्रथम वे वन में राम से मिलने जाते हैं। अपने प्रिय भाई[४५] के दर्शन की उन्हें उत्कट अभिलाषा है। उन्हें मार्ग में राम के चरण-चिह्नों को देखकर अतीव हर्ष हो रहा है। मार्ग में मिलने वाली राम की चरण-धूलि को भरत शिरोधार्य करते हुए, हृदय और नेत्रों से लगाते हुए राम-मिलन के सदृश सुख पा रहे हैं—

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुं पारस पायउ रंका॥
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥[४६]

यहाँ स्वभावोक्ति अलकार के साथ उत्प्रेक्षा के रम्य समन्वय द्वारा अत्यन्त चमत्कारपूर्ण संकर अलंकार का विधान हुआ है। भरत के हृदय की भाव-विह्वल अवस्था

का इससे अधिक विदग्ध चित्र और कौन-सा हो सकता है ? प्रस्तुत वर्णन में भरत के चित्त की भाव-विभोर अवस्था को प्रकट करने वाली सहज शब्दावली के द्वारा कवि ने भरत के सरल एवं उदात्त चरित्र की सशक्त व्यजना की है। भरत की इस प्रेमातुर अवस्था का वैशिष्ट्य इस बात मे निहित है कि अपने प्रिय (स्वामी) के चरण-चिह्नों की रज का स्पर्श करके सांकेतित मिलन का सुख पाने वाली नायिका (प्रिया) का वर्णन तो साहित्य में मिल जायेगा किन्तु बडे भाई के प्रति छोटे भाई की यह अपूर्व प्रेमानुभूति विश्व-साहित्य में अद्वितीय है।

अयोध्या में आते ही पिता की मृत्यु के शोक-समाचार ने भरत के हृदय को जहाँ शोक-स्तब्ध किया वहाँ राम-लक्ष्मण एव परमपूज्य सीता के वन-गमन ने उनके शोकार्त्त चित्त की वेदना को मुखरित कर दिया। उनका करुण-कातर विलाप द्रष्टव्य है—

(क) कैसे गये राम बन की ओर।
बन मों गड़ै कुस गड़ै गोडारी।
कैसे चली भो जनक कुमारी।
कैसे सिधारेउ लछमन भाई।
राम लछन के पगु तब भेंटाई।
देखत धरती महं पगु चीन्हा।
रोय रोय भरत दण्डवत कीन्हा।[४७]

(ख) रोवत बिलखत झंखत जाई।
तब पुनि भरत परा मुरछाई।
कतहुं नहिं पावै पंथ कै ओरा।
दृष्टि नहिं आवै धुंधु कुहेरा।[४८]

भरत इतने अधिक विकल हैं कि कभी वे मूर्छित हो जाते हैं तो कभी उन्हें मार्ग भी दृष्टिगत नहीं होता, दृष्टि-पथ में धुन्ध और कुहरा (अश्रुवेग की आर्द्रता) छा गया है। वे अपने केशों को भी नहीं सम्भाल रहे हैं।[४९] राम के चरण-चिह्नों को पहचान कर उन्हें दण्डवत करना भरत के चरित्र की अतिशय विनम्रता, चित्त की विशदता, कर्त्तव्य-निष्ठा आदि गुणों को प्रकट करता है। अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार काव्य में चरित्रांकन का महत्त्वपूर्ण साधन है जो पात्र के व्यक्तित्व को जीवन्त रूप प्रदान करता है।

इसी प्रकार सूर के भरत भी राम को देखते ही गदगद कंठ से उनके चरणों में लिपट जाते हैं—

राम पै भरत चले अकुलाई।
मन ही मन सोचत मारग में, दई फिरै क्यों राघवराई।
देखि दरस चरनन लपटाना, गदगद कंठ न कछु कहि आई।
लीनों हृदय लगाइ 'सूर' प्रभु, पूछत भद्र भये क्यों भाई।[५०]

सूर आदि सभी राम-कवियों ने भरतादि भाइयों के गूढ स्नेह का उत्कृष्ट चित्रांकन करके पारिवारिक सम्बन्धों के माधुर्य की व्यंजना की है।

(४) मानवेतर प्राणियों की प्रत्युत्तरात्मक वात्सल्यावस्था

पालित पशु-पक्षियों में अपने स्वामी के प्रति उत्कट अनुराग की भावना प्रायः देखी जाती है। पालतू पशुओं के इस सहज चरित्र का आख्यान—विराट् भावनाओं के चितेरे—राम-कवियों के वर्णनों में हमें सहज ही प्राप्त हो जाता है। राम ने अपने घोड़ों को अत्यन्त स्नेह से पाला था। राम के वियोग में उनके घोड़ों की अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। राम-लक्ष्मण आदि को वन में छोडकर सुमन्त्र जैसे ही रथ को वापिस लौटाने लगाते हैं कि घोड़े राम की ओर देख-देखकर हिन-हिनाने लगते हैं। वे तृण-जल ग्रहण करना छोड़कर अपने स्वामी के वियोग-दुःख में निरन्तर अश्रु जल बहाते हैं। इन घोड़ों की विरह-कातर अवस्था के चित्र राम-काव्य में इस प्रकार से उपलब्ध होते हैं—

(क) रथु हांकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिनहिनाहिं।
देखि निषाद विषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं॥

(ख) नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
व्याकुल भये निषाद सब रघुबर बाजि निहारि॥

(ग) चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुं आनि रथ जोरे॥
अदुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोग बिकल दुख तीछें॥
जो कह राम लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥[५१]

मानवेतर प्राणि वर्ग की अवस्था का इतना सहज एवं जीवन्त वर्णन काव्य में एक अप्रतिम चमत्कार की संयोजना करता है। स्वामी के वियोग में पशु अपनी विरहावस्था का प्रकटीकरण कंठध्वनि, अश्रुपात एव उछल-कूद आदि सकेतों के द्वारा करता है।[५२] महाकवि तुलसी का उपर्युक्त वर्णन इसी तथ्य का रमणीय चित्रांकन है। तुलसी की कौशल्या कहती हैं कि मुझे अयोध्या में सबसे अधिक अदेशा (चिन्ता) इन्हीं घोड़ों का है। यद्यपि भरत इनकी सौ गुनी सेवा कर रहे हैं किन्तु फिर भी ये दिन-प्रतिदिन दुर्बल होते जा रहे हैं।[५३] घोड़ों की विरह-विकल अवस्था की इसी मार्मिक अभिव्यक्ति को देखकर आचार्य शुक्ल ने तुलसीदास की प्रशसा करते हुए उन्हें काव्य में मार्मिक स्थलों की पहचान का मर्मज्ञ कहा है।[५४]

(ख) रतिमूलक अवस्थाओं में स्वभावोक्ति

रति अर्थात् शृगार समस्त प्राणिवर्ग में व्याप्त चित्त की अत्यन्त विशद अवस्था है। भरत मुनि ने शृगार-चेतना को अत्यन्त पवित्र, उज्ज्वल एव दर्शनीय माना है।[५५] रुद्रट, आनन्दवर्द्धन एवं भोज आदि आचार्यों ने तो शृगार-भावना को अन्यतम महत्त्व प्रदान करते हुए उसे रसों में श्रेष्ठ रसराज कहा है। यह भावना अपने व्यापक रूप में मानव-वर्ग के अतिरिक्त पशु-पक्षी, लता-गुल्म आदि सम्पूर्ण सृष्टि को अपने में आबद्ध करने के साथ ही सृष्टि का एकमात्र उद्गम-रहस्य भी है। अतः विद्वानों की दृष्टि मे इस मधुर शृंगार अवस्था के वर्णन से रहित काव्य अत्यन्त हीन कोटि का है।

भारतीय काव्य-शास्त्र में शृगार-भाव को तीन कोटियों में वर्गीकृत किया गया है—(१) अयोग शृगार (२) संयोग तथा (३) वियोग शृंगार।

विवाह से पूर्व के अनुराग को वियोग से पृथक् करने के लिए, सुविधा की दृष्टि से अयोग नाम दिया जाने लगा है।[५६] राम-काव्य में शृगार की विविध अवस्थाओं के सहज स्वाभाविक चित्र उपलब्ध होते हैं। रामोपासना की रसिक परम्परा के काव्यों मे यद्यपि राम-सीता की युगल-क्रीड़ाओं के रतिमूलक अतीव अलकृत चित्र उपलब्ध होते है किन्तु इनमें से स्वामी अग्रदास के कतिपय पदों में स्वभावोक्ति अलकार के माध्यम से दिव्य दम्पती (सीता और राम) की विलासमग्न अवस्था के सरस स्निग्ध चित्र उपलब्ध होते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से मर्यादापरक हिन्दी राम-काव्य में राम और सीता के अयोग और सयोग शृंगार का वियोगावस्था की अपेक्षा सक्षिप्त चित्रण उपलब्ध होता है।

(१) संयोगावस्था में स्वभावोक्ति

उदात्त सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए राम-काव्य में राम और सीता के सहज प्रणय भाव का दाम्पत्य के रूप में विकास दिखाया गया है। सीता के पूर्वराग की अवस्था को राम-कवियों ने उपमा और उत्प्रेक्षाओं से मडित रम्य चित्रों के रूप में प्रस्तुत किया है।[५७] दाम्पत्य-सूत्र मे बँधे राम-सीता की प्रणय-क्रीडा का वर्णन भी मर्यादा-प्रिय राम-कवियों ने अत्यन्त शिष्ट रूप मे किया है, यथा—

एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निज कर भूषन राम बनाये॥
सीतहि पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुन्दर॥[५८]

आचार्यों की दृष्टि में यह रस का उदाहरण हो सकता है और वास्तव में ये पंक्तियाँ सहृदय को दाम्पत्य-क्रीडा के आनन्द की सहज अनुभूति भी कराती हैं। किन्तु राम का पुष्प चुनकर उनके आभूषणों से प्रेयसी पत्नी को विभूषित करना, प्रेमी पति के युवा हृदय की प्रणय-विभोर अवस्था का सहज उच्छलन है।

यहाँ अवस्थामूलक स्वभावोक्ति रस-व्यंजना में सहायक बनी है। प्राय: प्रत्येक अलंकार की सार्थकता रस-व्यंजना को अधिकतम प्रेषणीय बनाने में है। यों तो अलंकारों का सहज निवेष काव्य को अधिक रमणीय बनाता है किन्तु अन्य अलकारों की तुलना में स्वभावोक्ति अलंकार का अवस्थात्मक रूप काव्य में अत्यन्त अकृत्रिमता से अन्तर्भुक्त रहता है और काव्य-वस्तु को सहज आस्वाद्य रूप प्रदान करता है।

तुलसी की ही मर्यादा-परम्परा में आते हुए भी केशव का दाम्पत्य-वर्णन अधिक चंचल[५९] है। केशव का वर्णन तरुण-दम्पती के हृदय की रत्यात्मक अवस्था का सहज प्रकाश है किन्तु तुलसी ने उस पर मर्यादा का एक पारदर्शी आवरण डाल रखा है।[६०] तुलसी के राम अपनी प्रिया को 'सादर' अलंकृत करते हैं। यह 'सादर' शब्द तरुण हृदय के प्रणय वेग की स्वच्छन्दता को मर्यादित कर एक मर्यादा पुरुष के चरित्र का आख्यान करता है।

स्वामी अग्रदास की युगल जोड़ी रस-केलि की विविध युक्तियों में अत्यन्त पटु है।

राम-काव्य के माधुर्योपासक कवि अग्रदास की सीता मर्यादापरक कवियों की संकोच-शीला लज्जावनत युवती न होकर चंचल यौवना विलास-पटु नायिका है। प्रातःकाल निद्रामोचन करके उठते हुए रसिक दिव्य दम्पती का सहज चित्र द्रष्टव्य है—

रजनी अल्प राम उठि बैठे सोय गयी सीता आयो भोर।
बार बार विधु बदन विलोकत मानो पीवत सुधा चकोर।
हरे हरे चुम्बन चमकन उर कर सों चिबुक चारु टक टोर।
जागि परी जानकी तेहि छन आलस पगे नयन की कोर।
बहुरि अंक आरोपि पिया को गौर स्याम शोभित एक जोर।
'अग्रअली' ऐसी छवि छोड़ें बिग जीवन जाके आवे उर ओर।[६१]

थोड़ी ही रात्रि शेष है कि राम तो उठ बैठते है किन्तु सुरति ग्लानि का अनुभव करती हुई सीता पुनः सो जाती है। प्रभात वेला मे रात्रि की काम-क्रीड़ाओं से थककर पुनः सोई हुई प्रिया को जगाने के लिए पति का हृदय विह्वल होकर चुम्बनों की झड़ी लगा देता है। इससे सीता जाग उठती है और जागते ही अपने प्रेमातुर पति को आलिंगन मे बाँध लेती हैं। निश्चय ही तुलसी की मर्यादाशीला सीता ऐसी अवस्था में राम को आलिंगनबद्ध करने के स्थान पर लज्जावनत मुख होकर पृथ्वी की ओर देखने लगती। अग्रदास की सीता अपनी विलास अवस्था में सामान्य मुग्धा युवती का जीवन्त चित्र उपस्थित करती हैं।

रति-श्रम से थकित सीता के आलस्य से पगे शरीर तथा धरती पर डगमगाते उनके पगों का एक सहज चित्र प्रस्तुत है—

रजनी जागे भामिनी आवत संग मधुर उचरत जयगान।
डगमगात पद धरत-धरनि पर राम अधर रस कीनो पान।
आलस परे अँडात जानकी मुदित मगन राखो पिय मान।
अंग अंग ऊंघाहि देत सब सर्वसु अर्पि लिये रतिदान।[६२]

अर्थात् रात भर जागने के कारण सीता का शरीर आलस्य से पगा हुआ है। उनके पग डगमगाते हुए धरती पर पड़ते हैं। राम ने अधर-रस का पान किया है। राम को सुख देकर उन्हें अपने वश में कर जानकी मुदित है।

अग्रदास की सीता रतिदान के अवसर पर जहाँ अपने प्रिय को वश में जानकर प्रसन्नमन है वहाँ सस्कृत कवि कुमारदास की जानकी राम के द्वारा अपना सर्वस्व हरण किये जाने पर बहुत रोती है—

यद्रक्ष वृढवस्त्रबन्धनैः स्वापकालमवगम्य भर्त्तरि।
तत्प्रमृष्टवति सगतस्मृतिः सा रुरोद मुषितेव सस्वरम्॥[६३]

संयोग के प्रथम अवसर पर सीता का रुदन अज्ञात यौवना नायिका की रति-प्रतिक्रिया है और रतिदान के पश्चात् प्रसन्नता अनुभव करने वाली अग्रदास की सीता प्रौढ़ा नायिका का प्रतिनिधित्व करती है। कुमारदास की सीता अपनी किशोरवय के

अनुरूप आचरण करती है। उनका चरित्र अपनी सहजता में अधिक मनोवैज्ञानिक है। कामक्रीड़ा मे रत राम की चेष्टाओं की प्रतिक्रिया सीता के व्यवहार में मुग्धा षोडशी नायिका की सलज्ज चेष्टाओं को जन्म देती है। कुचमर्दन में प्रवृत्त राम की अंगुलियों को हटाती हुई सीता की सहज रति अवस्था का चित्र देखिए—

अङ्गुलीषु परिगृह्य राघवे वेधवत्युरसि रागिभिर्नखैः।
सस्मितं विवलिताङ्गुलिर्बलादात्मनः करमुदासभामिनी ॥[६४]

राम की अंगुलियों को बलपूर्वक दूर हटाकर सीता उदास हो जाती है। उनकी यह उदासी रति-अनभिज्ञ मुग्धा का मनोविज्ञान है। कुमारदास की ही भाँति अग्रदास के परवर्ती राम-कवियों ने राम-सीता का घोर विलास-वर्णन किया है।

जल-विहार करते हुए राम और सीता की जल-क्रीड़ामग्न अवस्था का सहज एवं सरस चित्र अग्रदास ने केवल एक पंक्ति मे मूर्तिमान् कर दिया है, यथा—

लोचन लाल भये पयपूरित बसन अंग लपटाई हो।
निरखत नीरकेलि नरनारी अग्रअली मन भाई हो।[६५]

जल-क्रीड़ा में मग्न सीता और राम के नेत्र जल भर जाने से लाल हो गए हैं, उनके वस्त्र भीगकर उनके शरीर से लिपट गए है। इन दो सामान्य तथ्यों के माध्यम से कुशल कवि ने एक सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है।

मर्यादा दृष्टिमूलक राम-काव्य में रावण को सर्वत्र 'लम्पट', 'खल', 'कामी', 'नीच' और 'दुष्ट' तो कहा गया है किन्तु उसके तामस विलास का वर्णन नहीं किया गया है। राम-कवियों की मर्यादास्नात दृष्टि ने रावण के अन्तःपुर की रति-क्रीड़ाओं का चित्रांकन करना भी आश्यक नहीं समझा है।

शूर्पणखा के राक्षसी चरित्र को सभी राम-कवियों ने स्पष्टता से चित्रित किया है। सूर और तुलसी ने उसके चरित्र में अश्लील कामुकता उभारकर उसके राक्षसी तत्त्व का समर्थन किया है। तुलसी ने उसे अधम कोटि की स्त्री कहकर सूर्यमणि से उपमित किया है[६६] और सूर ने "बौरी भई मदन बस, मेरे ध्यान चरन रघुराई" कहकर स्वयं शूर्पणखा के मुख से उसकी कामातुरता कहलवा दी है, जिसका कथन स्त्री के मुख से किसी भी अवस्था में शोभनीय नहीं होता है। राक्षसत्व की बात को भूलकर भी हम देखते हैं कि सूर, तुलसी आदि का यह वर्णन कामवासनात्मक अवस्था का संकेत होते हुए भी अमर्यादित नहीं है। राक्षसों में सहज रूप से पाई जाने वाली उद्दाम काम-वासना के सम्मुख यह वर्णन अत्यन्त सांकेतिक ही है। दूसरी बात यह है कि राक्षस पात्रों के चरित्र का यह एक मनोवैज्ञानिक पक्ष होने के कारण चरित्रों को विश्वसनीय एवं जीवन्त रूप प्रदान करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण हिन्दी राम-काव्य (सन् १४५० से १६५० ई० तक) में दाम्पत्य-प्रेम की संयोगावस्था के ललित चित्र अत्यन्त विरल एवं संक्षिप्त हैं।[६७] इन कवियों का मर्यादावाद शृंगारावस्था के मुक्त चित्रण में अत्यन्त बाधक हुआ है।

(२) रति की वियोगावस्था में स्वभावोक्ति

प्रत्येक दम्पत्ति के हृदय की रतिजन्य अवस्था अत्यन्त कोमल और सहज होती है। कोई भी प्राणी युगल परस्पर पृथक् होना नहीं चाहता। किन्तु अवांछित तत्त्व ही हमारे चित्त की अवस्था को खिन्न एव कातर बना देते हैं। प्रेमी-प्रिया के परस्पर वियोग के क्षणों में उत्पन्न होने वाली चित्त की अवस्था का सरल शब्दावली में सचित्र वर्णन वियोग शृगारावस्थामूलक स्वभावोक्ति अलकार होता है। राम-काव्य के मध्यकालीन कवियों ने राम और सीता की विरहावस्था का उभयमुखी चित्रांकन किया है। हिन्दी-काव्य में पुरुष की वियोगावस्था का नारी की विरह-व्यथा की तुलना में अल्प चित्रण हुआ है। हमारे आलोच्य राम-काव्य का यह वैशिष्ट्य है कि उसमें राम के विरह-कातर हृदय की आर्द्र अवस्था का अत्यन्त भावपूर्ण चित्रांकन हुआ है। वास्तव मे नारी का पुरुष के प्रति आकर्षण एवं उसके वियोग में दुःख जितना स्वाभाविक है, पुरुष के हृदय की नारी-वियोग मे विकल अवस्था उतनी ही सहज है। अतः राम की सीता के वियोग मे विकल चित्तावस्था का विश्लेषण हम स्वभावोक्ति के सन्दर्भ मे प्रस्तुत करेंगे।

(अ) पुरुष की विरह-दशा में स्वभावोक्ति

राम-काव्य के नायक राम यद्यपि परमतत्त्वरूप परब्रह्म हैं किन्तु अपने लीलाधारी वपु में वे साधारण नर ही हैं। मध्यकालीन रामभक्त कवियों का यह तर्क ज्ञानियों को आनन्द प्रदान करता होगा किन्तु रसज्ञ पाठकों की आनन्दानुभूति मे बाधक अवश्य है। इसी कारण कुछ विद्वानों ने रामचरित मानस जैसे रामभक्तिमूलक काव्य-परम्परा के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ में सर्वत्र रसाभास की स्थिति स्वीकार की है।[६५] रामचरित मानस के दैवी पात्र भी राम के व्यक्तित्व की इस द्विविधता से शकित हो उठते हैं। पार्वती का राम के पर-ब्रह्मत्व के प्रति शकित हो उठना इसका उदाहरण कहा जा सकता है।[६६] तुलसी और वाल्मीकि की तुलना करते हुए डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल राम के द्विविध व्यक्तित्व का विश्लेषण इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

"राम का सयोग शृगार तो मर्यादा पुरुषोत्तम का है परन्तु उनका वियोग तो केवल भ्रम है और परब्रह्म की लीला है।"[७०]

फिर भी रावण के द्वारा सीता को हर ले जाने पर राम के चित्त की विरह-दग्ध-वाष्पित अवस्था का मार्मिक चित्रांकन राम-कवियों द्वारा किया गया है।

कपट मृग मारीच का वध करके लौटते ही राम-लक्ष्मण-शून्य पर्णकुटी को देख सीता के हरण का अनुमान कर अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। तुलसी ने राम के विलाप का वर्णन तो मार्मिक शब्दावली में किया है किन्तु उनकी वियोग-कातर मानसिक एवं शारीरिक अवस्था का मर्मस्पर्शी चित्रण हमें तुलसी-काव्य में उपलब्ध नहीं होता।[७१]

अवस्था के सूक्ष्म वर्णन की दृष्टि से कवि विष्णुदास का राम-विरह वर्णन अधिक मार्मिक कहा जा सकता है, यथा—

आनि दिखायौ देख्यौ चीर। रुंधे नयन दुहनि के नीर॥
आपुन राम रहे उर लाइ। ताहि देखि दुःख भौ कपिराइ॥[७२]

अर्थात् सुग्रीव ने जब राम-लक्ष्मण को सीता के द्वारा चिह्न रूप में फेंके गए वस्त्राभूषण दिखाए तो उन्हें देखकर दोनों भाइयों के नेत्रों में आँसू छा जाते हैं।[७३] राम सीता के वस्त्र को हृदय से लगा लेते हैं। राम की इस भाव-विह्वल अवस्था को देखकर वानरराज सुग्रीव भी दुःखित हो उठते हैं।

इसी प्रकार राम की विरहातुर अवस्था के चित्रण मे मर्मस्पर्शी जीवन्तता का विधान करने के लिए कवि विष्णुदास ने राम की सचेष्ट (यत्नज नहीं, विरह में होने वाली सहज चेष्टाओं के युक्त) अवस्था का वर्णन किया है, उदाहरण द्रष्टव्य है—

खन मुरछैं खन चेते बीर। खन निज नैनन मोचैं नीर॥
पुनि गिरिवर तरु बूझतु सोई। सीतहिं कहूं बतावहु मोइ॥
सिय सिय करत सुखि गौ गरौ। छांड़ी लाज भयौ बावरौ॥
तिनुका पग लागत लरखरै। ठां ठां चलत राम गिरि परै॥[७४]

सीता के वियोग मे राम की दशा अत्यन्त व्याकुल है। वे क्षण-क्षण में मूर्छित हो रहे हैं। क्षण भर को जब वे चैतन्य होते हैं तो उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो उठते हैं। वे वृक्ष लता-गुल्मों से सीता का पता पूछ रहे हैं। 'सीता' 'सीता' पुकारते हुए उनका गला सूख गया है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपनी मर्यादा भूलकर बावले (बेसुध) हो गए हैं। स्त्री-विरह के मानसिक आघात के कारण राम इतने दुर्बल हो गए हैं कि पैर में तिनका लगने पर भी वे लडखड़ा कर गिर पड़ते हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण वर्णन मे राम की विरहावस्था का सजीव चित्रांकन करने के लिए कवि ने सूक्ष्म एव चारू चेष्टाओं के द्वारा विरही पुरुष मात्र का तीव्र सवेदनात्मक रूप प्रस्तुत किया है। तुलसी के राम-विरह प्रसग की तुलना में निश्चय ही यह स्वभावोक्ति से अलंकृत वर्णन अधिक सुष्ठु एवं चमत्कारपूर्ण है। अचेत होना, अश्रु बहना, बार-बार पुकारने से गला सूखना, ठोकर खाकर गिरना आदि ऐसी सामान्य दशाएँ तथा चेष्टाएँ है जो एक साधारण विरही पुरुष का भावविदग्ध चित्र उपस्थित कर देती हैं।

महाकवि विष्णुदास ने राम की विरहावस्था को विभन्नि सन्दर्भों में अंकित किया है। एक अन्य स्थल पर जब सीता हनुमान के द्वारा राम की मुद्रिका एवं संदेश प्राप्त करती हैं तब प्रत्युत्तर में वे एक मणि अपने सदेश के साथ चिह्न स्वरूप श्रीराम के पास भेजती हैं। इस मणि की राम के चित्त पर प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है—

सो मनि लै पुनि देखी हाथ। हिये लगाइ रह्यौ रघुनाथ॥
खन देखैं खन लोपैं मनी। ता सुख भयौ मिलि मनु धनी॥
खन खन राखैं हियैं लगाइ। बहुरि न बिछुरि जाइ तिहि ठांइ॥[७५]

सीता द्वारा प्रेषित मणि को राम पहले हाथ में लेकर देखते हैं फिर उसे अपने हृदय से लगा लेते है। क्षण भर मणि को देखते हैं फिर क्षण भर में उसे हृदय से लगाकर छिपा लेते हैं। वे इस मणि के पाने में अपनी प्रिया के मिलन का सुख अनुभव कर रहे हैं। वे मणि को पूरी शक्ति से पकड़े हुए हैं मानों उन्हें भय है कि कहीं मणि हाथ से छूटकर दूर न जा गिरे।

उपर्युक्त चित्रों में पति के तरुण हृदय की विरही दाम्पत्यअवस्था का राम के माध्यम से सजीव चित्रांकन हुआ है। राम-कथा के आधारभूत पात्र श्रीराम के मानवीय चरित्र की व्यजक विरह-दशा को अत्यन्त मार्मिक शब्दावली में बाँधने का सफल प्रयास तुलसी के पूर्ववर्ती महाकवि विष्णुदास द्वारा किया गया है। इस अति कोमल भावावस्था की इतनी मार्मिक अभिव्यक्ति अन्य कोई कवि नही दे सका है। पुरुष की विरह-व्यथा के चित्र उरेहने की कला की दृष्टि से कवि विष्णुदास का स्थान अन्यतम है।

(अ।) नारी के विरह-चित्रों में स्वभावोक्ति

पुरुष की तुलना मे नारी की विरहावस्था का चित्रांकन हिन्दी-साहित्य में अपेक्षाकृत बहुलता से हुआ है। हमारे विवेच्य राम-काव्य मे राम की भाँति ही सीता की विरहावस्था के मार्मिक चित्र उपलब्ध होते है। गोपियों की विरह-व्यथा के कुशल चितेरे सूर ने तथा मर्यादा-निबद्ध तुलसी आदि राम-कवियो ने सीता के विरह-वर्णन में प्राय: या तो वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है अथवा अपने वर्णन को इतना अलंकृत कर दिया है कि सीता की विरह दशा का पाठक के मानस पर चित्र अकित नहीं हो पाता। इसी काव्य-धारा के कवि विष्णुदास ने सीधी सरल शब्दावली मे सीता की वियोगावस्था के अति कमनीय चित्र प्रस्तुत किए हैं।[७६] तुलसी की सीता 'हा जग एक बीर रघुराया' कहकर विलाप करती है और रावण की अशोक वाटिका में मलिन वेश में रहती हुई निरन्तर अश्रु बहाती (अपने पति को स्मरण करती) रहती हैं। विष्णुदास ने सीता की विरहाकुल अवस्था को जीवन्त रूप मे चित्रित करने के लिए सीता के परिवेश को भी महत्व दिया है, यथा—

कही बीर जब देखी जाइ। राम लछिन कहि कहि बिलखाइ॥
× × ×
मैले अंग छीन अति अंग। भूमि मयन राखस तिय संग॥
× × ×
आठों पहर न अहारु। चाहहि मिलन राम भरतारु॥
आंसू भींजत अंचल देह। ताहि देखि मो बढ्यौ संदेह॥
अति मलीन ता मैलनिजरी। देखी समुद्र सोग महं परी॥
खिन खिन रोवै लेइ उसास। मन धरकै रावन की त्रास॥[७७]

हनुमान ने जब अशोक वाटिका में जाकर सीता को देखा तो उन्हे सीता अत्यन्त क्षीणकाय, मलिन वेश में और निरन्तर रोती हुई दिखाई पड़ीं। वे दिन भर भोजन न करती थीं और राक्षस-स्त्रियों के साथ भूमि पर शयन करती थीं। मैल की अनेक पर्तों में जटित सीता शोक के किसी विशाल समुद्र में पड़ी हुई प्रतीत होती थीं। संक्षेप में सीता का भूमि पर शयन, भोजन न करना, मैले वस्त्र पहनना, उसास भरकर रोना और रावण के भय से हृदय धड़कना आदि सभी तथ्य हमारे सम्मुख विपत्ति में पड़ी हुई एक सच्चरित्र तरुणी का चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। पति से वियुक्त होने पर शृंगार (साज-सज्जा) के प्रति

अनासक्ति रखना पतिव्रता नारी का सहज स्वभाव है।

इसी प्रकार पति-वियोग के असह्य दुख को सहती हुई अति कोमलांगी सीता की व्यथित मनोदशा का एक भावमय चित्र कवि नरहरि के शब्दों में प्रस्तुत है—

> दुसहदशाकृतदीनतहाअधवदनमलिनतन, सूषतअधरउसासआसप्रियदरसन-आतुर। रामराममुखरटतिनयनजलधारनिरंतर। शशिकला विधुतदत्रीयनि-संगसुरभीसिधिनीभयसहति।[८८]

सूखते हुए अधर एव उच्छ्वास सीता के अधोमुख मलिन वेश में तड़प और टीस को अभिव्यक्त करते हैं। इस रूप मे हमारे सम्मुख सीता के माध्यम से पति-वियोगिनी कातर-हृदया युवती का जीवित चित्र उपस्थित हो जाता है। तुलसी का कला-वैशिष्ट्य है कि उन्होंने केवल एक पक्ति में यह चित्र अकित किया है।[८९] विरहावस्था मे नारी के हृदय की विविध और सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों के राम-कवियों ने अत्यन्त प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत कर दिए है। हनुमान के द्वारा अभिज्ञानार्थ लाई हुई राम की मुद्रिका को देखकर सीता की दशा अत्यन्त विचित्र हो उठती है। विरह के गम्भीर समुद्र मे पड़ी हुई सीता के बुझे हुए हृदय मे भी हर्ष की एक लहर उत्पन्न हो जाती है, यथा—

> आंसु अन्हवाइ उर लाइ मुंदरी लई।
> आसु बरषि हियरे हरषि सीता सुखद सुभाइ।
> निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि बरनति है बहुभाइ।[९०]

राम की मुद्रिका को अपने अश्रु प्रवाह से स्नात करके सीता ने हृदय से लगा लिया और उनका हृदय हर्ष एव विषाद के विरोधी भावो का सगमस्थल बन गया। सीता की भावातिरेकपूर्ण अवस्था को यहाँ अत्यन्त सहज शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है। यह सीधी अभिव्यक्ति प्रमाता के लिए रसानुभूति के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राम की मुद्रिका को देखकर सीता के चित्त की जो विषम अवस्था हुई उसका वर्णन केशव की अपेक्षा कवि विष्णुदास की शब्दावली में अधिक रमणीय रूप प्राप्त कर सका है, उदाहरणतः—

> रामनाम सुभ लिख्यौ सुनार। सीता बांचति बारंबार॥
> आंसू जल छाए ता नैन। सूधी बात न आवत बैन॥
> जलहल नयन दीठिता ह्वई। सूझति नहीं ताहि मुंदरी॥
> तब कलमलत मुहूरत गयौ। तब पुनि तिहिं दूनौ दुख भयौ॥
> देखि बहुरि लई उर लाइ। मानहुं राम मिले अब आइ॥
> तब छांड़े आनन्द उसास। बहुरि भई जीवन की आस॥
>
> × × ×
>
> खिनु खिनु मुंदरी खिनु हनुमंत। सीता मुख उपज्यौ देखंत॥[९१]

यहाँ कवि विष्णुदास ने सीता की विरह-कातर अवस्था का अत्यन्त सूक्ष्म एवं चारू वर्णन किया है। केशव के वर्णन की अपेक्षा यहाँ अधिक सहजता, स्पष्टता एवं

तीव्रता प्राप्त होती है। सीता की आँखों में आँसू छा जाने से उन्हें मुद्रिका दृष्टिगत नहीं होती और वे व्याकुल हो उठती हैं। उनकी वाणी अटपटा रही है, हृदय कलमला रहा है और मुद्रिका को देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो उन्हें राम ही मिल गए हों। वे आश्चर्य और अविश्वास की अवस्था मे कभी मुद्रिका को देखती हैं तो कभी हनुमान को।[८२]

अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार भाव को अत्यधिक तीव्र रूप में उपस्थित करता है। उपर्युक्त उद्धरण में सीता की वाणी का अटपटाना, हृदय कलमलाना आदि सटीक शब्द-प्रयोग के द्वारा भाव सहज रूप में सम्पूर्णतः प्रेषणीय बन गया है। अवस्था-चित्रों के द्वारा कवि किसी पात्र के चरित्र को जीवन्त में प्रस्तुत करने में सहज ही समर्थ हो जाता है। विरहिणी सीता के मार्मिक चित्रांकन द्वारा कवि ने उसकी अतिशय भावुकता को विशेषतः उभारा है। वास्तव में हृदय की विविध अवस्थाएँ हमारे चरित्र से घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध रहती है। इसी कारण काव्य में चरित्र के स्पष्ट अंकन की दृष्टि से अवस्था मूलक स्वभावोक्ति अलंकार अन्यतम रूप में उपादेय सिद्ध होता है।

रावण की शक्ति से भयग्रस्त सीता की स्थिति को कवि तुलसी ने जिस प्रकार अति दुर्बल बताया है, कवि नरहरि ने रावण से भयभीत सीता को सिंहनी से डरी हुई गाय के समान कहा है, उसी प्रकार कवि विष्णुदास ने भी इस प्रसग के वर्णन मे इसी प्रकार का भाव प्रदर्शित किया है। कवि विष्णुदास तुलसी एव नरहरि के पूर्ववर्ती थे अतः उनकी अभिव्यक्ति का परवर्ती कवियों पर प्रभाव हो सकता है। विष्णुदास के शब्दों में भयत्रस्त सीता का चित्र देखिए—

कठिन वचन सुनि कंपी नारि। उपज्यौ कोप न सकी सहारि॥
निरखे पासु उसासे सास। जनु हथिनि सिंघिनि की त्रास॥[८३]

रावण के कठोर वचन सुनकर सीता काँप उठती है किन्तु उन्हे रावण के इस व्यवहार पर अत्यन्त असह्य क्रोध भी होता है पर अपनी अवश स्थिति का अनुभव करके वे आस-पास देखती हुई दीर्घ निश्वास छोड़ती है। प्रस्तुत वर्णन में सीता के चरित्र का द्विविध रूप उपस्थित हुआ है। रावण के भय से काँपना तथा अपनी विवशता जानकर दुःखपूर्ण निश्वास छोड़ना उनके चरित्र की नारी स्वभावगत कोमलता और सुकुमारता को प्रकट करता है तथा रावण के प्रति असह्य क्रोध का अनुभव उनके चरित्र मे क्षत्राणी के वीरोचित दर्प को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार कवि ने एक अवस्था-चित्र के माध्यम से पात्र के सम्पूर्ण चरित्र को अभिव्यक्ति प्रदान की है। सीता का रादण के प्रति भय का सिंहनी से भयभीत हथिनी का सादृश्य यद्यपि परम्परागत है किन्तु स्वभावोक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त सीता का चरित्र उनकी उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा का द्योतक है।

एक अन्य प्रसंग में मायावी राक्षस रावण सीता को प्रभावित और भयभीत करने के लिए अनेक कपटपूर्ण युक्तियों का प्रयोग करता है। वह अपने सिर काटकर सीता के सम्मुख रखता है इसी से वे अधिक घबरा जाती हैं। सीता की इस भयत्रस्त अवस्था का स्वभावोक्ति के माध्यम से एक चित्र कवि विष्णुदास के शब्दों में प्रस्तुत है—

रावन कपट बुद्धि तब करै। लै सिर जानकी आगैं धरै॥
देखत ताहि मुरछि धर परी। चेती तब तिय अतिभय भरी॥
हा हा राम, राम। हा। राम। सिय संतपित सूखि सरताम॥
मैलौ कंधरु अंसुवनि भीन। सोचति बाल दई दुख दीन॥[८४]

यहाँ रावण के भय से सीता का संताप अधिक तीव्र हो उठा है। प्रत्येक नारी पति से वियुक्त होकर भयमिश्रित दुःख की अवस्था में मूर्छित हो सकती है। इस प्रकार नारी की वियोग दशा की सहज अनुभूति को कवि ने अभिधा में एक चित्रात्मक रूप दे दिया है।

वियोगिनी सीता से हनुमान जब विदा लेकर श्रीराम के पास वापस चलने लगते है, उस समय उनकी मानसिक अवस्था अत्यधिक भावविदग्ध हो उठती है, उदाहरणतः—

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो।
पुलक सिथिल भयो सरीर नीर नयनन्हि छायो॥
कहन चह्यो संदेस नहि कह्यो पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो।[८५]

हनुमान जब चलने लगते है तो उनसे विछोह होते समय सीता का मन भर आता है।[८६] भावावेग के कारण उनका शरीर पुलकित होकर शिथिल हो गया है। उन्हें हनुमान से अपने प्रिय के लिए कुछ सदेश कहने की इच्छा होती है किन्तु अपनी असह्य करुण अवस्था को वे इस कारण छिपा लेती है कि उससे कहीं उनके पति को पीड़ा न पहुँचे। हृदय की रहस्यमयता एव सहनशीलता अथवा संकट के समय में भी दूरदर्शिता और विवेक का अनुसरण कर कष्ट से मुक्ति पाना आदि सीता के उत्तम चरित्र-गुणों को कवि ने अत्यन्त सहज, सरल शब्दावली में वर्णित कर पाठक के चक्षुओं के समक्ष एक सच्चरित्र भारतीय नारी को मूर्तिमान् कर दिया है।

(ग) शोक-दशा-वर्णन में स्वभावोक्ति

हर्ष एव शोक के भाव मानव-जीवन की धूप-छांव है। हर्ष की अपेक्षा शोक काव्य की मर्मस्पर्शिता की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। हमारे आलोच्य राम-काव्य में शोकावस्था के विविध हृदय-द्रावक चित्र उपलब्ध होते है। राम-कथा मे शोक के मुख्य अवसर निम्न-लिखित प्रसंगों मे प्राप्त होते हैं—

(१) राम-वन-गमन प्रसग, (२) दशरथ-देह-त्याग प्रसंग, (३) बालि, रावण एवं अन्य राक्षस-वध प्रसग।

अब हम उपर्युक्त प्रसंगों का स्वभावोक्ति अलंकार के प्रकाश में सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

(१) राम-वन-गमन प्रसंग

सम्पूर्ण अयोध्या नगरी का हृदय-रत्न राम राज्याभिषेक के हर्ष-पुलकित अवसर पर

विमाता की क्रूर चेष्टा से चौदह वर्ष के लिए राज्य-निर्वासन की राजाज्ञा प्राप्त करता है उस समय नगर-वासियों के हृदय की कैसी अवस्था हुई होगी, इसे सहृदय की कल्पना भली प्रकार से जान सकती है। राम-काव्य में इस अवस्था को स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा अत्यन्त प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया गया है। इस दुःखद समाचार के राज-भवन से बाहर निकलते ही अयोध्यावासी शोक-कातर हो उठते हैं। जो व्यक्ति इस विषण्ण समाचार को सुनता है वह उसी स्थान पर अपना सिर धुनने लगता है। लोगों के मुख सूख रहे है, नेत्रों मे निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं और हृदय मे न समाने वाले शोक का उन्हें अनुभव हो रहा है, यथा—

(क) जो जहं सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ विषादु नहिं धीरजु होई॥
मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ।[८७]

(ख) चलत राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहुविधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं॥

(ग) राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहं तहं मनहुं चित्र लिखि काढ़े॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥

(घ) बालक बृद्ध बिहाइ गृहं लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥[८८]

शोकार्त्त जन-समूह का राम के पीछे लगा चला जाना और बार-बार लौटने के लिए कहे जाने पर भी वापस नहीं लौटना अथवा कुछ दूर पीछे लौटकर भी प्रेमवश पुनः साथ-साथ चलने लगना आदि सामूहिक चेष्टाओं के माध्यम से एक सम्पूर्ण जनसमूह की विषण्ण मानसिक दशा का यह जीवन्त चित्र अपनी अभिव्यक्तिगत सहजता के कारण अत्यन्त चमत्कारपूर्ण प्रतीत होता है।

सूरदास के कुछ पदों[८९] में भी इसी प्रकार के भाव का सविस्तार आख्यान हुआ है। सूरदास के अनुसार 'राम के वन-गमन' का समाचार जानकर अयोध्या के लोगों ने जीवन की इच्छा छोड़ दी। राम की स्मृति की ज्वाला उनके हृदय को झुलसाने लगी। ऐसा लगा मानो सब आग पी रहे हों। पशु-पक्षियों ने तृण-कण खाना छोड़कर दिया और बालकों ने माता का दूध छोड़ दिया। सभी लोगों ने राम से वियुक्त अपने जीवन को मिथ्या समझ लिया।'[९०]

महाकवि तुलसी के वर्णन की तुलना में सूर के वर्णन में हल्की-सी अतिशयता का आभास होता है। तुलसी का प्रभाव लिए हुए परवर्ती कवि नरहरि का वर्णन भी सहज, चारु और सुष्ठु होने के कारण स्वभावोक्ति का सुन्दर उदाहरण है।[९१]

तुलसी और सूर के शोक-वर्णनों का तुलनात्मक समीक्षण करते हुए डॉ० राम निरंजन पांडेय लिखते हैं—

"गोस्वामी जी के चित्र में मुनि धर्म की मर्यादा शोक में भी आवेश पर कुछ नियंत्रण रखती है, पर सूर की भावुकता किसी भी बन्धन को नहीं स्वीकार करती। शोक में वह उन्मुक्त होकर बह पड़ती है।"[९२]

जन-समूह का महानुभूतिपरक चित्र अंकित करके राम-कवियों ने राम के उदात्त चरित्र मे पूर्ण उत्कर्ष का विधान किया है। इन कवियो ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य को परखा है कि अपने अत्यन्त कृपालु स्वामी से बिछुडकर उसके सेवकों की क्या अवस्था होती है? क्षण भर के लिए यदि हम राम के परब्रह्मत्व को भूलकर भी देखें तो हम समाज मे उत्कृष्ट चरित्र वाले व्यक्तियों के प्रति जन-साधारण की अनन्य श्रद्धा देखते हैं। यही सत्य इन कवियों की सहज उक्तियों में राम-कथा की सूत्रबद्धता के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। कवि विष्णुदास ने भी अयोध्यावासियों के दारुण वैकल्य का इसी प्रकार सजीव चित्राकन किया है।[६३]

(२) दशरथ देह-त्याग प्रसंग

दशरथ की मृत्यु के अवसर पर जनकपुरी से आया हुआ राज-परिवार तथा अयोध्या का रनिवास शोक-विह्वल हो उठता है। तुलसी के शब्दों में—

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥
भूप रूप गुन सील सराहीं। रोवहिं सोक सिन्धु अवगाहीं॥[६४]

उपर्युक्त उद्धरण में महाकवि तुलसीदास ने यद्यपि शोकाकुल उभय राज-परिवारों की अवस्था का ज्ञान, धैर्य एव लज्जा अर्थात् मर्यादा के नाश द्वारा अत्यन्त यथार्थ शोक-स्थिति का चित्रांकन किया है किन्तु यहाँ 'शोक' शब्द का स्पष्ट कथन करके कवि ने मर्मान्तिक शोकावस्था को संक्षिप्त रूप में कह दिया है।[६५]

राम वन-गमन के पश्चात् दशरथ शीघ्र ही अपनी देह-त्याग देते हैं। दशरथ की मृत्यु का अयोध्या में व्याप्त शोक देखकर ननिहाल से लौटते हुए भरत-शत्रुघ्न स्तब्ध रह जाते हैं। तुलसी ने भरत-शत्रुघ्न की मनस्थिति का सुन्दर अलकृत चित्रण किया है। उत्प्रेक्षा-मंडित तुलसी का वर्णन उनकी कलात्मक निपुणता प्रकट करता है किन्तु स्वभावोक्ति की सहज छटा से रस-धारा में स्निग्धता लाने वाला कवि विष्णुदास का वर्णन अपेक्षाकृत सरस है, यथा—

मन बिलखानौ राजकुमारु। मन्द सगुन भौनगर पसारु॥
राति नगर मों लागे जान। दीसति लोग सबै बिलखान॥
कोऊ हंसत न गावत सुनै। तब पहुंचे ग्रह कैकई तनै॥[६६]

उपर्युक्त वर्णन में नगर की यथार्थ स्थिति को अभिधा शैली में प्रस्तुत किया गया है और स्वभावोक्ति का चमत्कार यहाँ कवि के चयन में निहित है। नगर से हँसी या रुदन का कोई शब्द बाहर न आना किसी अवांछित घटना के घटित होने का सूचक है। अस्तु, कवि ने संक्षिप्त शब्दावली में एक तीव्र प्रभाव-चित्र को अंकित कर अपने उत्कृष्ट रचना कौशल का परिचय दिया।

मध्यकाल की मर्यादापरक परम्परा के अन्तिम राम-कवि नरहरि[६७] ने भी अपने काव्य 'दशावतार चरित्र' के राम-सम्बन्धी अंश (पौरुषेय रामायण) में इस प्रसंग का

अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। किन्तु नरहरि के इस सम्पूर्ण वर्णन पर मानस का गहरा प्रभाव है। इस ग्रन्थ पर तुलसी तथा केशव का इतना घना प्रभाव है कि अनेक आलोचकों ने इस कवि को चोर कवि कहकर इसकी महत्ता की ओर से आँख ही मूँद लीं। ब्रजभाषा का यह कवि अपनी पूर्ववर्ती कवि-परम्परा से प्रभावित होने पर भी उपेक्षित नही किया जा सकता।

(३) बालि, रावण एवं राक्षस-वध प्रसंग

राम-काव्य में राम-रावण सग्राम के अवसर पर मेघनाद, रावण एवं अन्य राक्षसों की मृत्यु उनकी पत्नियों एवं स्वजनों के लिए घोर शोक का विषय बन जाती है। मध्य-कालीन राम-कथा गायकों ने इस प्रसग मे अनेक जीवन्त शब्द-चित्र प्रस्तुत किए हैं—

बालि यद्यपि राक्षस नही था किन्तु उसके अनैतिक आचरण के कारण राम को उसका वध करना पड़ता है। बालि की स्त्री तारा अपने पति की मृत्यु पर शोकजन्य विलाप करती है। तुलसी ने तारा के विलाप को अत्यन्त सक्षिप्त सूचना के रूप मे प्रस्तुत किया है, उदाहरणार्थ—

नाना विधि विलाप कर तारा। छूटे केस न देह संभारा॥
तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह गयान हरि लीन्ही माया॥[६८]

यहाँ तुलसी ने तारा के शोकार्त्त हृदय को केवल 'नाना विधि विलाप' कहकर सूचित कर दिया है और शीघ्र ही इस मर्मान्तिक शोक को माया अथवा अज्ञान कहकर राम के द्वारा ज्ञान का उपदेश करवा दिया है। तुलसी की धर्म दृष्टि यहाँ भाव के संवेदन तत्त्व को आच्छादित कर लेती है।

तुलसीदास की अपेक्षा कवि विष्णुदास का तारा-विलाप अधिक भाव-व्यंजक एवं अवस्था-निर्देशक है, यथा—

तारा रोवति लट सिर तोरि। मुँह देख्यौ माथो गहि छोरि॥
छन चेतै छन मूरछि रहै। दुख के वचन बालि सौं कहै॥
मो बिनु षिनकु न रहते सांइ। ऊतरु देत न कारन कांइ॥
मेरौ देव विदूषत हियौ। का अपराध मैं तेरौ कियौ॥[६९]

प्रस्तुत वर्णन मे कवि ने गहरी सहृदयता के साथ शोक-सन्तप्त तारा की अवस्था का सविस्तार चित्रण किया है। तारा की पल-पल की मूर्छा, खुले केशों को दुःख के आवेग में तोड़ना, मृत पति का मुख देखकर सिर पटक-पटक कर रोना, पति के शव को लक्ष्य कर अपनी आधारहीन अवस्था के लिए आर्त्त वचन कहना तथा दैव के इस क्रूर दण्ड के लिए कोसना आदि शोकग्रस्त नारी की सम्पूर्ण अवस्था को एक सहज चित्र के रूप में प्रस्तुत कर दिया है।

तुलसीदास का ही मन्दोदरी-विलाप वर्णन, तारा-शोक प्रसंग की अपेक्षा अधिक मार्मिक एवं हृदय-द्रावक है, उदाहरणार्थ—

पति सिरु देखत मंदोदरी। मुरछित धरनि खसि परी॥
जुबति बृन्द रोवत उठि धाई। तेही उठाइ रावन पहिं आई॥
पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष संभारा॥
उर ताड़ना करहिं विधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥[१००]

रावण के शव को देखकर मन्दोदरी का मूर्छित हो जाना, अन्य युवतियों का मन्दोदरी को उठाकर रावण के निकट ले जाना और खुले केश, बेसुध होकर अपने वक्ष प्रताड़ित करना आदि शोकाकुल स्त्रियों की चेष्टाएँ यहाँ अत्यन्त सरल शब्दों में प्रस्तुत की गई हैं। कवि विष्णुदास का यह वर्णन स्वभावोक्ति अलकार के चमत्कार से सहृदय के सम्मुख एक साधारण नारी समूह की शोक-विह्वल अवस्था का चित्र अकित कर देता है।

राक्षसों की मृत्यु के अवसर पर लंका की स्त्रियाँ अनेक प्रकार से शोक-व्यंजना करती हैं, यथा—

मारे जिनके पूत भतार। रोवहिं राखसिं करतिं पुकार॥
यह कहि कहि ते पीटतिं हियौ। यह विरोध सूपनखा कियौ॥
पूत मराइ कटाइ नंक। राखस मरे जराई लंक॥[१०१]

शोक की चरम अवस्था में पहुँची हुई राक्षसियाँ राजकुल की मुख्य सदस्या एवं रावण की बहन शूर्पणखा की निन्दा करती हैं। शोकान्ध व्यक्ति किसी के प्रति कुछ भी कह सकता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य यहाँ स्वभावोक्ति मे ग्रहित होकर वस्तु को अधिक आकर्षक बना देता है। अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलकार के प्रयोग द्वारा पात्रों को यथार्थ, संवेद्य एवं सहज बनाकर जन-जीवन के निकट ले जाने की दृष्टि से कवि विष्णु-दास का स्थान राम-काव्य में महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार मेघनाद के वध के पश्चात् रावण की शोक-विह्वल अवस्था का चित्र पाठक के हृदय मे खलनायक के प्रति गहरी सहानुभूति उत्पन्न कर देता है।[१०२]

(घ) अन्य अवस्थाएँ

वात्सल्य, शृगार, शोक आदि भावावस्थाओं के अतिरिक्त श्री राम-काव्य में अन्य अनेक भाव-दशाओं के रमणीय चित्र उपलब्ध होते हैं।

(१) भक्ति-विभोर अवस्था

सम्पूर्ण राम-काव्य यों तो भक्ति-काव्य है। इसी कारण यहाँ भक्ति का अत्यधिक विशद चित्रांकन होना अनिवार्य है। किन्तु भक्ति के सैद्धान्तिक प्रतिपादन की नीरसता को दूर करने के लिए राम-काव्य के प्रणेताओं ने अवस्थामूलक स्वभावोक्ति अलंकार का आश्रय ग्रहण किया है। भक्ति के नियमों को सुनकर बुद्धिजीवी मनुष्य का मन प्रभावित नहीं होता किन्तु किसी भक्त की भक्ति-विभोर अवस्था का चित्रांकन प्रत्येक प्रमाता को सहज ही मुग्ध कर लेता है।

अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्ण की रामादि के आगमन का समाचार पाकर हुई

आनन्द-विह्वल अवस्था का तुलसी के शब्दों में चित्र द्रष्टव्य है—

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउं कहां नहिं बूझा॥
कबहुं फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुंक नृत्य करइ मुनि गाई॥[१०३]

सुतीक्ष्ण की यह प्रेम विह्वल अवस्था अपने इष्टदेव के साक्षात् दर्शन पाने वाले उस भक्त के हृदय की अवस्था का प्रतिरूप है जिसे नित्य ही अपने आराध्य से मिलने की उत्कट अभिलाषा रहती हो। डॉ० रामनिरंजन पांडेय ने सुतीक्ष्ण की इस अवस्था में ध्यान, धारणा, समाधि आदि भक्ति के विमल वैराग्य सोपान का निर्देश किया है।[१०४]

महाकवि तुलसीदास ने अत्रि मुनि की भाव-विभोर अवस्था का भी इतना ही भाव-विदग्ध चित्र अंकित किया है।[१०५] इस प्रकार गोस्वामी जी ने भक्ति जैसे सूक्ष्म तथा अविरल भाव का चित्रांकन कर एक ओर तो भक्त पात्रो के चरित्र की विशदता तथा निर्मलता का प्रतिपादन किया है तो दूसरी ओर स्वभावोक्ति अलंकार के प्रयोग द्वारा शुष्क शास्त्रीय विषय को रसमय बना दिया है। कवि नरहरि द्वारा सरभंगऋषि की भक्तिकालीन अवस्था का चित्रण यद्यपि सांकेतिक है किन्तु चित्रात्मकता के कारण प्रभावशाली है।[१०६]

(२) भावातिरेकपूर्ण अवस्था

मानव-जीवन में कभी-कभी चित्त की ऐसी भाव-संकुल अवस्था हो जाती है जिसे हम किसी एक नाम में नहीं बांध पाते। राम को वन में गंगा तट तक पहुँचाकर लौटते हुए सुमन्त्र की भाव-विदग्ध अवस्था का एक मार्मिक छायांकन अवलोकनीय है—

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥
सूखहिं अधर लागि मुह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी॥
बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुं पिता महतारी॥[१०७]

यहाँ दृष्टि और श्रवणों का अवरुद्ध होना, मति भ्रम, मुख का विवर्ण और अधरों का सूखना आदि चित्र को जीवन्तता प्रदान करते हैं। स्पष्ट चित्रमयता स्वभावोक्ति का प्राण तत्त्व है। अस्तु, तुलसी का यह स्वभावोक्तिमूलक चित्र अपनी सहजता के कारण रस-धारा को द्रुत वेग प्रदान करता है।

इसी प्रकार सुमन्त्र को आया देखकर राम-लक्ष्मण ने जब अयोध्या को अपना सन्देश प्रेषित किया तब सीता जी भी कुछ कहना चाहती थीं। किन्तु भावातिरेक की अवस्था मे वे कुछ कह न सकीं, उदाहरणार्थ—

कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित वचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥[१०८]

सीता अपने वियुक्त परिवार को सन्देश कहना चाहती थीं किन्तु भावावेश से उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई, नेत्र आर्द्र हो उठे तथा शरीर पुलकित हो गया। सीता की इस अवस्था को भक्ति शास्त्र की दृष्टि से चाहे कोई भी नाम क्यों न दिया जाए किन्तु

विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से यहाँ स्वभावोक्ति अलकार के द्वारा सीता के उदात्त चरित्र की कोमल भाव-वृत्ति का उत्कट चित्रांकन हुआ है।

भरत के आगमन का समाचार सुनकर राम की जो विचित्र अवस्था होती है उसका चित्र देखिए—

उठेराम सुनि प्रेम अधीरा। कहुं पट कहुं निषंग धनुतीरा॥[१०६]

यहाँ केवल एक पंक्ति में राम की आतुर प्रतिक्रिया एवं भरत से मिलने के लिए द्रुत तत्परता का कवि ने सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

(३) भय-दशा

पार्वती के विवाह के अवसर पर शिव की विचित्र बारात का दर्शन कर बालकों की भय-ग्रस्त अवस्था का चित्र द्रष्टव्य है—

गएं भवन पूछहिं पितु माता। कहहिं बचन भय कंपित गाता॥
कहिअ काइ कहि जात न बाता। जम कर धार किधौं बरिआता॥[११०]

बालकों का भय से काँपते हुए बारात को यमराज की सेना के समान बताना उनके भय की अधिकता व्यक्त करता है। प्रस्तुत वर्णन की सहज सरल शब्दावली हमारे सम्मुख भयत्रस्त बालक का चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम है।

(४) क्रोधावस्था

राम-कवियों की यह विशेषता है कि वे केवल एक पंक्ति में व्यक्ति की समग्र अवस्था का पूर्ण चित्र अंकित कर देते हैं। रग-भूमि में क्रोधित लक्ष्मण का चित्र देखिए—

माखे लखपु कुटिल भइं भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें।[१११]

यह संक्षिप्त पक्ति प्रमाता के मानस-चक्षुओं में उद्धत लक्ष्मण का क्रोधावेश बिम्बित कर देती है। कुछ विद्वानों ने यहाँ वीर रस माना है किन्तु यह स्वभावोक्ति का विषय है।

(५) लज्जा और ग्लानि की अवस्था

राम-लक्ष्मण आदि के वन-गमन के अवसर पर उनकी प्रेम भरी बातें सुनकर कैकई को बहुत पश्चात्ताप होता है। कैकई की इस लज्जा और ग्लानि से युक्त मनोदशा का चित्र कवि विष्णुदास के शब्दों में द्रष्टव्य है—

वाचा हारें मोकह पापु। अरु कैकई होइ संतापु॥
सुनत बात औंधे मुख भई। बहुत लाज उपजी कैकई॥[११२]

राम-काव्यधारा के अन्तर्गत आधुनिक कवि मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में कैकई के चरित्र का सहानुभूतिपूर्वक चित्रण किया गया है। यद्यपि कैकई के चरित्र-

परिष्कार की कल्पना को आधुनिक माना जाता है किन्तु तुलसी से भी पूर्ववर्ती कवि विष्णुदास ने कैकई के चरित्र मे पश्चात्ताप और ग्लानि युक्त लज्जा को अंकित करके उसकी कालिमा को दूर करने का प्रयत्न किया है।

निष्कर्ष

विवेच्य राम-काव्य में अवस्थामूलक स्वभावोक्ति के विविध रूपों का विवेचन करने पर एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है। इस सम्पूर्ण काव्य मे सहज अवस्था-चित्रों के माध्यम से एक ओर जहाँ पात्रों के चरित्र का स्पष्ट आख्यान हुआ है वहाँ कहीं-कहीं नीरस-शुष्क विषय भी सहज अभिव्यक्ति के सचित्र प्रकाश में सरस हो उठे हैं। भावो की तीव्रता एवं स्पष्टता के द्वारा चरित्रों के सहज बोधगम्य चित्रण की दृष्टि से राम-काव्य मे अवस्था-मूलक स्वभावोक्ति अलंकार का योगदान अन्यतम है।

सन्दर्भ

१. (क) सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
(ख) हिन्दी साहित्य कोश—सं० धीरेन्द्र वर्मा, भाग-१, ज्ञानमण्डल प्रकाशन, द्वितीय सस्करण, पृ० ७९

२. अवस्थाः पञ्च कार्य्यस्य प्रारब्धस्यफलार्थिभि। आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्ति-फलागमाः। —(दशरूपकात् उद्धृतः), विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, पृ० १४५

३. दण्डी : काव्यादर्श, २।१३

४. संस्कृत एव हिन्दी काव्यशास्त्र में नायिका-भेद का एक आधार अवस्था भी रहा है और रतिमूलक काम-दशाएँ विविध भाव-अवस्थाएँ ही हैं।

५. श्री दशरथ द्विवेदी ने अपने संस्कृत लेख (स्वभावोक्ति : जानकी हरणेचास्या रामणीयकम्) में सीता के हावादि (रति चेष्टाओं) के वर्णन में स्वभावोक्ति अलंकार माना है। —श्री चारुदेवशास्त्र्यभिनन्दन ग्रन्थः, पृ० २०६

६. आचार्य शुक्ल : चिन्तामणि, भाग-१, पृ० २४९-५०

७. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, वाल्मीकि और तुलसी : साहित्यिक मूल्यांकन, पृ० ४७८-७९

८. सद्भावश्चेद्विभावादेर्द्वयोरेकस्य वा भवेत्।
झटित्यन्यसमाक्षेपे तथा दोषो न विद्यते॥ —साहित्यदर्पण, ३।१७

९. डॉ० वचनदेव कुमार : रामचरितमानस मे अलंकार योजना, पृ० २००

१०. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग-१, पृ० ४

११. विश्वनाथ से पूर्व वात्सल्य को रस नहीं माना गया किन्तु विश्वनाथ ने ही सर्वप्रथम वात्सल्य को रसों में परिगणित किया है। —साहित्यदर्पण, ३।२५१

१२. ऋक्० १।१४०।९

१३. वही, २।३५।१३, १०।११४।४
१४. वही, ३।३३।१०
१५. आ पुत्रासो न मातर विभृत्रा: सानौ देवासो बर्हिष: सदन्तु । —ऋक्० ७।४३।३
१६. गर्भ माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती विभर्ति । —वही, १०।२७।१६
१७. माता पुत्र यथा सिचाभ्येन भूम ऊर्णुहि । —वही, १०।१८।११
१८. गीतावली के प्रारम्भिक पदो में तुलसी ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।
१९ तुलसी : रा० च० मा० २।५१।२
२०. वही, १।२९९।४
२१. तुलसी : गीतावली, १।७।१२
२२. वही, १।११।१
२३. तुलसी : रा० च० मा०, १।७१।३
२४. वही, २।१६८।३
२५. कवि नरहरि की कौशल्या भी भरत को आँसू पोंछकर गोद में बैठा लेती है।
—नरहरि : पौरुषेय रामायण, पृ० ३४९
२६. डॉ० श्रीधर सिंह : तुलसी की कारयित्री प्रतिभा का अध्ययन, पृ० ४०७
२७. केशवदास : रामचन्द्रिका, ७।२६
२८. वही, १।५४
२९. उरलाइपुत्र बैठारि अंक। राजानिधि पाईमनहु रंक।
मुषवचननआवतमनमलीन। दुषसागरबूड़तभएदीन।
—कवि नरहरि : पौरुषेय रामायण, पृ० ३३२
३०. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० २३
३१. तुलसी : रा० च० मा०, २।३६।१, २, ३, ४
३२. कवि नरहरि : पौ० रा०, पृ० ३३२
३३. सूरदास : सूरसागर, ९।२७४
३४. तुलसी : रा० च० मा०, २।१५३।१, २, ३
३५. वही, २।५३।१, २
३६. वही, २।५५।१
३७. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० २०
३८. नरहरि : पौरुषेय रामायण, पृ० ३३१
३९. तुलसी : रा० च० मा०, ६।६०।१, २, ३, ९
४०. केशव : रा० च०, ७।९
४१. तुलसीदास : गीतावली, ६।१७
४२. हमारा 'प्रत्युत्तरात्मक पक्ष' शब्द अंग्रेज़ी के Response का समानार्थक है। वास्तव में भावावस्था के क्षेत्र में प्रत्युत्तर-पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
४३. तुलसीदास : रामचरित मानस, २।६९।१
४४. राम के तात्त्विक स्वरूप को सर्वोपरि रखते हुए तुलसी की भक्तिमूलक दृष्टि ने भरत

एवं लक्ष्मण आदि की प्रेम-विभोर अवस्थाओं को 'भायप भगति' शब्द में बांधा है।

४५. भक्ति-भाव से चिर अनुप्राणित रामचरित मानस के भरत, राम को सदैव अपने स्वामी अर्थात् इष्टदेव के रूप में देखते हैं।

४६. तुलसी : रा० च० मा०, २।२३७।२

४७. ईश्वरदास : भरथ विलाप, पृ० १०० (सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ मे सकलित)

४८. वही

४९. व्याकुल भये भरथ विशेषा।
नहीं सभारहीं सिर कै केशा। —ईश्वरदास : भरथ विलाप, पृ० ९८

५०. सूरदास : सूरसागर, ९।२८७

५१. तुलसी : रा० च० मा०, २।९९, १४२-४४

५२. नरहरि कवि की 'पौरुषेय रामायण' में घोड़ों की अवस्था का वर्णन पूर्णतः राम-चरित मानस से मिलता-जुलता है। —पौरुषेय रामायण, पृ० ३४५

५३. तुलसी : गीतावली, २।८७

५४. आचार्य शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास

५५. 'यत्किचिल्लोके शुचिमध्येमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते।'
—नाट्यशास्त्र, ६

५६. बाबू गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० १० धनंजय ने भी अयोग शृंगार को स्वीकार किया है, दे० दशरूपक, ५।५०

५७. प्रभुहिं चितइ पुनि चितव महीं राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मण्डल डोल॥

५८. तुलसी : रा० च० मा०, अरण्य काण्ड, १।१

५९. मग को श्रम श्रीपति दूरि करैं,
सिय के सुभ बाकल अंचल सौं।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव,
चंचल चारु दिगंचल सौं। —केशव : रा० च०, २।३३

६०. तुलसी : कवितावली, १।१७

६१. अग्रदास : पदावली, डॉ० अमरपाल सिंह कृत 'तुलसी पूर्व राम-साहित्य' से उद्धृत।

६२. अग्रदास : पदावली

६३. कुमारदास : जानकी-हरण, ८।१३, श्री चारुदेव शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ के एक लेख में श्री दशरथ द्विवेदी ने प्रस्तुत स्थल पर स्वभावोक्ति अलकार माना है। पृ० २०६

६४. कुमारदास : जानकी-हरण, ८।४

६५. अग्रदास : पदावली

६६. तुलसी : रा० च० मा०, ३।१६।२-३

६७. हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत राम-काव्यों में राम-सीता की संयोगावस्था के अत्यन्त सहज स्वाभाविक चित्र मिलते हैं। —कुमारदास कृत 'जानकी हरण', ८।४, ८।१३

६८. श्रीकृष्ण लाल : मानस दर्शन, पृ० १६४
६९. रामचरित मानस, १।५०
७०. डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल, तुलसी और वाल्मीकि : साहित्यिक मूल्यांकन, पृ० ३२९
७१. तुलसी का राम-विरह-वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त विलाप वर्णन है, यथा—

हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता॥
× × ×
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

७२. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० ४५
७३. कवि नरहरि के काव्य पौरुषेय रामायण, पृ० ४०९ पर भी इसी प्रकार वर्णन है।
७४. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० ४३
७५. वही, पृ० १२२
७६. कवि विष्णुदास के इसी वैशिष्ट्य को लक्ष्य कर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा आदि विद्वानों ने 'रामायण कथा' में रामचरित मानस जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ के पूर्वाभास का उल्लेख किया है। —हिन्दी साहित्य, भाग २
७७. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० ११८
७८. नरहरि : पौरुषेय रामायण, पृ० ३९२
७९. कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयं रघुपति गुन श्रेनी॥
—रा० च० मा०, सु० का०, ७-४
८०. केशव : रामचन्द्रिका, ५।३९
८१. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० १०३
८२. तुलसी ने तो 'चकित चितव मुदरी पहचानी। हरष विषाद हृदयं अकुलानी॥' आदि शब्दों में केवल तथ्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है।
८३. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० ९७
८४. वही, पृ० १४१
८५. तुलसी : गीतावली, ५।१५।१
८६. हृदयराम की सीता अवरुद्ध-कण्ठ होने पर भी अपना सन्देश कह देती है—

यही मैलो भेस मेरो कहियो संदेस कपि,
आस बस परी ताते जीवोई करत हौं।
—हनुमन्नाटक, ६।६४

८७. तुलसी : रा० च० मा०, २।४६
८८. वही, २।८३ के बाद ८४ तक।
८९. सूरदास : सूरसागर, पद सं० ४८७ से ८९ तक।
९०. वही, पद सं० ४९०
९१. नरहरि : पौरुषेष रामायण, पृ० ३३३
९२. रामनिरंजन पाण्डेय : राम-भक्ति-शाखा, पृ० ४०४
९३. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० २१

९४. तुलसी : रा० च० मा०, २।२७५।४

९५. रसवादी आचार्यों ने तो भाव के नाम के कथन को स्वशब्दवाच्यत्व दोष माना है। स्वभावोक्ति मे भी शोकादि मूल भावों के नाम का कथन काव्य का अपकर्षक तत्त्व ही है।

९६. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० २६

९७. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने (अपने नवीनतम ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में) इस कवि का नाम 'नरहरि' लिखा है, फादर कामिल बुल्के ने भी (अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राम-कथा' में) और धीरेन्द्र वर्मा ने भी (हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड में इसे नरहरि ही कहा है किन्तु मुझे 'दशावतार चरित्र' की अप्रकाशित पाण्डुलिपि में (जो मुझे कु० स्नेह गुप्त के सौहार्द से प्राप्त हुई) कवि का नाम सर्वत्र 'नरहर' मिला।

९८. तुलसी : रा० च० मा०, ३।१०।१-२

९९. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ५०

१००. तुलसी : रा० च० मा०, ६।१०३।१-२

१०१. विष्णुदास : रामायण कथा, पृ० १८१

१०२. इसी तादात्म्य मे कवि की प्रतिभा का चमत्कार निहित है।

१०३. तुलसी : रा० च० मा०, ३।९।६

१०४. रामनिरजन पाण्डेय : रामभक्ति शाखा, पृ० २३६

१०५. तुलसी : रा० च० मा०, ३।५।५

१०६. नरहरि : पौरुषेय रामायण, पृ० ३६८

१०७. तुलसी : रा० च० मा०, २।१४४।३-५

१०८. वही, २।१५२

१०९. वही, २।२३०।८

११०. वही, १।९४।४

१११. वही, १।२५२।२-३

११२. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ३०

६
व्यापारमूलक स्वभावोक्ति

चेष्टा शब्द की अपेक्षा क्रिया शब्द व्यापक अर्थ का द्योतक है और क्रिया की तुलना में व्यापार शब्द। अस्तु भारतीय प्राचीन आलंकारिकों द्वारा निर्दिष्ट क्रियामूलक स्वभावोक्ति को हम व्यापारमूलक स्वभावोक्ति कह सकते है। तत्वतः चेष्टा, क्रिया और व्यापार तीनों का अर्थ लगभग समान है। चेष्टा अपेक्षाकृत सूक्ष्म है, क्रिया स्थूल तथा व्यापार शब्द अत्यन्त व्यापक। मानवीय क्रियाएँ काव्य का महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि वे हमारे भाषागत सकेतों को अर्थ की परिपक्वता, प्रौढ़ता एवं स्पष्टता प्रदान करती हैं। क्रिया शब्द का कोशगत[1] अर्थ है—(सं० स्त्रीलिंग) शब्द का वह भेद जिससे किसी व्यापार का करना या होना पाया जाए—जैसे, आना, खाना, चलना, बैठना, उठना आदि। किसी काम का होना या किया जाना, कर्म, प्रयत्न, चेष्टा, हरकत, हिलना, डोलना आदि।

भारतीय काव्यशास्त्र में नायिक-भेद के अन्तर्गत एक क्रियाविदग्धा नायिका की भी चर्चा मिलती है। क्रिया-विदग्धा नायिका का अर्थ है—किन्हीं विशिष्ट क्रिया-सकेतों के द्वारा नायक के प्रति अपना अभिप्राय प्रकट करने वाली। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आचार्यों ने अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करने वाले क्रियात्मक संकेतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्पष्टतः स्वीकार किया है।

क्रियावर्णनमूलक स्वभावोक्ति के अन्तर्गत कवि किसी विशिष्ट क्रिया का उसकी जातिगत विशेषताओं के साथ अभिधामूलक सरल शब्दावली में एक मार्मिक एवं सहृदय-आह्लादकारी चित्र प्रस्तुत कर देता है—स्थूलतः क्रियाओं को हम तीन वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं—(क) शारीरिक (ख) मानसिक (ग) बौद्धिक क्रियाएँ। यद्यपि क्रिया के अन्तर्गत उपर्युक्त तीनों प्रकार के प्रयत्न अंशतः समन्वित रहते हैं। ज्ञान, क्रिया और इच्छा का परस्पर विरोध मानव-जीवन के कल्याण-मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। महाकवि प्रसाद के शब्दों में—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।[2]

विडम्बनापूर्ण जीवन न तो काव्य का प्रतिपाद्य है और न ही लोकमगल की दृष्टि से काम्य।

क्रियाओं के वर्ग-विभाजन

अर्थ को दृष्टि मे रखकर क्रियाओ का एक अन्य वर्ग-विभाजन डॉ० कृष्णगोपाल रस्तोगी ने अपने शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार क्रियाओं के मुख्यत: चार वर्ग हैं—(अ) सकल्पनात्मक क्रियाएँ (आ) प्रकरणात्मक क्रियाएँ, (इ) वाक्य संरचनात्मक क्रियाएँ, (ई) भावनात्मक क्रियाएँ।

डॉ० रस्तोगी का उपर्युक्त वर्गीकरण क्रिया के व्याकरणिक रूपों को लेकर प्रस्तुत किया गया है। स्वभावोक्ति के क्षेत्र मे इन सभी रूपों मे से केवल भावनात्मक क्रिया को ही सिद्धान्तत: ग्रहण किया जा सकता है।

क्रियाओं का एक अन्य वर्गीकरण उनके मूल रूप को लेकर भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इस दृष्टि से क्रिया के मुख्य वर्ग तीन हैं—(क) मानव क्रियाएँ (व्यक्तिनिष्ठ) (ख) मानवेतर प्राणियों की क्रियाएँ (व्यक्तिनिष्ठ) (ग) समूहगत (मानव तथा मानवेतर प्राणि-वर्ग की) क्रियाएँ। इन सभी को पुन: दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है—(अ) सहज (आ) भाव-प्रेरित।

व्यापारमूलक स्वभावोक्ति के भेद

क्रिया अथवा व्यापार के इन विविध वर्गीकरणों के आधार पर हम व्यापारमूलक स्वभावोक्तियो को भी वर्गीकृत कर सकते हैं। मानसगत स्वभावोक्तियो को डॉ० वचनदेव कुमार ने चार वर्गो में विभक्त किया है।[3] हमने इस वर्गीकरण के प्रथम दो घटकों को ही अपने इस अध्ययन के अन्तर्गत ग्रहण किया है—(१) मानवीय व्यापारों में स्वभावोक्तियाँ (२) मानवेतर प्राणियों के व्यापारों में स्वभावोक्तियाँ।

मूल रचना की दृष्टि से इन सभी पर हमने सहज तथा भाव-प्रेरित—इन दो दृष्टियों से विचार किया है। साँस्कृतिक झलक प्रकट करने वाली क्रियाओं का वर्णन तीसरा वर्ग उपस्थित करता है।

मानवीय व्यापारगत स्वभावोक्ति

समस्त रामकाव्य मूलत: शक्तिकाव्य है जिसके नायक श्रीराम का अवतार इस पृथ्वी के पाप-कलुष रूप भार का हरण करने हेतु हुआ है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होने पर भी कवि-परम्परा ने राम को आदर्श नरपति से ऊँचा उठाकर जगपालक नारायण बना दिया है। सभी राम-काव्यों में राम के आदर्श जीवन का आख्यान हुआ है। राम के शैशव की सरस क्रीड़ाओं के साथ-साथ कमनीय किशोर-वय राम का सुखद दाम्पत्य जहाँ राम-कथा का विषय रहा है वहाँ इन सब विषयों से ऊपर धनुर्धारी राम का प्रचण्ड पराक्रम राम-कवियों के निकट प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप में देखा जा सकता है। वस्तुत: राम का समग्र जीवन निशाचर-संघर्ष एवं महि भार-हरण के अद्भुत पराक्रम एवं अद्वितीय साहस की

गाथा है। अस्तु राम-कवियों ने मानव-व्यापारों के अन्तर्गत युद्ध एवं संघर्ष का व्यापार अत्यन्त विस्तृत रूप मे चित्रित किया है। यह तथ्य भी स्मरणीय है कि राम-कवियों के अनुसार राक्षसों के विरुद्ध विराट् सघर्ष करने के लिए राम को वानर एवं भालुओं (मानवेतर प्राणियों) का सहयोग प्राप्त करना पड़ा था। अत: सभी राम-काव्यों मे वानर-सेनाओं के वर्णन के समय वानरों की चेष्टाओं एव उनके विविध युद्ध-प्रयत्नों का व्यापक चित्रांकन हुआ है। वानरों और भालुओं के इस व्यापक युद्ध-वर्णन को हम मानवेतर प्राणियों के वर्णन में ग्रहण नही करेंगे क्योंकि राम की सेना में मनुष्यों का अस्तित्व नगण्य था। हाँ इन वानर-भालुओं की जो पशुवत चेष्टाएँ हैं उन्हें हम मानवेतर प्राणियों के वर्णन के अन्तर्गत ग्रहण करेंगे। युद्ध-भूमि में तो जाम्बवान, हनुमान, नल, नील, गवाक्ष, सुखेण आदि वानर न होकर प्रथमत: योद्धा है, अस्तु युद्ध-कौशल के वर्णन में वानर-सेना का वर्णन मानवीय व्यापारों की कोटि में परिगणित किया जाएगा।

बाल-चेष्टाओं के वर्णन में स्वभावोक्ति

बाल-चेष्टाओं का वर्णन स्वभावोक्ति का एक मुख्य विषय कहा जा सकता है। 'डिम्भादे: स्वक्रियारूपवर्णनम्' कहकर आचार्य मम्मट ने तो बालक के क्रिया-व्यापारों को स्वभावोक्ति का लक्षण ही बना दिया है। राम-काव्यों में राम की शैशव-क्रीडाओं को उतना सरस, व्यापक, सूक्ष्म एवं हृदयगाही चित्रण उपलब्ध नहीं होता जितना सूरदास के कृष्ण-काव्य मे। इसका मुख्य कारण यह है कि राम-कवियों की दृष्टि राम के छविधाम रूप-सौन्दर्य का चित्रण करने पर ही केन्द्रित रही है जबकि कृष्ण-कवियों का ध्यान बालकृष्ण की चपल क्रीडाओं की रम्य झाँकियाँ प्रस्तुत करने में निमग्न रहा है। इसी कारण हम कह सकते हैं कि राम-कवियों के बाल-वर्णन में वर्णनात्मकता अधिक है अभिनयात्मकता कम। केवल लालदास एवं तुलसी के काव्य में कुछ स्थलों पर बालक राम की चेष्टाओं के कतिपय मधुर चित्र उपलब्ध होते हैं। परस्पर लड़ते हुए रामादि भाइयों का कविवर लालदास ने अत्यन्त स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है—

> दातन्ह चीर फारि गरि आवहि। चोटी धरि धरि चोंट चलावहि॥
> तब कोउ आवत धाइ सहेली। पकरि छडाइ लेत अलबेली॥
> देषत लाल तमासा ठाढ़े। हंसि हंसि परम प्रेम अति बाढ़े॥
> लोटि लोटि रोइ रोइ तब बूटे। जनु पिंजर सै पंछी छूटे॥[४]

यहाँ बालकों का परस्पर दाँतों से काटना, चोटी पकड़-पकड़ के खींचना, पृथ्वी पर लोट-लोटकर रोना आदि अत्यन्त सामान्य क्रियाओं द्वारा बालक का सहज एवं जीवन्त चित्र अंकित किया गया है। बालक की क्रियाओं के चयन में कवि की प्रतिभा का परिचय मिलता है।

रेत में खेलते हुए बच्चों का अत्यन्त सहज चित्र रामादि भाइयों के माध्यम से कवि ने अत्यन्त ललित रूप में प्रस्तुत किया है। एक उदाहरण पठनीय है—

सीतल कोमल रेतन्ह महिया। लोटत फिरत उठत गहि बहिया॥
रेत बटोरि ऊंच करि डारैं। लातन्ह दौरि उछरितिहि मारैं॥
कबहुंक बालू के कोट बनावत। करि करि फौज चढ़ि चढ़ि धावत॥
कोउ हाथी कोउ घोरा होही। कोउ असवार पियादे सोही॥
कोउ हरिना कोउ चीता कोजै। कोउ बालक कूकर करि लीजै॥
कोउ चाकर कोउ ठाकुर मेलैं। या विधि लाल बाल करि खेलैं॥[५]

यहाँ रेत में खेलते हुए तथा हिरन, चीता, कुत्ता बनकर खेलते हुए बाल-समाज की प्रायः सभी सहज-स्वाभाविक क्रीडाओं का कविवर लालदास ने जीवन्त वर्णन उपस्थित किया है। कविवर लालदास के बाल-क्रीडा-वर्णनों की सहजता सूरदास की अभिनयात्मकता की भाँति ही आकर्षक एवं रोचक है। उपर्युक्त वर्णनों में अभिनयात्मकता की प्रचुरता हम देख सकते हैं। स्वभावोक्ति का यही प्राण है।

'कवितावली' में एक स्थल पर श्रीराम चन्द्रमा माँगते हुए हठ कर रहे हैं और माता के द्वारा जल में चन्द्र का प्रतिबिम्ब दिखाए जाने पर भयभीत हो जाते हैं। कभी वे अपने भाइयों के साथ क्रीडामग्न हो तालियाँ बजाने लगते है तो कभी किसी वस्तु की प्राप्ति तक कठोर हठ किए रहते हैं।[६]

'गीतावली' में भी इसी प्रकार एक प्रसंग मे राम के शैशव की सुकुमार झाँकी प्रस्तुत की गई है। माता के द्वारा चुटकी बजाना सुनकर बालक राम किलकारियाँ भरते हुए प्रसन्न मन से नृत्य विभोर हो जाते है किन्तु माता का हाथ छूटते ही वे गिर जाने का परिणाम जानकर भयभीत हो उठते हैं। गिर जाने पर वे घुटने टेककर उठते हैं और अपने छोटे भाइयों को तोतले बोलों से बुलाते हुए पूआ दिखाने लगते हैं।[७]

'रामचरित मानस' में भी एक प्रसंग में दशरथ बैठे भोजन कर रहे हैं। कौशल्या द्वारा बुलाये जाने पर राम दूर भाग जाते हैं। कुछ क्षणोपरान्त धूलि-धूसरित आकर दशरथ की गोद में बैठ जाते हैं। किन्तु बाल-चापल्यवश शीघ्र ही दही-भात से सना हुआ मुख लेकर किलकारियाँ भरते हुए दौड़ उठते हैं।[८]

तुलसी-काव्य में उपलब्ध इन कतिपय चित्रों के आधार पर हम मध्ययुगीन राम-काव्य में बाल-चेष्टागत स्वभावोक्ति का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत नहीं कर सकते।

वात्सल्यजन्य व्यापार में स्वभावोक्ति

भाव-प्रेरित क्रियाओं के अन्तर्गत माता-पिता का अपने बालक के प्रति प्रेम का विविध प्रकार से प्रदर्शन उल्लेखनीय है। राम-कथा में राम का बाल रूप उनके माता-पिता के वात्सल्य का आधार है। यद्यपि राम-कवियों की भक्तिस्नात दृष्टि ने प्रायः दशरथ एवं कौशल्या को राम के अनन्य भक्त के रूप में देखा है तथापि कहीं-कहीं दशरथ-कौशल्या को अपने अवतारी पुत्र की लौकिक क्रीडाओं में भ्रम उत्पन्न हो जाता है और वे जननी-जनक का सरल वात्सल्य अवतार पुरुष राम को भूलकर शिशुरूप राम पर लुटाने लगते हैं।[९] किन्तु राम-कवियों का यह वर्णन कल्पनाप्रसूत है सहज नहीं।

सम्पूर्ण मध्ययुगीन राम-काव्य में वात्सल्य-प्रेरित चेष्टामूलक स्वभावोक्ति के उदाहरण अत्यन्त विरल है। सीता के स्वयवर प्रसग में जनक की रानियाँ अपनी पुत्रियों को भेंट कर विदा करती हुई अत्यन्त सरल वात्सल्य का चित्र प्रस्तुत करती है यथा—

सादर सकल कुअंरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई॥
बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारी। कहहिं विरंचि रचीं कत नारी॥[10]

इसी प्रकार रावण अपने भाई के प्रति वात्सल्य-सम स्नेह की अनुभूति प्रकट करता हैं। युद्ध-भूमि में कुम्भकर्ण के घायल होकर गिरने पर रावण अत्यन्त द्रवित हो उठता है—

जब नृप बंधु सुन्यौ रन परयौ। धरी एक मुरछौ दुख करयौ॥
उठि उठि जोवत चारौं पास। ता गुन सुमिर लेत अति स्वास॥
× × ×
संभरि गात खिनकु सुस्ताइ। अति रिस गौं सामुहें ता धाइ॥[11]

परम योद्धा रावण समरांगण में युद्धरत अवस्था में भी द्रवित-हृदय होकर अपने सहोदर के प्रति सरल स्नेह की अभिव्यक्ति करता है। वस्तुतः रावण का यह व्यवहार उसके चरित्र को जीवन्त, विश्वसनीय एवं उत्कृष्ट रूप प्रदान करता है।

क्रियावर्णनमूलक स्वभावोक्ति पात्रों के चरित्र-विन्यास में सहजता एवं विश्वसनीयता का विधान करती है। उदाहरण के रूप में दशरथ का पुत्र-वात्सल्य से कातर हृदय देखा जा सकता है—

लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुं फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला विलोचन बारि प्रबाहू॥
सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदय मगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मानव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥[12]

दशरथ की चेष्टाएँ अपनी भाव-प्रेरित दशा में वात्सल्य-पूरित[13] पितृ हृदय का सहज और सजीव प्रतिबिम्ब हैं। पुत्र को हृदय से लगाना, मन ही मन श्रीराम के वन न जाने की कामना करना आदि दशरथ की समस्त चेष्टाएँ उनके निश्छल वात्सल्य से प्रेरित हैं।

मध्ययुगीन राम-कवियों में वात्सल्यजन्य क्रियाओं के सुन्दर चित्र महाकवि तुलसीदास के अतिरिक्त कविवर लालदास के ग्रन्थ में भी अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण हैं। कौशल्यादि रानियाँ अपने पुत्रों को उबटन करती हैं। उनके कोमल केशों की अपने ललित हाथों से सुन्दर रचना करती है। स्नान करा कर उनके नेत्रों में अंजन लगाती हैं। कभी 'कुलही' कभी 'पटुका' और कभी 'पागरी' बाँधती हैं। रंगादि से सुसज्जित खिलौनों से सभी शिशुओं को खिलाती हैं। 'थेई-थेई' कहकर बालक राम को नचाती हैं।[14] ऐसा ही एक रोचक वर्णन द्रष्टव्य है—

आरसी लै हाथ मुदरी दूरि राषि दिषावही॥
कौन देषी दौरि ल्यावत चतुरि चाल सिषावही॥
कबहुं कनिया कबहुं पलना कबहु सेज बिराजही॥
कबहुं लाल के सीस पग धरि तात मात हिय लावही॥[15]

बालकों में प्रतियोगिता-प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करके उनके क्रीड़ा-कौतुक का आनन्द लेने वाले माता-पिता का यहाँ अत्यन्त सहज चित्र प्रस्तुत किया गया है।

शृंगारजन्य चेष्टामूलक स्वभावोक्ति

रति चेष्टाओं का सहज स्वाभाविक वर्णन जहाँ पाठक के समक्ष प्रेमी-युगल का प्रणय-लिप्त चित्र उपस्थित कर देता है वहाँ हम रति-चेष्टाजन्य अथवा शृंगार-चेष्टामूलक स्वभावोक्ति कह सकते हैं। संस्कृत के 'प्रसन्नराघव' नाटक से गृहीत वाटिका-प्रसंग मानस में अपने विशिष्ट अलंकृत रूप में चित्रित हुआ है। अग्रदास आदि माधुर्य भाव के भक्तों ने तो मर्यादावादी राम-काव्यों की सूक्ष्म शृंगार चेतना को अत्यन्त व्यापक स्तर पर अंकित किया है। किन्तु राम-काव्यों में उपलब्ध शृंगार-चित्र प्रायः जनक-तनया सीता और रघुकुल गौरव श्रीराम के अलंकृत रूप-चित्र अधिक हैं, सामान्य प्रिय एवं प्रिया की रति-चेष्टाएँ कम।

वनवास-प्रसंग में ग्राम-वधुओं द्वारा सीता से परिचय पूछे जाने पर सीता का तनिक घूंघट निकालकर भ्रू-संचालन द्वारा पति और देवर के लिए भिन्न-भिन्न संकेत करना रति का अत्यन्त सामान्य प्रभाव कहा जा सकता है—

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी। पिय तन चितइ भौंह करि बांकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियं सयननि॥[16]

सीता की सरल एवं सहज चेष्टा द्वारा ग्राम-वधुओं को उनके सम्बन्धों का स्पष्ट पता चल जाता है। लज्जाशील बातों को मुख से स्पष्ट न कहकर अंग-संचालन से संकेत द्वारा अभिव्यक्त करना नारी जाति का सहज स्वभाव है।

महाकवि सूरदास ने भी इस प्रसंग को 'सखी री कौन तिहारी जात' आदि सरल शब्दों में प्रस्तुत किया है। किन्तु सहज चित्रण होने पर भी उसमें तुलसी की-सी मार्मिकता नहीं है।

वन-मार्ग में जाते हुए सीता-राम का उभयनिष्ठ प्रेम-चित्र केशव ने अतीव रम्य चेष्टाओं सहित प्रस्तुत किया है—

मग कौ श्रम श्रीपति दूरि करैं,
सिय के सुभ बाकल अंचल सौं।
श्रम तेउ हरैं तिनकौ कहि केशव,
चंचल चारु दृगंचल सौं॥[17]

सीता और राम का विश्रान्त होकर मार्ग में एक-दूसरे को प्रेम-पूर्वक देखते हुए श्रान्ति-क्लान्ति दूर करने का प्रयास करना, मार्ग में बैठे एक साधारण दम्पती का सहज चित्र प्रस्तुत कर देता है। यहाँ पाठक राम और सीता के दिव्य चरित्रों को भूलकर सामान्य पति-पत्नी के अनुराग-तडाग में तरंगायित हो उठता है।[18]

युद्ध-व्यापारमूलक स्वभावोक्ति

मानवीय व्यापारो के अन्तर्गत सामूहिक चेतना व्यक्त करने वाला एक महत्त्वपूर्ण व्यापार है—युद्ध व्यापार। यह व्यापार अत्यन्त व्यापक एवं सहज है। मानव की अधिकार-लिप्सा एवं क्रूर भावनाएँ आदि काल से ही युद्धों मे परिणत होती रही रही हैं। राम-कथा के माध्यम से मध्ययुगीन कवियों ने सत्य और असत्य का, राम एव राक्षसों के रूप में विराट् सघर्ष अभिव्यक्त किया है। राम-काव्यों मे व्यापक रूप से युद्ध-व्यापार के सहज स्वाभाविक चित्रांकन को देखकर ही डॉ० वचनदेव कुमार ने मानसगत क्रियामूलक स्वभावोक्ति को रण-सज्जा एव युद्ध व्यापार के अन्तर्गत समाहित कर लिया है।[१६] युद्ध को सभी व्यापारों मे सर्वाधिक महत्ता प्रदान करके डॉ० साहब ने इस तथ्य का समर्थन किया है कि राम-कथामूलक काव्यों मे अन्य मानवीय व्यापारों की अपेक्षा युद्ध कहीं अधिक व्यापक, विराट् एव प्रभावशाली रूप मे अकित हुआ है।

राम-काव्य मे विविध प्रसगो का जो आयोजन आर्ष कवियों ने किया है उनमें मुख्य लक्ष्य श्रीराम के धनुर्धारी एव दुष्ट-सहारक रूप का अकन रहा है। इसी कारण विवाह से पूर्व ही किशोर-वय राम अपने क्षत्रिय-योद्धा वेश मे विश्वामित्र मुनि की यज्ञ-रक्षा के लिए जाते है। यह यज्ञ-रक्षा का प्रसग ताड़का आदि राक्षसों के वध के रूप में श्रीराम के वीरत्व का प्रकाशक बन जाता है। स्वभावोक्ति अलंकार की दृष्टि से राम-काव्यों में युद्ध के निम्नलिखित प्रसग महत्त्वपूर्ण है—

(क) लका-दहन-प्रसग
(ख) सेतु-बधन-प्रसग
(ग) राम-रावण की सेनाओं का प्रयाण-एव रण-सज्जा
(घ) युद्ध-भूमि में सेनाओं का घात-प्रतिघात।

लंका-दहन-प्रसंग

राम-काव्यो में लंका-दहन-प्रसग के दो पक्ष अत्यन्त सहज एव सजीव रूप में अभिव्यक्त किए गए है – (अ) हनुमान का बदी बनाकर पूँछ में आग लगाया जाना, (आ) जलती हुई लका में आग की चपेट में आए लकाबासियों की प्रतिक्रिया। हमारे आलोच्य राम-काव्यों में लंका-दहन का प्रसग अत्यन्त सजीवता के साथ अंकित किया गया है। इसी प्रसंग के प्रारम्भ में हनुमान की पूँछ में आग लगने का प्रसग भी सुर्गभित है। वस्तुतः हनुमान राम के पक्ष की ओर से रावण-पक्ष में दूत बनकर जाते हैं तथा वहाँ उत्पात मचाने पर रावण क्रुद्ध होकर उन्हें बन्दी बना लेता है। इसके पश्चात् दूत को अवध्य जानकर रावण उनकी पूँछ में आग लगाने की आज्ञा देता है। हनुमान के बंदी बनाए जाने पर लंकावासियों की प्रतिक्रिया को राम-काव्यों में अतीव सहजता से अंकित किया गया है, उदाहरणार्थ—

दौरि दौरि कपि रावर आवैं। बार बार प्रति धामनि धावैं॥
देखि देखि तिनकौ दै तारी। भांति भांति बिहंसैं पुरनारी॥[२०]

शत्रु-पक्ष के किसी सदस्य का बन्दी बनना रावण की प्रजा के मनोरंजन का

विषय बनना अत्यन्त सहज प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति है। ज्यों ही हनुमान ने लका में प्रवेश किया त्यों ही नगर की सभी स्त्रियाँ भयभीत हो उठीं। लका की स्त्रियों की हनुमान के प्रति प्रतिक्रिया का एक स्वाभाविक चित्र कवि विष्णुदास के शब्दो मे प्रस्तुत है—

नग्र मांझ कौलाहल भयौ। तबहि हनू लंका महं गयौ॥
सब कोइ देखै दौरी आवैं। इत उत कै तह नैन चलावैं॥
महल झरोखन लगीं अवासा। देखि सुंदरी लैहि उसासा॥
एकै कह बांधौ है माई। नातर लंका लेतौ खाई॥[21]

स्त्रियों का दौड-दौड़कर आना, नेत्रों और भ्रूसंचालन द्वारा भय व्यक्त करना तथा झरोखों से झाँकते हुए भय से निश्वास छोड़ते हुए बानर हनुमान को शीघ्र बंदी बनाने की इच्छा व्यक्त करना आदि भयातुर स्त्रियों का व्यापक व्यापार अत्यन्त सहज चित्र प्रस्तुत करता है।

बदी हनुमान के प्रति लकावासियों के व्यवहार का अत्यन्त सजीव चित्र महा-कवि तुलसी के शब्दों में द्रष्टव्य है -

कौतुक कहं आए पुरवासी। मारहिं चरन करहिं बहु हांसी॥
बाजहिं ढोल देहि सब तारि। नगर फेरि पुनि पूंछ पजारी॥[22]

शत्रु-पक्ष के किसी सदस्य को बदी बनाने पर उसका विविध प्रकार से उपहास किया जाता है और उसे अनेक प्रकार की यन्त्रणाएँ दी जाती है। हनुमान के प्रति लकावासियों का उपर्युक्त व्यवहार इसी मानवीय सहज स्वभाव की यथार्थ अभिव्यक्ति होने के कारण साधारण क्रियाओं मे निहित चमत्कार को व्यक्त करता है।

हनुमान की पूँछ मे आग लगाते हुए लंका के जन-समूह का कवि विष्णुदास ने अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत किया है यथा—

कोऊ धाए कपरा लाए कोऊ रुई कपासु।
कोऊ सन सूतौ ले पहुंचे बेढन लागे तासु॥
बिच बिच मैननि लागे दैननि बिच बिच सींचहिं तेल।
तिहिं पूंछ बढ़ाई भरी न जाई राखस लागे खेल।
बालक वृद्ध तरुन मिलि नारीं लै लै आवहिं तेल॥[23]

रावण ने जब हनुमान की पूँछ मे आग लगाने का आदेश दिया तब लका की जनता को एक नवीन कौतुक का आभास मिला। युद्ध के अवसर पर शत्रु-पक्ष के बन्दी को जब सार्वजनिक रूप से दण्ड दिया जाता है तब जनता के लिए अत्यन्त कुतूहल की सामग्री उपस्थित होती है। जनता की इसी मनोरजक प्रवृत्ति को राम-कवियों ने लका-निवासियों के हनुमान के प्रति किये गए दुर्व्यवहार के रूप में चित्रित किया है। ये भाव-प्रेरित सामूहिक व्यापार अपने सहज रूप में स्वभावोक्ति के माध्यम से एक मनोहारी चित्र प्रस्तुत करते हैं।

लंका की विशाल और उत्तुंग अट्टालिकाओं पर कूद-कूदकर हनुमान उनमें आग

लगा रहे है। हनुमान के इस विचित्र व्यापार का अतीव मनोरम चित्र महाकवि तुलसी के शब्दो में द्रष्टव्य है—

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥
तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहीं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥[२४]

हनुमान का शरीर अत्यन्त विशाल है किन्तु बहुत हल्के होने के कारण वे एक भवन से दूसरे भवन पर दौडकर चढ जाते है। सारा लंका नगर जल रहा है, लोग बेहाल हो रहे हैं। भयंकर आग की लपटें निकल रही हैं। भय-त्रस्त लका निवासी कह रहे हैं कि हनुमान कोई साधारण वानर नहीं, यह कोई देवता वानर रूप में हम पर कोप कर रहे हैं। सारे नगर में हा माता, हा पिता, हा पुत्र, हमारी इस अवसर पर कौन रक्षा करेगा, इस प्रकार की दुहाई मची हुई है।

लका-दहन के पूर्व-पक्ष के रूप में हनुमान के प्रति किया गया दुर्व्यवहार वह मूल कारण है जिसका परिणाम हम जलते हुए विशाल भवनों के बीच त्राहि-त्राहि करते लंका निवासियो के रूप में देखते हैं।

अग्नि-ग्रस्त लंका-निवासियों की प्रतिक्रिया

आग की चपेट मे आए हुए किन्ही सामान्य मनुष्यों की भाँति ही लका की जनता की व्याकुलता का अत्यन्त जीवन्त चित्रण राम-काव्यों मे विशेषत: कवितावली मे उपलब्ध होता है। विष्णुदास, केशव और महाकवि तुलसीदास आदि के राम-काव्यों में लका-दहन का प्रसग अत्यन्त सजीवता के साथ अकित किया गया है। केशव और विष्णुदास की अपेक्षा तुलसी ने इस प्रसंग के चित्रण में अत्यन्त सहजता और स्वाभाविकता का समावेश किया है। जहाँ केशव आदि अन्य कवियों की दृष्टि जलती हुई लका नगरी पर अथवा अपने शृगार-प्रसाधनों को त्यागकर भागती हुई रावण की रानियों पर ही केन्द्रित रहती है[२५] वहाँ तुलसी की लेखनी ने जलते हुए लका नगर के बीच घिरे हुए विभीषिका-ग्रस्त जन-साधारण का आतकित चरित्र-चित्र सहज रूप में प्रस्तुत किया है। जलते हुए नगर में व्याकुल विपद-ग्रस्त लंका-निवासियों के विकलताजन्य व्यापार का एक मार्मिक चित्र द्रष्टव्य है—

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहां तातु मात, भ्रात भगिनि भामिनी भाभी,
छोठे ढोटे छोहरा, अभागे भोरे भागि रे।
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष वृषभ छोरो।[२६]

यहाँ लोगों की चीख-पुकार, जलते हुए घरों से दौड़-दौड़कर आना, बेसुध होकर माता, पिता आदि सभी सम्बन्धियों को भूलकर केवल अपने प्राण बचाने का प्रयत्न करना,

हाथी, घोड़ा, बैल, गाय सब प्रकार के धन का त्याग कर सोते हुए लोगों को जगाने आदि के रूप में लंका की जनता का वैविध्यमूलक व्यापार उनकी घबराहट, अस्तव्यस्तता, प्राण संकट के आतंक आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है।

नगर में फैलती हुई आग से जहाँ लका-निवासियों में घबराहट उत्पन्न हो जाती है, वहाँ वे सर्वस्व त्यागकर अपनी प्राण-रक्षा के प्रयत्न मे तत्पर हो जाते हैं। यह चित्रमय वर्णन आग-ग्रस्त साधारण जन-समूह की व्याकुलता का जीवन्त चित्र उपस्थित करता है, उदाहरणतः—

लागि लागि आगि, भागि भागि चले जहां-तहां,
धीय को न माय बाप पूत न संभारहीं।
छूटे बार बसन उघारे, धूम-धुंध-अंध,
कहैं बारे बूढ़े बारि बारि बार बारहीं।
हय हिहिनात भागे जात घहरात गज,
भारी भीर ठेलि-पेलि रौंदि-खौंदि डारहीं।
नाम लै बिलात बिललात अकुलात अति,
तात तात! तौंसियत झौंसियत झारहीं॥[२२]

यहाँ आग को देखकर भागते हुए लोगों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। भारी भीड़ मार्ग को रौंदती-खूंदती हुई भागी जा रही है। हाथी और घोड़े हिनहिनाते, घोर करते दौड़े जा रहे है। यहाँ प्रतिक्रियात्मक समूहगत व्यापार का सजीव चित्रांकन होने के कारण व्यापारमूलक स्वभावोक्ति अलकार माना जाएगा।

कवि विष्णुदास ने इस संदर्भ मे विचित्र व्यापार का चित्रांकन किया है, यथा—

बिच बिच धूम बिच बिच झंक। बिच बिच कारी दीसती लंक॥
उडै झोलु चमकहि अंगार। उठहिं सादु खरहरहिं पगार॥
हय हींसत गज करहिं चिकार। राखस बोलैं जै जैकार॥[२८]

विष्णुदास कवि के वर्णन मे हाथियों का चिंघाड़ना, घोड़ों का हिनहिनाना आदि आग की सहज प्रतिक्रिया का यथार्थ वर्णन है किन्तु राक्षसों की जलती हुई लंका नगरी को देखकर जै-जैकार करना स्वाभाविक नहीं है। राक्षसों की इस प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति के पीछे दो कारण हो सकते हैं—(१) कवि का राम-भक्त हृदय राक्षसों के नाश में जैकार कर रहा है। (२) अथवा कवि ने छन्द के बन्धन को देखते हुए चिकार और जै-जैकार का तुक-निर्वाह किया है। अन्ततोगत्वा कवि का यह वर्णन तुलसी के सुन्दर स्वाभाविक चित्रों की प्रेरणा समझा जा सकता है क्योंकि ये तुलसी से पूर्ववर्ती कवि रहे हैं।

कवि विष्णुदास के पश्चात् तुलसी की कवितावली में लंका-दहन के वर्णन में एक वैशिष्ट्य है—समूहगत प्रभाव मे भी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का भिन्न-भिन्न रूप से चित्रांकन, यथा—

एक करै धौज, एक कहै काढौ सौंज,
एक औंजि पानी पी कै कहै 'बनत न आवनौ।'

एक परे गाढ़ें, एक डाढ़त ही काढ़े, एक
देखते हैं ठाढ़े, कहैं पावक भयावनो।
तुलसी कहत एक नीके हाथ लाए कपि
अजहूं न छाड़े बाल गाल को बजावनो।
धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हो रावरे या
औरै आगि लागि न बुझावै सिंधु सावनो।।[२९]

यहाँ समूहगत व्याकुलता और चिन्ता को व्यक्तिनिष्ठ भिन्न-भिन्न स्तरो पर चित्रित किया गया है। समूहगत प्रतिक्रिया का यह व्यक्तिनिष्ठ वैविध्य वस्तुतः यथार्थ होता है। आग से घबराए हुए लका-निवासियों का उपर्युक्त चित्र —जहाँ कोई आग को बुझाने का प्रयत्न कर रहा है, कोई जलता हुआ बाहर निकाला जा रहा है, कोई खड़ा हुआ आग का दृश्य देखकर कहता है "बड़ी भयकर आगहै", एक कहता है कि इस वानर ने तो बहुत कष्ट दिया है फिर भी अभिमानी मेघनाद घमण्ड नहीं छोड़ता, एक कह रहा है कि तुम दौड़कर आग को बुझाओ, तुम पागल तो नही हो, यह साधारण नहीं बहुत भयंकर आग है जिसे समुद्र या सावन भी नहीं बुझा सकते—उस यथार्थ स्थिति को सहज रूप में व्यक्त करता है जो किसी अग्नि-काण्ड की सामूहिक प्रतिक्रिया हुआ करती है। तुलसी की दृष्टि जहाँ दसों दिशाओं में फैलती हुई आग की लपेट में आए हुए धुएँ, आग के ताप और प्यास से व्याकुल जन-समूह पर केन्द्रित है[३०] वहाँ कवि केशवदास इसका अत्यन्त संक्षिप्त-सा संकेत देकर आगे बढ़ जाते है, उदाहरणार्थ—

पावक में उचटैं बहुधा मनि रानी रटैं पानी पानी दुखी है।
कचन कौ पधिल्यो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी है।[३१]

यहाँ केशव की दृष्टि-केवल जलती हुई स्वर्ण-नगरी लंका में उचटती विविध मणियों और अग्नि की उत्तप्तता से पिपासित रावण के रनिवास पर ही केन्द्रित है। लंका में रहने वाली सामान्य जनता पर मानो इस अग्नि-काण्ड का कुछ प्रभाव ही न हुआ हो अथवा कवि की दृष्टि मे वह वर्णन के योग्य ही नहीं है जबकि इस सम्पूर्ण प्रसंग का प्राण-तत्त्व लंका के निवासियों की आग के प्रति प्रतिक्रिया ही है। सारांशतः प्रस्तुत प्रसंग के वर्णन में विविध व्यापारों के चमत्कारमूलक चित्र महाकवि तुलसी ने अत्यन्त सहज रूप में स्वभावोक्ति अलंकार के परिवेश में प्रस्तुत किए हैं।

(आ) सेतु-बन्धन प्रसंग

लंका तक पहुँचने के लिए श्री राम को समुद्र पार करना पड़ा था। आततायी रावण के बन्धन से अपनी प्रिया पत्नी को छुड़ाने के लिए युद्ध करना राम के लिए अनिवार्य था। युद्ध के प्रसंग में ही श्री राम ने समुद्र पर सेतु-बन्धन किया था इसी कारण हम इस प्रसंग की चर्चा युद्ध-व्यापार के शीर्षक के अन्तर्गत कर रहे हैं।

हिन्दी के विविध राम-काव्यों में उपर्युक्त प्रसंग अनेक रूपों में वर्णित हुआ है[३२]

किन्तु जहाँ तक स्वभावोक्ति अलंकार के व्यापारजन्य चमत्कार का प्रश्न है केवल सेनापति या केशव ने एक-आध स्थल पर सुन्दर क्रिया-चित्र प्रस्तुत किए है। राम के बाणों के प्रहार से उद्वेलित समुद्र का एक प्रतिक्रियात्मक चित्र द्रष्टव्य है—

को सकै बरनि बारि रासि की बरनि नम,
भैं गयी झरनि, गयी तरनि समाइ कै॥
जेई जल-जीव बड़वानल के त्रास भाजि,
एकत रहे है सिंधु सोरे नीर ग्राइ कै।
तेई बान-पाउक तैं भाजि कै तुसार जानि,
धाइ कै परे हैं बड़वानल में जाइ कै॥[33]

यहाँ समुद्र में रहने वाले जीवों का राम के बाणों की प्रतिक्रियास्वरूप भागकर बडवानल में छिप जाने का सहज स्वाभाविक वर्णन जलस्थ जीवों के भयातुर व्यापार का सामान्य चित्र उपस्थित करता है।

राम-कथा के प्रसंगानुसार राम ने समुद्र से मार्ग माँगा था और समुद्र द्वारा उत्तर न पाकर राम ने भीषण क्रोध करके समुद्र में बाण मारे थे जिससे भयभीत होकर समुद्र उनके सम्मुख उपस्थित हुआ था। अलौकिकता मे परे सहज स्वाभाविकता की दृष्टि से समुद्र पार न पहुँच जाने पर राम का क्रोध अभिव्यक्त हुआ था। कुछ क्षणोपरान्त क्रोध शान्त कर उन्होंने वानरों की सहायता से समुद्र पर सेतु-बन्धन किया था। अस्तु इस प्रसंग की लौकिकता—अलौकिकता को छोड़कर इसके सहज स्वाभाविक सौन्दर्य का विश्लेषण ही हमारे लिए ग्राह्य है। राम के अग्नि-शरों की प्रतिक्रिया स्वरूप समुद्र की सहज हलचल का वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से केवल सेनापति ने ही किया है। इस सन्दर्भ मे एक और उदाहरण द्रष्टव्य है—

सोचत सकल अप-अपने बिकल जिय,
लागत प्रबल बान राम भुवपाल के।
परी खलमति, जलनिधि जल होत थल,
कांपे हलचल खल दानव पताल के।[34]

यहाँ जलजीवों का व्याकुल होकर सोचना और आत्म-रक्षा के लिए इधर उधर भागना आदि व्यापार समुद्र की ऊहापोहात्मक स्थिति का स्पष्ट चित्र अंकित करते हैं।

तुलसी आदि कवियों का यह वर्णन वस्तु-वर्णन के रूप मे सामान्य है, स्वभावोक्ति के वैशिष्ट्य से रहित नीतिमय हो गया है।[35]

केशव ने सेतु-बन्धन के व्यापार का अत्यन्त सक्षिप्त किन्तु सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है यथा—

जहं तहं वानर सिंधु मैं गिरिगन डारत आनि।
शब्द रह्यौ भरिपूरि महि, रावन कौं दुखदानि॥[36]

यहाँ वानरों के द्वारा समुद्र में बड़े-बड़े पर्वत-खण्डों के डाले जाने पर सहज रूप से उत्पन्न

ध्वनि का उल्लेख करके कवि ने चित्र को पूर्णता प्रदान की है। वस्तुतः यहाँ दो पक्तियों में ही चित्र की पूर्णता का जो चमत्कार है वह पर्वतो के जल मे गिरने से होने वाले भीषण शब्द की चर्चा में निहित है। इसी प्रकार कवि सेनापति ने भी दो पक्तियों में सेतु-बन्धन के व्यापार का चित्र प्रस्तुत किया है, यथा—

पेड़ि तै उचारि बारि रासि हू के बारि बीच,
पारि पारि पब्बय पताल अटियत है।[३७]

यहाँ पर्वतों को उखाड़ कर पाताल-सदृश गम्भीर और विशाल समुद्र को पाटने की क्रिया का अत्यन्त सहज वर्णन किया गया है। महाकवि तुलसी ने भी इस प्रसंग का वर्णन चलता सा किया है, उदाहरणार्थ—

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं॥
देखि सेतु अति सुन्दर रचना। बिहसि कृपानिधि बोले बचना॥[३८]

यहाँ विषय की व्यापारजन्य सहजता का स्पर्श न करके कवि ने मात्र सूचना के रूप में प्रसग को लिया है।

सक्षेप में राम-कवियों ने सेतु-बन्धन प्रसंग के व्यापार के स्वभावोक्तिमूलक चित्र अति विरलता के साथ प्रस्तुत किए हैं।

(इ) सेनाप्रयाण एवं रण-सज्जा

युद्ध-व्यापार के रण-सज्जा एव सैन्य-प्रयाण, दोनों अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अग हैं। राम-कवियों ने युद्ध के सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करने के लिए उपर्युक्त दोनों तत्त्वों को जीवन्त रूप में चित्रित किया है। राम-काव्यों मे मुख्य रूप से राम-रावण का युद्ध विस्तारपूर्वक वर्णित हुआ है। किन्तु इसके अतिरिक्त हनुमान-अगद आदि योद्धाओं के प्रतिनिधित्व में राम-सेना का शत्रु-पक्ष से सघर्ष करने के लिए प्रयाण करना तथा राक्षस-सेना की रण-सज्जा एव युद्ध-कौशल के वर्णन भी सजीव, सचित्र एव स्वाभाविक कहे जाएँगे।

वाल्मीकि-रामायण आदि सस्कृत के उपजीव्य ग्रन्थों से प्रेरणा ग्रहण करके हिन्दी में मध्ययुग में जो राम-काव्य लिखे गए उनके वर्णन संस्कृत ग्रन्थों के मूल विषय की दृष्टि से ऋणी हैं। इसी कारण सस्कृत ग्रन्थों की युद्ध-परम्पराओं का ही हिन्दी राम-काव्यों में पूर्णतः पालन हुआ है। पन्द्रहवीं शती के मेधावी कवि विष्णुदास ने वाल्मीकि-रामायण के आधार पर अपनी राम-कथा मे जो रण-सज्जा, सेना-प्रयाण आदि के वर्णन प्रस्तुत किए हैं उनमें स्वभावोक्ति अलकार का सन्निवेश हो जाने से यथार्थ चित्रमयता का गुण प्रदीप्त हो उठा है, उदाहरणार्थ कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

कर धनुहर असिवर फरिस कुंत सूल सुकुमार।
लंका महं खलभल भयौ किंकर लगे पुकार॥
× × ×
साजैं हथ्यारैं मिलि पुकारैं, नगर मौं कहराउ।
दिसि विदिसि पाटौं और घाटी सहर अति भरियाउ।
तहं छार उड़ियौ सूरु लुकयो उपजि धुं-धुकार।[३९]

यहाँ युद्ध के आयुधों का उल्लेख करके कवि ने सैन्य-प्रयाण के व्यापार का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। सैन्य-दल के प्रमाण व्यक्त करके कवि ने क्रिया-प्रतिक्रियात्मक व्यापार का पूर्ण चित्र अत्यन्त साधारण शब्दो में अकित किया है। नगर में कुहराम मच जाना, चारों ओर चीख-पुकार मचना, चारों दिशाओं में शत्रु सेना का चढ़ आना और सेनाओं के पग-तल से उठती धूलि से सूर्य का आवृत हो जाना आदि सम्पूर्ण चित्र एक ओर युद्ध-क्षेत्र के प्रभाव की तीव्र व्यजना करता है तो दूसरी ओर सूक्ष्म-व्यापार चित्रण होने के कारण स्वभावोक्ति के सहज चमत्कार का प्रेषण करता है।

महाकवि सूरदास का सेना-प्रयाण वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त और सूचनात्मक है उदाहरणार्थ—

कटक अंगनित जुरयौ लंक खरभर परयौ,
सूर को तेज घर धूर ढांप्यौ।[४०]

कवि ने केवल सैन्य-प्रयाण के प्रभाव मात्र की व्यंजना की है, उसके विस्तृत व्यापार की उपेक्षा कर दी है। वस्तुत: सूर ने रामचरित का आख्यान अत्यन्त सक्षेप में गिनती के पदों में प्रस्तुत किया है। अस्तु सम्पूर्ण वर्णन-सामग्री के सक्षिप्त कलेवर के अनुरूप उपर्युक्त वर्णन भी सांकेतिक होने पर भी अपनी सहज, यथार्थ अभिव्यक्ति के कारण स्वभावोक्ति के क्षेत्र में आ जाता है।

महाकवि तुलसीदास ने युद्ध के उत्तेजनात्मक वातावरण को ओजपूर्ण शैली में व्यक्त किया है। उनका सैन्य-प्रयाण वर्णन युद्ध के अदम्य उत्साह एव वीरत्व के ओज से संवलित होकर अधिक पूर्ण हो गया है। यद्यपि तुलसी ने राम को परमेश्वर के रूप में देखते हुए उनके अतीव उत्साह से देवताओं के हर्षित होने का वर्णन किया है तथापि युद्ध की परिस्थिति, रण-सज्जा, सैन्य-वर्णन में यथार्थ, सहज एवं स्वाभाविकता का पूर्ण समावेश किया है, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सम गंधर्व सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं॥[४१]

महाकवि तुलसी के उपर्युक्त राम सैन्य-वर्णन मे सेना का व्यापारमूलक चित्र उपस्थित किया है। हाथियों की चिंघाड़, सागर की उत्तेजना, गन्धर्व देवादि का दुख-मुक्त हर्ष, विकट वानर योद्धाओं का कट-कटाकर दौड़ना आदि सभी व्यापार मिलकर सेना का एक सम्पूर्ण व्यापार-चित्र प्रस्तुत कर देते है।

हमारी विवेच्य अवधि (सन् १४५०-१६५० ई०) के अन्तिम कवि नरहरि बारहट के सैन्य-वर्णन पर तुलसी का प्रभाव है, किन्तु उन्होंने तुलसी की भाँति संक्षिप्त वर्णन पद्धति का अनुसरण नही किया है। यत्र-तत्र युद्ध-प्रसंगों का कवि ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। केवल सेना-समेत भरत के श्रीराम से मिलने आने के प्रसंग को ही कवि 'नरहर' संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं। सेना में असंख्य हाथी, घोड़े और पदाति चल रहे हैं।

नगाड़ों का घोर निनाद हो रहा है। सम्पूर्ण आकाश धूलि से आच्छन्न हो रहा है। सहस्रों योद्धा रथारूढ हैं। धनुर्धारी अतीव सावधान हैं। सैन्य-प्रयाण के भीषण कोलाहल से कमठ और कोल कांप उठे है। सुकवि 'नरहर' के शब्दों में—

धसमसतिधरनिगिरी शृंगठट्ठि कमठकोलआकंपीय।
सैन्यासुभरतचतुरंगसजिसमुखचित्रगिरीसंचरीय॥
शृंग वैरसीमासघन। बनसरितविसाल।
धुरतनिसानदिसानघन। मिलिनिहाउगिरिमाल॥[४२]

कवि के उपर्युक्त वर्णन पर महाकवि तुलसी के वर्णन का स्पष्ट प्रभाव तो है ही, साथ ही कवि केशव के वर्णन से भी बहुत कुछ सादृश्य यहाँ उपस्थित हो गया है। महाकवि केशव ने भी भरत की सेना में हाथी, घोड़ों और नगाड़ों के समवेत घोर का वर्णन सक्षिप्त शब्दों में प्रस्तुत किया है उदाहरणार्थ—

देखहु भरत चमू सजि आये।
जानि अबल हमकौं उठि धाये॥
हींसत हय बहु बारन गाजैं।
जहं तहं दीरघ दुंदुभि बाजै॥[४३]

केशव ने भी उपर्युक्त वर्णन मे संक्षिप्त शैली को अपनाया है। कहीं-कही केशव ने अत्यन्त सरल शब्दावली में सेना के अत्यन्त सुन्दर व्यापार-चित्र अकित किए हैं। सेना-प्रयाण का एक सुन्दर व्यापार-चित्र यहाँ केशव की शब्दावली मे प्रस्तुत है—

उठिकै धर धारि अकास चली।
बहु चंचल बाजि खुरीन दली
भुव हालति जानि अकास हिये
जनु थंमन ठौरनि ठौर किये॥[४४]

सैन्य-प्रयाण के उपर्युक्त चित्र मे केवल पृथ्वी की प्रतिक्रिया के माध्यम से कवि ने सम्पूर्ण सेना के व्यापार का चित्र अंकित किया है। सेना के हाथी घोड़ों से पददलित पृथ्वी मानो हिल रही है। चंचल घोड़ों की कुलांचों से आकाश को अपने में समेटती हुई पृथ्वी पर स्थान-स्थान पर मानो खम्भ गड़े हुए हैं। युद्ध के तीव्रतर व्यापार की व्यंजना के लिए कवि ने आकाश और पृथ्वी के मेल की व्यजना पर अत्यन्त स्वाभाविक सैन्य-व्यापार-चित्र उपस्थित किया है। युद्ध-भूमि मे व्याप्त ध्वन्यात्मक वातावरण का उल्लेख किए बिना भी कवि ने अत्यन्त सरलता से सेना का पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

अपने अक्षय कीर्ति-मेरु ग्रन्थ 'रामचरित मानस' में महाकवि तुलसी राक्षस-सेना के प्रयाण का अत्यन्त व्यापक चित्र उपस्थित करते हैं, यथा—

चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहुधारा॥
विविध भाँति बाहन रथ नाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राविट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन विरदंत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया॥[४५]

उपर्युक्त चित्र में राक्षस-सेना के विविध वाहनों, रथों, पताकाओं, ध्वजों, हाथियों एवं अन्त मे युद्ध-कुशल योद्धाओं और माया-प्रवीण राक्षसो की चर्चा करके कवि ने प्रस्थान करती हुई रावण की चतुरंगिनी सेना का मूर्त्त चित्र उपस्थित कर दिया है।

युद्ध-भूमि की ओर प्रस्थान करती हुई श्री राम की वानर-सेना का कवि केशव ने अत्यन्त सूक्ष्म, सुन्दर, सरल चित्र उपस्थित किया है, उदाहरणार्थ—

सूखे सब सरवर सरिता सकल जल
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।[४६]

रावण की सेना में जहाँ हाथी, घोड़े, रथों का वर्णन है वहाँ श्री राम की सेना का अत्यन्त संक्षिप्त चित्र है। वस्तुतः वनवासी राम की सेना में वानर-योद्धाओं के अतिरिक्त और था भी क्या। कवि ने चतुरता के साथ वानर-सेना की चाल का वर्णन कर सम्पूर्ण सेना का वर्णन कर दिया है। वानरों के उचक-उचन कर चलने से पृथ्वी मंच की भाँति कपाय-मान हो रही है।

रावण सेना का वर्णन करते हुए कवि केशव ने नगाड़ों, हाथियों, घोड़ों आदि का वर्णन किया है। केशव के शब्दों में रावण सेना का एक चित्र द्रष्टव्य है—

दीह दुंदुभि अपार भाँति-भाँति बाजहीं।
युद्ध भूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दंति राजहीं॥[४७]

यहाँ संक्षेप में कवि ने सेना के वातावरण, व्यापार एवं उपकरणों का समवेत चित्र उपस्थित कर दिया है।

संक्षेपतः सभी राम-काव्यों में युद्ध-वर्णनों के अन्तर्गत सैन्य-प्रयाण एवं रण-सज्जा को महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के रूप में ग्रहण किया है। स्वभावोक्ति अलंकार से विभूषित वर्णन यद्यपि विरल हैं तथापि युद्ध का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त हैं।

(ई) सेनाओं का घात-प्रतिघात (संघर्ष)

युद्ध-भूमि में दो सेनाओं का परस्पर आक्रमण और आत्मरक्षा संघर्ष कहलाता है। यह संघर्ष ही वस्तुतः युद्धरत सेनाओं का मुख्य व्यापार होता है। इस व्यापार का जहाँ जीवन्त, यथावत्, सहज वर्णन प्रस्तुत किया जाए वहाँ युद्ध व्यापारमूलक स्वभावोक्ति अलंकार होता है। विवेच्य राम-काव्यों में राम और रावण के मध्य एक भीषण युद्ध का विस्तृत चित्रण किया गया है।

स्वभावोक्ति अलंकार के आश्रय में युद्ध-व्यापार के आरोह-अवरोहों का यथातथ्य वर्णन राम-काव्यों में विशेषतः तुलसी एवं विष्णुदास के काव्यों में उल्लेखनीय रूप में उपलब्ध होता है। राम की सेना के वानर योद्धाओं की रण-कुशलता का एक जीवित

चित्र द्रष्टव्य है—

कोपे बंदर रीछ लंगूर। हाथन तरुवर लिए समूर ।।
इक मारें अरु दोलन खांह। राम काज मरिबे न डरांह ।।
जो सामुहैं परै रथ आइ। बंदर बीसक लागें धाई ।।
टूक टूक करि डारहिं टोरि। तेई आयुध करै बहोरि ।।[४८]

कुपित वानर सेना ने हाथों मे समूल वृक्षो को आयुध के रूप मे धारण कर लिया है। यदि सामने कोई शत्रु-पक्ष का रथ आ जाता है तो बीसियों वानर दौड़कर उसे पकड़ लेते हैं। फिर शत्रु-पक्ष के इस रथ को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। तदनन्तर रथ के इन्हीं अवशेषो को वे अस्त्र-शस्त्र के रूप में प्रयोग करने लगते हैं। यहाँ वानरों का दौड़ना, समूल वृक्षों द्वारा शत्रुओ पर प्रहार करना, आदि युद्ध की सामान्य क्रियाओं के साथ ही रण-कौशल के रूप मे शत्रु के रथों को तोड़कर हथियार बना लेने की विशेष क्रिया के वर्णन द्वारा कवि ने युद्ध के द्रुत व्यापार का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

महाकवि तुलसीदास के वानर भट भी इसी प्रकार का उत्साहपूर्ण युद्ध प्रस्तुत करते है। कोई तो शत्रु-पक्ष के किसी सैनिक से भिड़कर उसे पछाड़ देता है तो कोई किसी को मसल कर पटक देता है। इस प्रकार ये वानर योद्धा मारते है, काटते है और पकड़-पकड कर शत्रुओं को पछाड़ते है। शत्रुओं के शीश तोड़कर उन्ही से अस्त्र रूप में शत्रुओं पर प्रहार कर रहे हैं। कोई तो शत्रु का पेट चीरते है, भुजा उखाड़ देते हैं, कोई पैर पकड़ कर योद्धाओं को पृथ्वी पर पटक देते हैं। इस सामूहिक व्यापार का एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है—

एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं ।।
मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरी सीसन्ह सन मारहिं ।।
उदर विदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं ।।[४९]

महाकवि तुलसीदास ने वानर-सेना के इसी व्यापार को और अधिक उद्दीपक शैली में प्रस्तुत करने के लिए परुष ध्वनियों का संयोजन करके यत्र-तत्र छन्द का आश्रय लिया है, उदाहरणार्थ एक छन्द अवलोकनीय है—

क्रुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं ।।
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहिं छल छीजहीं ।।[५०]

छन्द-शैली में विस्तृत वर्णन का पर्याप्त अवसर रहता है। अतः महाकवि तुलसीदास ने युद्ध के सहज स्वाभाविक घात-प्रतिघात का विस्तृत वर्णन करने के लिए छन्द का ही आश्रय ग्रहण किया है।

राम की वानर-सेना के सामूहिक उत्साहमूलक व्यापार के कवि विष्णुदास ने अत्यन्त प्रभावशाली चित्र अंकित किए हैं। वानर योद्धा उत्साह का घोष करते हुए

दौड़कर हाथियों के दाँत पकड लेते हैं। क्षणमात्र में वे हाथियों के दाँत उखाड लेते हैं और उन पर बैठे हुए महाकाय योद्धाओं को पकड़कर मार डालते हैं, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

किल किलाइ धावहिं भयमंत। धाइ गहैं हाथिन के दंत ।।
खिनकु मांहि ते लेंइ उपारि। जोधा मंगल डारहिं मारि ।।
असवारहिं भेंटहिं रन मांहि। एकनि बहुत खैंचि लै जाहिं ।।[५१]

समर भूमि मे युद्धरत दो सेनाओं के परस्पर सघर्ष मे कभी एक पक्ष भारी रहता है तो कभी दूसरा। युद्ध की यह ऊहापोहात्मक स्थिति जय-पराजय के निर्णय-काल तक चलती रहती है। राम-कवियों ने युद्ध-भूमि के इस वस्तुगत सत्य को पहचान कर ही अपने काव्यों में यथार्थ का समावेश किया है। राक्षसों के प्रहार से कभी वानर व्याकुल होते हैं तो कभी वानर-सेना के त्रासक प्रहारों मे राक्षस-सेना छिन्न-भिन्न हो जाती है। राक्षसों के भीषण प्रहारों से व्याकुल आत्म-रक्षा के लिए इधर-उधर छिपते वानरों की स्थिति का एक चित्र देखिए—

एक भागि गिरि कंदर दुरे। एक झांपि सागर महं परे ।।
एकति उतरे सागर पार। बहुतक सरन भये रघुवार ।।[५२]

प्रहारों से व्याकुल वानर-सेना में भगदड मची हुई है। कोई दौडकर पर्वत की खोह में छिप रहा है तो कोई समुद्र मे कूद रहा है, कोई सागर के पार पहुँच गया है तो बहुत से योद्धाओं ने श्रीराम की शरण ग्रहण कर ली है। वानर-सेना के विकलताजन्य व्यापार का इसी प्रकार का एक चित्र महाकवि तुलसीदास ने अपने ग्रन्थ 'रामचरित मानस' में प्रस्ततु किया है, उदाहरणार्थ—

मुरे सुमट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहि टेरे ।।[५३]

महाकवि तुलसीदास ने केवल एक चौपाई में ही वानर-सेना की अव्यवस्था को मूर्त रूप में उपस्थित कर दिया है। भय एवं आघातों से वानर-सेना इतनी अस्त-व्यस्त हो जाती है कि वे युद्ध-भूमि को छोड़कर भाग खड़े होते हैं और बुलाये जाने पर आते नहीं हैं। उन्हें भयातिरेक से कानों से सुनाई नहीं पड़ रहा है और व्याकुलता के कारण आँखों से कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है।

वानरों की अस्तव्यस्तता की स्थिति में ही कुम्भकर्ण अपने त्रासक व्यापार द्वारा उन्हें भयभीत बना देता है। एक तो कुम्भकर्ण की भयानक विशालकाय आकृति[५४] दूसरे उसके तीव्र आघात वानर-सेना में पर्याप्त भय की सृष्टि कर देते हैं। कुम्भकर्ण के त्रासक व्यापार का एक संक्षिप्त चित्र द्रष्टव्य है—

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलब महि गर्दा।
मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ।।[५५]

करोड़ों वानरों को पकड़ कर शरीर से मसल कर पटक देना, अन्य करोड़ों को पकड़ कर पृथ्वी की धूल में मसल देना आदि दोनों क्रियाएँ तो कुम्भकर्ण की रण-तत्परता को प्रकट

करती हैं किन्तु उसके नासिका, मुख और श्रवण-मार्गों से जीवित वानरों के समूह का निकलना एक लोमहर्षक चित्र प्रस्तुत करता है। कुम्भकर्ण के इस उत्तेजनात्मक आक्रमण से वानर-सेना अगद और हनुमान की दुहाई देती हुई छिन्न-भिन्न होने लगती है।[५६]

अस्त-व्यस्त वानर सेना को सगठित करने के लिए अगद, हनुमान आदि महाभटों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। कवि विष्णुदास के शब्दों में वानर-सेना के पुनः संगठन का एक आकर्षक चित्र प्रस्तुत है—

जोजन बीस न तितनौ ठांउ जिहि ठां ठाढ़ें धरिए पाँउ ।।
आयुध तिनहिं आहि नख दंत। धू धू काल करै भयमंत ।।
देहिं हांक फेंरहिं लंगूर। हाथनि तरुवर लएं समूर ।।
सतवलितात गवाखु सुकेन। चलत सेनु तिहि उछरत रैनु ।।[५७]

बीस योजन तक युद्ध-भूमि मे कही भी पैर रखने का स्थान नहीं है। काल का ताण्डव चारों ओर व्याप्त है। समरभूमि वीरों के शवों से पटी हुई है। गवाक्ष, सुखेण आदि सेनापति वानर-लंगूर योद्धाओं को आवाज देकर रणभूमि में पुनः जूझने के लिए वापिस बुलाते हैं। वानरों के हाथों में समूल वृक्ष आयुध के रूप में धारण किए हुए हैं।

वानर-सेना की त्राहि-त्राहि एवं पुकार का चित्रण राम-काव्यों में युद्धरत सामान्य सेना के व्यापारो का सहज चित्र प्रस्तुत करता है। सेना की छिन्न-भिन्न दशा का हनुमान पर विशेष प्रभाव पड़ता है। उनके द्विगुण उत्साह से लड़ने का एक साधारण चित्र अवलोकनीय है—

पवन तनय मन भा अति क्रोधा। गजेउ प्रबल काल सम जोधा ।।
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुं धावा ।।
भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुं मारेसि लाता ।।
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना ।।[५८]

एक ओर हनुमान मेघनाद को घायल करते हैं तो दूसरी ओर अपने अतिशय बल-पराक्रम का प्रदर्शन कर अपनी सेना को उत्साहित करते है, उदाहरण द्रष्टव्य है—

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन मती में एक गगन उड़ात हैं।
पटकि पछारे कर, चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं।[५९]

हनुमान के हस्तलाघव को, उनकी रण-कुशलता को देखकर वानर सेना में उत्साह का संचार हो उठता है। महाकवि तुलसी ने तो कुम्भकर्ण और हनुमान के त्रासक व्यापारों के चित्र प्रायः समान शब्दावली में प्रस्तुत किए हैं।[६०] तुलसी के अतिरिक्त अन्य राम-कवियों ने सेनाओं के युद्ध वर्णन में किसी विशिष्ट योद्धा के पराक्रम का व्यक्तिगत रूप से वर्णन न करके सम्पूर्ण सेना को एक इकाई मानकर वर्णन किया है।

उत्साह से लड़ती हुई वानर-सेना अपने शत्रु पर भारी पड़ने लगती है। कवि

विष्णुदास ने वानर-सेना के उत्साह का वर्णन अत्यन्त सुन्दर शब्दों में किया है, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

इक इक करि ता लेहिं पिरान। स्यों जोधा मारहिं किक्यान॥
कोई मुरकि न देखहिं डीठि। कोऊ मुरि न चलै दै पीठि॥
राम लखन बरषहिं सरधार। हय गय पगनि उठी अति छार॥
छाए नयन न सूझत काइ। पाउं न धरत बनत तिहि ठांइ॥[६१]

कवि विष्णुदास ने वानर सेना के व्यापक व्यापार का चित्रण करने के साथ-साथ उसके प्रभाव की व्यंजना करके एक सम्पूर्ण युद्ध-चित्र उपस्थित किया है। वानरों का राक्षसों पर प्रहार करना एक-एक को पछाडना, समर-भूमि में साहसपूर्वक लड़ना, पीछे फिर कर न देखना, युद्ध-भूमि से न भागकर धैर्य से लड़ना आदि क्रियाओं के परिणामस्वरूप युद्ध में तीव्रता आती है। हाथी और घोड़ों की पदचाप से युद्ध-भूमि धूलि-मडित हो जाती है। वायुमण्डल धूलि-आवृत्त होने के कारण नेत्रों से किसी को मार्ग नहीं दिखाई देता। समर भूमि मे कही भी पाँव रखने का स्थान भी शेष नहीं बचा है।

युद्ध-क्षेत्र मे उत्साहमूलक उक्तियाँ व्यापार को अद्भुत और तीव्रतर करने के लिए अग्नि के साथ वायु का-सा महत्त्व रखती हैं। इन उक्तियों मे अपने बल-पराक्रम का शत्रु को परिचय दिया जाता है, शत्रु की निन्दा की जाती है। इस प्रकार युद्धगत उत्साह का उत्स ये उक्तियाँ होती हैं। राम-काव्यो में युद्ध-वर्णनों के अन्तर्गत विशेषत: तुलसी ने उपर्युक्त तत्त्व का विस्मरण नहीं किया है। युद्ध-प्रसग न होने पर भी धनुर्यज्ञ के अवसर पर लक्ष्मण की दर्पोक्तियाँ[६२] प्राचीन वीरों की इसी प्रवृत्ति का परिचय देती है। युद्ध-प्रसंग में समुद्र की धृष्टता देखकर वानरों को अत्यन्त क्रोध होता है। क्रोध और उत्साह से मिश्रित उनकी उक्तियाँ तुलसी के शब्दों मे प्रस्तुत हैं—

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भर कुधर बिसाला॥
मर्दि मर्दि मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुं ग्रसन चहत हहिं लंका॥[६३]

वानरों का क्रोध करना, हाथ मसलना, रावण को धूल में मिला देने की दर्पोक्ति कहना, निश्शंक भाव से गर्जना करना आदि व्यापार युद्ध की भीषणता को प्रकट करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

वानर सेना के युद्ध-वर्णन के प्रसग में कवि विष्णुदास ने वानरों की सामान्य प्रवृत्तियों का चित्रण करके यह सिद्ध किया है कि योद्धा होने पर भी मूलतः वे वानर ही हैं। उपर्युक्त कथन की पुष्टि में एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

बंदर चढ़े दसों दिसि पूरि। फल खाये तरु डारे चूरि॥
एकति झूलहिं गहि गहि डार। एकति फांदि करैं सर पार॥
ता बन बहुत कुलाहल भयौ। हांकत दधिमुख सामुह गयौ॥[६४]

यहाँ वानरों का वृक्षों पर चढने के साथ-साथ डाल पकड़कर झूलना, कूदकर सरोवर पार करना, फल खाना और वृक्षों को चूर-चूर कर डालना आदि व्यापार योद्धाओं के व्यापार न होकर सामान्य वानर-क्रियाओ का चित्र प्रस्तुत करते है।

युद्ध-भूमि में वानरों की दुर्बल पड़ती हुई शक्ति का चित्र कवि सेनापति ने भी अत्यन्त साधारण शब्दावली में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार राक्षस-सेना के योद्धा युद्ध के मद में अन्धे होकर वानर सेना पर टूट पड़ते हैं और वानर सेना को छिन्न-भिन्न कर देते हैं, उदाहरणार्थ—

जुद्ध-मद अंध दसकंधर के महाबली,
बीर महाबीर डारे बानर बितारि कै।
कोऊ तुंग शृङ्गनि, उतंग भूधरन कोऊ,
जोई हाथ परै सोई डारत उखारि कै।[६५]

युद्धरत वानर सेना की विविध चेष्टाओं का वर्णन राम-कवियों में केवल तुलसी के काव्य में अत्यन्त सहज और सुन्दर बन पड़ा है, यथा—

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥
उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं॥[६६]

वानर योद्धाओं का शीघ्रता से दौड़ना, कठिन मार्गों की कठिनाइयों की परवाह न करना, पर्वत फोड़कर मार्ग बना लेना, करोडों वानरों का दांत किटकिटाकर गर्जना करना, ओठ काटना आदि चेष्टाएँ एक ओर वानरों के युद्धरत व्यापार का चित्र प्रस्तुत करती हैं तो दूसरी ओर क्रोध और उत्साह को व्यंजित करने वाली सामान्य चेष्टाओं का सहज चित्र स्वभावोक्ति अलंकार के द्वारा वीर-रस की अनुभूति में परिपक्वता उत्पन्न करता है।

महाकवि तुलसी का प्रभाव ग्रहण कर कवि नरहरि ने भी युद्धों का वर्णन उनकी ही पद्धति अपनाते हुए किया है। कहीं-कहीं तो नरहरि ने केवल शब्द-परिवर्तन मात्र कर दिया है और कहीं-कहीं उन्ही शब्दों का प्रयोग केवल क्रम-भेद से कर दिया है। फिर भी नरहरि के युद्ध-वर्णन के कुछ स्थल स्वभावोक्ति अलंकार से विभूषित अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़े हैं। एक स्थल अवलोकनीय है—

जुधहेतमर्कटजूह। मिलिषंघअद्रिसमूह॥
तरतुहोउरचढ़ितास। अनगहनदनुजविनास॥

× × ×

बुकारझंपहिंवीर। मिखिगगनगतिजुसमीर॥
बढ़िवीररणभुजवाइ। अतिकुद्धजुद्धउछाह॥
कोऊ हतदावहिंलंक। कोऊउदधिवारिअसंक॥
कोऊकहैंग्रहिदशकंध। बिछुरहिंनवग्रहबंध॥[६७]

यहाँ दर्पोक्ति के प्रयोग में यद्यपि कवि तुलसी से प्रभावित अवश्य है किन्तु उसका यह चित्र मौलिक कहा जा सकता है।

दर्पोक्तियों की विपुल ध्वनियों से गुंजायमान रणभूमि का अत्यन्त यथार्थ चित्र कवि तुलसीदास ने प्रस्तुत किया है, उनके शब्दों में—

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥
असि रण पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहं तहं रुंड प्रचंडा॥[६८]

यहाँ युद्धरत सैनिकों के व्यापार का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया गया है। वे मुट्ठियों, लातों और दांतों से प्रहार करते है। मारो-मारो, पकड़ो-पकडो, पकड़ कर मारो, शीश काट लो और भुजा उखाड दो, इस प्रकार का भीषण रव चारो ओर व्याप्त है। वानरों के प्रहारों के परिणामस्वरूप यत्र-तत्र राक्षसों के रुड दौड़ रहे हैं। युद्ध-भूमि के इस व्यापार-चित्र को हम सर्वांग चित्र कह सकते है।

युद्ध-क्षेत्र में आघातों से आहत सैनिकों की अवस्था के चित्र भी राम-काव्यों में युद्ध-व्यापार में मिश्रित करके प्रस्तुत किए गए हैं। समरभूमि में आहत होते हुए योद्धाओं का एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है—

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं॥
लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारू मारू धुनि गावहिं॥[६९]

क्रिया और प्रतिक्रिया युद्ध-व्यापार के अनिवार्य तत्त्व हैं। महाकवि तुलसी ने अपने युद्ध-वर्णनों में सर्वत्र इन दोनो को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया है। उपर्युक्त चित्र में योद्धाओं के चरण, उर, सिर कट रहे है, बहुत-से वीर तो शत-शत खण्डों में कट-कटकर गिर रहे हैं। इसी की प्रतिक्रिया के रूप में आहत योद्धा चक्कर खा-खाकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं। बहुत से साहसी योद्धा फ़िर उठकर लड़ने का प्रयत्न करते हैं। बाण-प्रहार होते ही वीरों के मुख से भीषण गर्जना होती है और बहुत से सैनिक तो भयंकर बाण को आता हुआ देख कर भाग खड़े होते हैं। इस सबकी प्रतिक्रियास्वरूप शीशविहीन रुण्ड रण-भूमि में यत्र-तत्र दौड़ रहे हैं। चारों और पकड़ो-पकड़ो मारो-मारो की ध्वनि व्याप्त है। अपने चित्रों को यथार्थ बनाने के हेतु कवि ने युद्ध-व्यापार की उत्तेजना को समग्र रूप में व्यंजित करने वाली परुष ध्वनियों का सर्वत्र प्रयोग किया हैं।

कवि केशव ने युद्ध प्रसंग का अत्यन्त संक्षिप्त एवं नीरस वर्णन किया है। उन्होंने संवादों में तो उक्ति-चातुर्य का परिचय दिया है किन्तु युद्ध-वर्णन उनके साधारण हैं, उदाहरणार्थ—

अनेक भेरी बहु दुंदभि बजैं।
गयंद क्रोधांध जहां तहां गजै॥[७०]

प्रस्तुत वर्णन से स्पष्ट है कि यहाँ सम्पूर्ण युद्ध का प्रतिनिधित्व केवल 'भेरियां' एवं 'क्रोधांध गयद' ही कर रहे हैं जबकि सत्य यह है कि युद्ध-वर्णन के मुख्य तत्त्व सेनाओं का घात-प्रतिघात, घायल-सैनिको की रण-कुशलता का वर्णन आदि होते है। केशव ने इन सबकी उपेक्षा कर दी है।

केशव की तुलना में कवि विष्णुदास के युद्ध-व्यापार चित्र अधिक सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावकारी है। एक स्थान पर कुम्भकर्ण को जगाने का चित्र भी कवि विष्णुदास ने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है, यथा —

ऊपर ता राखस के अंग। लै दौराए गजनि तुरंत ।।
तिल तिल देह खूंदता गई। निद्रा अधिक निसाचर भई ।।
फरिस सेल सकति करि वार। हनहिं अंग गहि खैंचहिं बार ।।
आयुध टूटहिं अंग न लागि। तदिय करौंटु देत नहि जागि ।।
सूर दस सहस थकियौ मार। जागत नहीं रहे सब हार ।।[७१]

यद्यपि प्रस्तुत चित्र युद्ध-प्रसंग से भिन्न है किन्तु यह युद्ध का सहधर्मी व्यापार है। सैनिकों को युद्ध के लिए प्रेरित अथवा प्रस्तुत करना भी युद्ध-व्यापार में परिगणित होता है। इस रूप मे यह अत्यन्त विचित्र व्यापार का सहज वर्णन है जिससे पाठक सहसा चमत्कृत होता है। प्रगाढ निद्रा मे मग्न लोगों को जगाने के प्रयास का यह भव्य रूप है क्योकि इसका सम्बन्ध षण्मास निद्रा-सेवी कुम्भकर्ण से है।

कहीं-कही विष्णुदास युद्ध के अत्यन्त सक्षिप्त और सरल वर्णन भी प्रस्तुत करते हैं, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

राम हंसहि राखस बिलखाहिं। हाहाकार होत गढ़ माहिं ।।
× × ×
हाथनि कान नाक गहि दंत। टोरे बंदर वीर निसंक ।।[७२]

अत्यन्त संक्षिप्त एव सरल वर्णन प्रस्तुत करने पर भी विष्णुदास केशव की भाँति चयन-प्रतिभा से शून्य नहीं हैं। उन्होने दो वाक्यो में ही क्रिया-प्रतिक्रिया को ग्रहण कर लिया है। राम का हँसना, राक्षसों का बिलखना, गढ में हाहाकर होना, वानरों का हाथों से कान पकडकर तोडना तथा दांतों से नाक तोड़ देना, आदि सभी व्यापार युद्ध का एक सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत कर देते हैं।

महाकवि तुलसी ने प्राय: वस्तु-वर्णन के समय संक्षिप्त विवरण शैली का प्रयोग किया है किन्तु युद्ध-वर्णन में विस्तार दे गए हैं। जहाँ-जहाँ तुलसी ने युद्ध-वर्णन में विस्तार दिया है वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार से मडित ये वर्णन अत्यन्त सुन्दर एवं सरस बन गए हैं।[७३]

सक्षेप में कहा जा सकता है कि युद्ध-व्यापार चित्रण के क्षेत्र में राम-कवियों में से विशेष सफलता कवि विष्णुदास और तुलसीदास को प्राप्त हुई है। इन कवियों का युद्ध-चित्रण, सर्वांग सहज एवं स्वाभाविक है। किसी भी सामान्य युद्ध की परिकल्पना को जाग्रत करने वाले ये स्वभावोक्तिमूलक चित्र काव्य की रससिद्धि में अतीव सहायक हैं।

वस्तुतः प्रत्येक अलंकार की उपयोगिता रसानुभूति को तीव्रतर करने में है। इस रूपमें राम-कवियों के युद्ध-वर्णन स्वभावोक्ति से अलकृत होकर वीर-रस की सिद्धि मे सहज ही उपयोगी हो उठते हैं।

वर्गीकरण-बहिगत व्यापार-चित्रण

राम-काव्यों मे मानव-जीवन के विविध व्यापारों का स्वभावोक्तिमूलक चित्रण उपलब्ध होता है। इन कवियों ने कई स्थलो पर इतने विचित्र व्यापारो का चित्रण किया है, जिन्हें हम किसी वर्गीकरण में समाहित नहीं कर सकते। अस्तु इनका पृथक् विवेचन आवश्यक हो जाता है। इन विचित्र चेष्टाओ अथवा व्यापारो के अन्तर्गत क्रोध, हर्ष आदि से प्रेरित क्रियाएँ, विवाह आदि अवसरों के सांस्कृतिक व्यापार एव युगीन आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के चित्रो को परिगणित किया जा सकता है।

भौंह टेढ़ी कर होठ फडकाते क्रोध से तमतमाते लक्ष्मण की चेष्टाओ को कवि ने एक सक्षिप्त वाक्य में ही चित्रित कर दिया है—

माखे लखनु कुटिल भइं भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥[७४]

व्यक्तिगत चेष्टाओं के माध्यम से यहाँ क्रोधी व्यक्ति की सामान्य चेष्टाओं को अभिव्यक्त किया गया है। व्यक्तिगत चेष्टा-वर्णन राम-काव्यो मे दो प्रकार से उपलब्ध होता है। लक्ष्मण की चेष्टाएँ व्यक्ति के सामान्यीकृत रूप का ही प्रतिनिधित्व करती हैं जबकि राम-वनवास के विषय में भरत की निर्दोषता को स्वीकार करने वाली जनता के प्रतिनिधि की प्रतिक्रियाएँ एक विराट् समूह का प्रतिनिधित्व करती हैं, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहि यह बात अलीहा॥[७५]

यहाँ हाथों से कान पकड़कर दाँतो तले जीभ दबाकर कहना कि 'यह बात असत्य है' जनता की प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति मे तीव्रता उत्पन्न करती है। सत्य-शपथ जनता का यथार्थ चित्र वास्तव में उपर्युक्त चेष्टा-वर्णन से ही उपस्थित होता है।

प्रतिक्रियात्मक चेष्टाओ के साथ ही प्राकृत चेष्टाओं के सुन्दर चित्र भी राम-काव्यों में उपलब्ध होते है। भूख मे विह्वल शिशु की अपनी माता के प्रति अपनी अवस्था की सचेष्ट अभिव्यक्ति इसी प्रकार की झाँकी उपस्थित करती है, उदाहरणार्थ—

सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा॥[७६]

यहाँ नेत्रों को सजल करके मुख को कुछ रूखा-सा बनाकर माता की ओर देखने की बालक की चेष्टा उसकी भूख की पर्याप्त अभिव्यक्ति करती है। ये एक साधारण शिशु की चेष्टाएँ हैं जिनको कवि ने बालक जाति का प्रतिनिधि बनाकर वर्णन किया है। वस्तुतः तुलसी का काव्य विविध और भव्य भगिमाओं का विशाल सागर है।

सन् १४५० से १६५० ई० तक के सभी राम-कवियों में तुलनात्मक दृष्टि से महाकवि तुलसीदास के काव्य में व्यापार-चित्रण विस्तृत एव वैविध्यपूर्ण है। सांस्कृतिक वर्णनों के सहज, स्वाभाविक चित्र भी तुलसी के ही काव्य में विपुलता से उपलब्ध होते

हैं। राम के विवाह के अवसर का वर्णन करते हुए तुलसी ने जहाँ विस्तार का ग्रहण किया है वहाँ अन्य कवियों ने सक्षेप मे ही इस प्रसग का समापन किया है। महाकवि केशव ने एक स्थान पर राम के विवाह का सुन्दर स्वभावोक्तिमूलक सांस्कृतिक चित्र अकित किया है जो वास्तव मे पठनीय है—

आसमुद्र के छितीश और जाति को गने।
राजभौन भोज को सबै जने गये बने।
भांति भांति अन्नपान व्यंजनादि जेंवहीं।
देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवहीं।[७७]

विवाहादि के अवसर पर प्रीतिभोज के विषय का चमत्कारपूर्ण चित्रांकन राम-काव्यों में प्राय: दुर्लभ है। उपर्युक्त वर्णन मे राजभवन में बारात को विविध व्यजनादि परोसने के साथ ही जनकपुरी की स्त्रियो द्वारा बारात को मधुर उपालम्भमय 'गालियाँ'[७८] देना तथा रगों से बार-बार भिगोना आदि सांस्कृतिक तत्त्वों का समावेश भी कर लिया गया है। इस प्रकार 'जेंवनार' (सहभोज) के साधारण विषय को भी कवि ने अपनी प्रतिभा एवं अभिव्यजना-कौशल के आधार पर सांस्कृतिक रूप प्रदान कर दिया है।

(ङ) सांस्कृतिक क्रिया-वर्णन

राम-जन्म के उत्सव का वर्णन करते हुए कविवर लालदास ने अपने काव्य ग्रन्थ अवध विलास[७९] में अत्यन्त मनोरम सास्कृतिक चित्र उपस्थित किए है। दो उदाहरण पठनीय हैं—

(क) **गिरत केसरि परत चोवा अगरजा बरषा रची॥**
करत उत्सव देव देव पर कीच वीथिन बिच मची॥
सुनै बिनही हरष मनही भयो सबके देषिये॥
जन्म आत्म सुष समागम अवध माह बिसेषिये॥[८०]

(ख) **हरद भरि भरि हरष करि करि अवध वासी षेलही॥**
परत हंसि हसि उठत षसि षसि लसत परसपर पेलही॥
देव गर्जत असुर तर्जत अवध के बाजन सुने॥
भये निर्भय लाल रिषि मुनि बिप्र वेद जय जय भने॥[८१]

जनकपुरी में रग-भूमि की शोभा एव सीता स्वयवर के अवसर पर नगरवासियों की हर्ष-विह्वलता अवर्णनीय है। नगर मे विशेष चहल-पहल है। कोई धनुर्यज्ञ का समाचार पाकर जनकपुर की ओर प्रस्थान कर रहा है तो कोई नगर के बीच पहुँच चुका है, और कोई नगर में प्रवेश कर रहा है। कोई-कोई तो रंगभूमि की सज्जा को लुभाते नयनों से देख रहे हैं। किसी-किसी को जनक का सम्मान होते देखकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है। इस प्रकार नगर की भीड़ का वर्णन अत्यन्त कठिन है। उदाहरण कवि के शब्दों में पठनीय है।

एक चलहिं, एक बीच, एक पुर पैठहिं।
एक धरहिं धनु धाय नाइ सिर बैठहिं॥
रंगभुमि पुर कौतुक एक निहारहिं।
ललकि लोभाहिं नयन मन, फेरि न पारहिं॥
जनकहि एक सिहाहिं देखि सनमानत।
बाहर भीतर भीर न बनै बखानत॥[८२]

उपर्युक्त वर्णन स्वभावोक्तिमूलक चित्रांकन के रूप मे सामान्य विवाहादि अवसरों की चहल-पहल का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने भी स्वयंवर की चहल-पहल के इस चित्र की प्रशसा करते हुए इसे सामाजिक चित्र कहा है।[८३] सामाजिक रीतियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाली स्वभावोक्तियों में कहीं-कहीं महाकवि तुलसीदास ने अपने युग की सांस्कृतिक-सामाजिक, और आर्थिक परिस्थितियों का निर्देश भी कर दिया है। राम के नहछू के अवसर का चित्रांकन करते हुए कवि एक सहज विश्वसनीय वातावरण का निर्माण कर देता है। दशरथ के आँगन में विविध जातियों की स्त्रियों की भीड़ लगी है। 'रूप' सलोनि तंबोलिन हाथ में बीड़ा लिए खड़ी है—जिसकी ओर विहस कर देखती है उसका ही मन हर लेती है—जिनमें उसने परम सुगन्धित पदार्थ लगा रखे हैं।[८४] इसी भीड़ में मोचिन भी हीरा माँगते हुए मुँह सिकोड़ कर खड़ी है—

मोचनि बदन-सकोचनि हीरा मांगन हो।
पनहि लिहे कर सोभित सुन्दर आंगन हो।
बतिया कै सुघरि मलिनिया सुन्दर गातहि हो।
कनक रतनमनि मौर लिहे मुसकातहि हो।[८५]

यहाँ मोचिन का अन्य सब स्त्रियों की भाँति निस्सकोच दशरथ के आँगन में खड़े होना उस युग की सामाजिक अवस्था पर प्रकाश डालता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में छुआछात के विचारों का समाज मे इतना प्रभाव और प्रचलन नहीं था। एक सांस्कृतिक समारोह के सीधे स्पष्ट वर्णन में कवि ने युगीन समाज को प्रतिबिम्बित कर दिया है। श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने स्पष्टत: कहा है कि उपर्युक्त उद्धरणों में महाकवि तुलसीदास ने स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से युगीन सामाजिक मान्यताओं (कि उस युग का समाज छुआछात के विचारों से मुक्त था, मोचिन के आँगन में खड़े होने से यही ध्वनित होता है) का जीवन्त प्रतिबिम्ब अकित किया है।[८६]

विवाहादि सामूहिक कृत्यों के सांगोपांग चित्रण के आधार पर डॉ० श्रीधर सिंह ने भी महाकवि तुलसी की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

"विवाह की विविध क्रियाओं का जितना सांगोपांग और जीवित वर्णन मानस, पार्वती मंगल एवं जानकी मंगल में दिखाई देता है उतना सजीव कदाचित् ही कहीं दिखाई दे। रामललानहछू में नहछू की विविध रीतियों का मनोरंजक वर्णन है। इन वर्णनों की सर्वाधिक सफलता इनके व्यावहारिक रूप के प्रत्यक्षीकरण में है। विवाह के

वर्णन से विवाह और नहछू के वर्णन से नहछू का यथार्थ चित्र आँखों के आगे नाचने लगता है।"[८७]

अपने समकालीन, पूर्ववर्ती एवं परवर्ती राम-कवियों की अपेक्षा तुलसी की चित्रांकन-प्रतिभा निस्सदेह श्रेष्ठ है। आंगिक चेष्टाओं का वर्णन काव्य-चित्रों का प्राण-तत्त्व है। इसके साथ ही आंगिक व्यापारों का वर्णन अत्यन्त सावधानी की अपेक्षा भी रखता है अन्यथा काव्य का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाएगा[८८] तुलसी की अन्य राम-कवियों से श्रेष्ठता (अभिव्यंजन-कला की दृष्टि से) सिद्ध करने के लिए हम दो उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। एक है शबरी की आतुरतापूर्ण प्रतीक्षा का चित्र—

छन भवन, छन बाहर विलोकति पंथ भौं पर पानि कै।[८९]

शबरी कभी घर में कभी बाहर आकर मार्ग की ओर ध्यानपूर्वक भौंह पर हाथ रखकर देखती है। यहाँ शबरी की दो क्रियाएँ घर के भीतर और बाहर बार-बार आना-जाना तथा माथे पर हाथ रखकर पथ को देखना क्रमशः उसकी आतुरता एव विह्वल प्रतीक्षा को रूपायित करती है।

दूसरा चित्र है वन-मार्ग में श्रीराम के रूप से प्रभावित किंकर्त्तव्यविमूढ मृग-मृगी के व्यापार का—

अवलोकि अलौकिक रूप मृग चौंकि चकै चितवै चित दै।
न डगैं न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है।[९०]

मृगों का चौंककर चमत्कृत होते हुए देखने का व्यापार इतना जीवन्त रूप में अभिव्यक्त हुआ है कि पाठक के सम्मुख ठिठककर खड़े हुए चंचल-नेत्र हरिण का गतिशील चित्र उभर आता है।

इस प्रकार शबरी के भीतर की सारी व्याकुलता को मूर्त कर देने वाली तथा मृगों का गतिशील चित्र अंकित कर देने वाली स्वभावोक्तियाँ तुलसी के व्यापार-चित्रण-कौशल का स्पष्ट परिचय देती हैं।

सामूहिक-स्वभाव चित्रण में भी महाकवि तुलसी ने गीतावली में 'हिंडोला' शीर्षक पदों में समाज के रंगीन पक्ष का सहज उद्घाटन किया है। फगुआ मनाते हुए लोगों के उन्मुक्त उल्लास का एक चित्र द्रष्टव्य है—

बाजहिं मृदंग, डफ, ताल बेनु। छिरकैं सुगंधभरे मलय रेनु॥
उत जुवति-जूथ-जानकी संग। पहिरे पट भूषन सरस रंग॥
लिये छरी बेंत सोंधें बिभाग। चांचरि झूमक कहैं सरस राग॥
नूपुर किंकिनि-धुनि अति सोहाइ। ललन गन जब जेहि धरइं धाइ॥
लोचन आंजहिं फगुआ मनाइ। छाडहिं नचाइ, हाहा कराइ॥
चढ़ै खरनि विदूषक-स्वांग साजि। करैं कूटि निपट गइ लाज भाजि॥[९१]

यहाँ डफ मृदंग आदि वाद्यों, वस्त्र-भूषण-सज्जित युवतियों, चांचरि झूमक रागों, नूपुर-किंकिनी आदि बजाती हुई स्त्रियों द्वारा दौड़कर पुरुषों को पकड़ना, फगुआ मनाती हुई

ललनाओं द्वारा पुरुषों को पकड़कर नचाना और उन्हें हाहा कराकर छोड़ना, विदूषकों का गधों पर चढ़ना, निर्लज्जतापूर्वक कूट वाक्यों को बकना आदि के वर्णन में कवि ने ग्राम्य संस्कृति का सम्पूर्ण चित्र कुशलता से उरेहा है। यह वर्णन इतना जीवन्त एवं यथार्थ है कि हम गाँव में आज भी फागुन मास में इसकी झाँकियाँ देख सकते है।

झूला झूलती हुई स्त्रियों का वैविध्यपूर्ण व्यापार भी कवि ने अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ एक वर्णन पठनीय है—

अति मचत छूटत कुटिल कच छवि अधिक सुंदरि पावहीं।
पट उड़त भूषन खसत, हंसि हंसि अपर सखी झुलावहीं॥[६२]

झूले पर लगती हुई स्वच्छन्द वायु से उड़ती हुई केशराशि युवतियों के सहज सौन्दर्य में वृद्धि कर रही है। झूलते हुए वस्त्रों का उड़ना, आभूषणों का अस्त-व्यस्त होना किन्तु युवतियों का इन बातो की उपेक्षा करके हँस-हँसकर झूलना और झुलाना हर्षोन्मत्त नारी-समूह का सहज-स्वाभाविक चित्र उपस्थित करता है।

(२) मानवेतर प्राणियों का व्यापार-चित्रण

मानवेतर प्राणियों के व्यापार-चित्रण के स्थल राम-काव्यो मे विरल ही कहे जा सकते हैं। प्रताप भानु की कथा में सूअर की चेष्टाएँ, राम के वियोग से विह्वल घोड़ों की चेष्टाएँ तथा कपट-मृग मारीच की चेष्टाएँ ही इस विषय-परिधि में समाहित की जा सकती हैं। प्रताप भानु के प्रसंग में सूअर की चेष्टाओं का स्वभावोक्तिमूलक चित्रण तो हमें केवल रामचरित मानस में ही उपलब्ध होता है, उदाहरणार्थ—

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥
तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ संग लागा॥[६३]

घोड़ों की आती हुई पद-चाप को सुनते ही सूअर का हवा की गति से भाग उठना, राजा के शर-संधान करते ही उसका पृथ्वी पर झुक जाना, राजा के निशाना लगा-लगाकर तीर चलाने पर सूअर का विविध छलों से अपने आपको बचाने का उपाय आदि चेष्टाओं का सहज-सामान्य वर्णन उस जीवित पशु का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है जिसके पीछे शिकारी लगा हुआ हो।

नरहरि आदि अन्य कवियों ने इस प्रसग का परम्परागत साधारण वर्णन किया है। कपट-मृग मारीच के प्रसंग को राम-कवियों ने अपेक्षाकृत अधिक रुचि से अभिव्यक्त किया है। महाकवि विष्णुदास ने अत्यन्त सरल शब्दावली में स्वर्ण-मृग की चेष्टाओं का चित्र अंकित किया है। यह वर्णन अत्यन्त स्पष्ट, सरस एव चित्रमय होने के कारण व्यापारमूलक स्वभावोक्ति अलंकार कहा जा सकता है। कवि के शब्दों मे—

इतनौ कहि कर धनु गुन कियौ। देखि हिरन अदृष्ट तनु लियौ॥
चाहत राम फिरे पछिताइ। तब पुनि दृष्टि परयौ वह आइ॥

खिन नियरौ खिन दृष्टि पराइ। चाहत फिरत राम पछिताइ॥
बहुरौ दृष्टि परयौ सोआइ। देखि राम मन हरष कराइ॥
तापर हिरनु न मारयौ जाइ। बहु विधि छल करि गयौ पराइ॥[६४]

यद्यपि कवि की भाषा में कहीं-कहीं पुनरुक्ति मिलती है तथापि उसकी अभिव्यंजना-शैली का महत्त्व कम नहीं कहा जा सकता। परवर्ती तुलसी, सूर आदि अन्य राम-कवियों ने विष्णुदास से निस्सदेह प्रेरणा ग्रहण की है। तुलसी का मारीच-प्रसंग वास्तव में विष्णुदास के ही प्रभाव की छाप से युक्त देखा जा सकता है—

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥
× × ×
कबहुं निकट पुनि दूरि पराई। कबहुंक प्रगटइ कबहूं छपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥[६५]

मृग की बहुत-सी चेष्टाएँ तो यहाँ प्रताप भानु प्रसग के सूअर की चेष्टाओं के समान ही अभिव्यक्त की गई है। तुलसी के इन दोनो प्रसगों में विष्णुदास की सीधी सरल अभिव्यक्ति का प्रभाव पड़ा है। कहीं-कहीं तो तुलसी की शब्दावली भी विष्णुदास के ही शब्दों से बहुत अधिक साम्य रखती है। अन्य राम-कवियों ने इन प्रसगों मे परम्परा का ही अनुसरण किया है। केवल कवि 'नरहर' के कुछ काव्यांश इस सदर्भ में अवश्य ही अवलोकनीय हैं—

कनकरतनमय कांतिकपटमृगदेहसकारन।
सूंघतत्रिसंक्रमन निषिल दिगविदिग निहारत॥
घसतकबहुं अघधरनिधराधरचढ़ि कहुं पावत॥
बारबारग्रीवाविभंगतनसृंगषुजावत॥[६६]

'नरहर' का यह वर्णन कालिदास के 'ग्रीवाभंगाभिराम' वाक्यांश से प्रभावित तो है किन्तु इसके अतिरिक्त शेष वर्णन मौलिक एवं सुन्दर है। यहाँ तुलसी की भाँति उपमादि अलकारों की योजना न करके कवि ने सीधी सरल शब्दावली में कनक मृग का इतना जीवन्त चित्र अकित किया है कि हमारे सम्मुख पृथ्वी सूंघता हुआ, नाक सिकोड़ता हुआ, दिशाओं की ओर देखता हुआ, उछलता-कूदता हुआ, बार-बार गर्दन हिलाते हुए अपने सींग खुजाता हुआ मृग मूर्त्त हो उठता है। कवि नरहरि के चित्रण का यही वैशिष्ट्य है कि उन्होंने परम्परागत वर्णनों से हटकर मृग के रूप में पशु मात्र की सामान्य चेष्टाओं को वर्ण्य विषय बनाया है।

राम के वियोग में व्याकुल घोड़ों की चेष्टाएँ सहज न होकर भाव-प्रेरित क्रियाओं के अन्तर्गत कही जाएँगी। इन चेष्टाओं का जितना मार्मिक चित्रांकन हमें रामचरित मानस में मिलता है उतना अन्य किसी राम-काव्य में नहीं। घोड़ों का तृण न चरना, पानी न पीना, नेत्रो से निरन्तर अश्रु प्रवाहित करना, राम-सीता आदि के नाम लेने पर बोलने वाले की ओर हुमक कर देखना, मार्ग में ठोकर खा-खाकर गिरना, बार-बार पीछे

मुड़कर देखना आदि क्रियाएँ अपने स्वामी से बिछुड़े हुए पशु का सहज सामान्य चित्र उपस्थित कर देती हैं—

चरफराहिं मग चलहि न घोरे। बन मृग मनहुं आनि रथ जोरे॥
अदुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम वियोगि विकल दुख तीछें॥
जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥[६७]

मानस के उपर्युक्त वर्णन से बहुत-कुछ मिलता हुआ वर्णन ही कवि नरहरिदास ने अपने ग्रन्थ पौरुषेय रामायण में प्रस्तुत किया है। यह वर्णन परम्परागत तो है ही साथ ही शब्दावली भी पूर्णतः तुलसी से गृहीत है। इसी कारण हम कह सकते हैं कि राम-काव्यों में श्रीराम के वियोग से कातर घोड़ों का जैसा सुष्ठु और चामत्कारिक वर्णन तुलसी ने उपस्थित किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

निष्कर्षतः राम-काव्यों में मानवीय तथा मानवेतर प्राणियों के व्यापारों के सुन्दर स्वभावोक्तिमूलक चित्रों द्वारा कवियों ने अनेक स्थलों पर भाव-रस-सिद्धि की है। युद्ध के व्यापक व्यापार को विराट् स्तर पर चित्रित करके इन कवियों ने राम-काव्य की 'शक्ति-काव्य'[६८] संज्ञा को सार्थक किया है। आचार्य शुक्ल ने राम-काव्य में निरन्तर चलने वाली शक्ति की साधनावस्था को देखकर ही इसे शक्ति-काव्य की श्रेणी में रखा है। इसके अतिरिक्त चरित्रांकन में जीवन्तता का सन्निवेश करने के लिए भी राम-काव्यों में व्यापारगत स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है। हनुमान, कुम्भकर्ण आदि के युद्धगत व्यापार उनके वीरत्व, रण-कौशल आदि चारित्रिक गुणों पर स्पष्ट प्रकाश डालते हैं। अतः व्यापारमूलक स्वभावोक्ति अलंकार ने राम-काव्यो मे रमणीय चित्रमयता का समावेश किया है।

सन्दर्भ

१. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृ० २३३
२. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, रहस्य सर्ग।
३. डॉ० वचनदेव कुमार : रामचरित मानस में अलंकार योजना, पृ० १९९-२००
४. लालदास : अवध विलास, पृ० १६४
५. वही, पृ० १७२
६. तुलसी : कवितावली, १।४
७. तुलसी : गीतावली, १।३२-५
८. तुलसी : रामचरित मानस, १।२०२।३-४
९ तुतरे बचन बोलि किलकाही।
नृप रानी सुनि सुनि मन माही॥ —लालदास : अवध विलास, पृ० १३८
१०. तुलसी : रामचरित मानस, १।३३३-४
११. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १६७

१२. तुलसी : रा० च० मा०, २।४३।२-३
१३. वात्सल्य अवस्था चित्त से सम्बद्ध है किन्तु उसका व्यक्त रूप क्रिया है।
१४. लालदास : अवधविलास, पृ० १३६
१५. वही
१६. तुलसी : रा० च० मा०, २।११६।३-४
१७. केशव : रा० च० २।३३
१८. शृंगार को पीछे हमने अवस्था में भी लिया है किन्तु चित्त की अवस्था गुह्य, अप्रकट होती है जबकि शृंगार चेष्टाएँ मूर्त्त, स्पष्ट एवं व्यक्त होती है।
१९. डॉ० वचनदेव कुमार : रामचरित मानस में अलंकार योजना, पृ० २०१
२०. केशवदास : रामचन्द्रिका, ७।२८
२१. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ११२
२२. तुलसी : रा० च० मा०, सुन्दरकाण्ड, २४।३
२३. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ११४
२४. तुलसी : रा० च० मा०, ५।२५।१-२
२५. लगी ज्वाल धूमावली राजै।
× × ×
तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं।
× × ×
चली भागि चौहू दिसा राजरानी।
मिली ज्वाल-माला फिरै दुःखदानी॥ —केशव : रा० च० ५।६२-६३-६५
२६. तुलसी : कवितावली, ५।१२
२७. वही, ५।१५
२८. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ११५
२९. तुलसी : कवितावली, ५।१८
३०. लपट कराल ज्वालजालमाल दहूं दिसि,
धूम अकुलाने पहिचाने कौन काहि रे?
पानी को ललात बिललात जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, भ्रात! तू निबाहि रे।
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ! तू पराहि, बाप,
बाप! तू पराहि, पूत पूत! तू पराहि रे।
—तुलसी : कवितावली, ५।१६
३१. केशव : रा० च०, ५।६६
३२. मध्ययुगीन राम-काव्यों में रसिक धारा के कवियों ने तो इस प्रसंग का वर्णन नहीं किया है किन्तु मर्यादावादी राम-काव्यों में समुद्र को जड़ और अज्ञ बताकर राम भक्ति की महिमा प्रतिपादित की है। भक्तिमूलक दृष्टिकोण होने के कारण स्वभावोक्ति की सम्भावना यहाँ कम है।

३३. सेनापति : कवित्त रत्नाकर, ४।४३
३४. वही, ४।४८
३५. लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुन्दर नीति॥
—तुलसी : रा० च० मा०, ५।५७-१
३६. केशव : रा० च०, ६।६
३७. सेनापति : क० र०, ४।५०
३८. तुलसी : रा० च० मा०, ६।१-१
३९. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १०९
४०. सूरदास : सू० सा०, ९।३२५
४१. तुलसी : रा० च० मा०, ५।३४, छन्द १
४२. नरहरि : पौरुषेण रामायण, पृ० १६३-६४
४३. केशव : रा० च०, २।५१
४४. वही, २।५४
४५. तुलसी : रा० च० मा०, ६।७८।१-२
४६. केशव : रा० च०, ५।७७
४७. वही, ६।१३२
४८. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १४८
४९. तुलसी : रा० च० मा०, ६।८०।२-३
५०. वही, ६।८०, छ० १
५१. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १४८
५२. वही, पृ० १६३
५३. तुलसी : रा० च० मा०, ६।६६, ३
५४. नाथ भूधराकर सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥
५५. तुलसी : रा० च० मा०, ६।६६, २
५६. इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥
—तुलसी : रा० च० मा०, ६।८१।३
५७. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ७०
५८. तुलसी : रा० च० मा०, ६।४२, ३-४
५९. तुलसी : कवितावली, ६।४१
६०. कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥—तुलसी : रा० च० मा०, ५।१८
६१. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १४८
६२. जौ तुम्हार अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
—तुलसी : रा० च० मा०; बालकाण्ड

६३. तुलसी : रा० च० मा०, ५।५४, ३-४
६४. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १२०
६५. सेनापति : क० र०, ४।६२
६६. तुलसी : रा० च० मा०, ६।४०, ३-४
६७. नरहरि (अ० च०) पौ० रा०, पृ० २४४-४५
६८ तुलसी : रा० च० मा०, ६।५२, ३-४
६९. वही, ६।६७।३-४
७०. केशव : रा० च०, ६।६९
७१. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १६०
७२. वही, पृ० १६५
७३. एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहं तहं राम जसु गावत भए॥

—रा० च० मा०, ६।४०-१

७४. तुलसी : रा० च० मा०, १।२५१-४
७५. वही, २।४७-४
७६. वही, ७।८७-३
७७. केशव : रा० च०, १।१४३
७८. भारतीय समाज में विवाहादि के सामूहिक अवसरों पर स्त्रियों द्वारा अपने सम्बन्धियों को उपालम्भ देने की सामाजिक परम्परा हर्ष एवं विनोद के रूप में संस्कृति का अंग बन गई है।
७९. लालदास कृत 'अवध विलास' की एक हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के आर्य पुस्तकालय, बनारस में सुरक्षित है किन्तु वह प्रस्तुत ग्रन्थ की लेखिका को उपलब्ध नहीं हो सकी। एक अन्य खण्डित प्रति लेखिका को उपलब्ध हुई है जिसे प्रस्तुत विवेचन में सम्मिलित किया गया है। इसमें रामचरित का अंश पूर्ण है।
८०. लालदास : अवध विलास, पृ० १३०
८१. वही, (हस्तलिखित प्रति से)
८२. तुलसी : जा० मं० १२, १३, १४
८३. सदगुरुशरण अवस्थी : तुलसी के चार दल, भाग-२, पृ० १५२-५३
८४. तुलसी : रा० ल० न० ६
८५. वही, ७
८६. सदगुरुशरण अवस्थी : तुलसी के चार दल, भाग-२, पृ० ७-८
८७. डॉ० श्रीधर सिंह : तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा का अध्ययन, पृ० ४५८
८८. स्वभावोक्ति अलंकार के समर्थक आलंकारिकों ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है

कि स्थूल क्रिया-वर्णन (यथा गो आदि का पुरीष-मूत्र-मोचन आदि) काव्य के सौन्दर्य में बाधक है अस्तु सूक्ष्म और चारु क्रिया-वर्णन ही स्वभावोक्ति का विषय है। इस प्रकार कवि को अपनी प्रतिभा और विवेक से सूक्ष्म क्रिया का चयन करना चाहिए।

८९. तुलसी : गीतावली, ३।१७।३
९०. वही, २।२७
९१. वही, ७।३ से १३ तक
९२. वही, ७।४
९३. तुलसी : रा० च० मा०, १।१५६।१-२
९४. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ३८
९५. तुलसी : रा० च० मा०, ३।२७।५-६-७
९६. नरहरि : पौ० रा०, पृ० ३४३
९७. तुलसी : रा० च० मा०, २।१४२, २।१४२।३-४
९८. डंटन (Theodore watts Dunton) ने काव्य के दो प्रकार बताए हैं—शक्ति-काव्य ((Poetry as energy) तथा कला-काव्य (Poetry as an art)।

७

राम-काव्य में प्रयुक्त स्वभावोक्तियों का रचनात्मक शिल्प

रचनात्मक शिल्प ही कवि के सहज सामान्य कथन को स्वभावोक्ति अलंकार की परिधि में लाता है। शिल्पगत वैशिष्ट्य के अभाव में कवि का वर्णन अपनी स्वाभाविक अलकारता खोकर मात्र वस्तु-वर्णन रह जाता है। अत: स्वभावोक्ति अलकार का अस्तित्व कवि के उस रचना-कौशल में निहित है जहाँ वह अपनी अभिव्यक्तिगत विशिष्टता के द्वारा सामान्य वस्तु के वर्णन में भी आह्लादकारी चमत्कार का सृजन करता है। इस दृष्टि से भाषा एवं छन्द स्वभावोक्ति अलकार के विधायक तत्त्व सिद्ध होते हैं। भाषा के क्षेत्र में शब्द-चयन, वाक्य-रचना, माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुणों का रसानुकूल प्रयोग आदि अध्ययन के विषय हैं। छन्दो को भी विषय एव रस के परिप्रेक्ष्य में विवेचित किया जा सकता है।

मध्ययुगीन राम-कवियों ने अपनी राम-कथा को तात्कालिक जन-जीवन के परिवेश मे सर्वग्राह्य रूप प्रदान करने के लिए युग की प्रतिनिधि ब्रज एवं अवधी[1] भाषाओं को अभिव्यक्ति का साधन बनाया। राम के अलौकिक भव्य चरित्र को अति सहज रूप में जन-मानस तक पहुँचाने के लिए इन कवियों ने स्वभावोक्ति अलकार का यथेष्ट प्रयोग अपने काव्यों में किया है। अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के चमत्कार से राम कवियों ने जीवन की अत्यन्त साधारण अनुभूतियों के आकर्षक एवं रमणीय चित्र प्रस्तुत किए हैं। अवधी भाषा को महाकवि तुलसी की कलात्मक चेतना से वह परिष्कार प्राप्त हुआ जो जायसी अपने पद्मावत में (अवधी का प्रथम महाकाव्य होने के कारण) नहीं कर पाए थे। ब्रज भाषा कृष्ण-कवियों का संसर्ग पाकर परिमार्जित हो चुकी थी। तुलसी आदि सभी राम-कवियों ने विदेशी भाषाओं से भी शब्द-ग्रहण करके ब्रज एवं अवधी को अत्यन्त सशक्त बना दिया है।

भाव की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति को लेकर ही किसी भाषा की महत्ता है अन्यथा चमत्कार प्राण रस की संवाहिका वह कैसे बन सकती है? भाषा की अर्थप्राणता को लेकर ही महाकवि तुलसी ने कहा है—

का भाषा का संसकृत प्रेम चाहिए सांच।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमांच॥[2]

जन-भाषा अवधी में लिखे गए 'रामचरित मानस' में भी संस्कृत प्रेमियों को प्रत्येक सोपान के प्रारम्भिक मंगलाचरण में एव ग्रन्थ के उपसंहार में सुन्दर संस्कृत श्लोक सहसा मुग्ध कर लेते हैं। सोलहवीं शती के समाज में विद्वानों का सस्कृत के प्रति मोह होने के कारण ही कदाचित् केशव ने (जन-भाषा में अपना काव्य लिखने के कारण) आत्म निन्दा की है—

भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति तेहि कुल केशवदास।।[3]

केशव की परिनिष्ठित ब्रज भाषा में इसी कारण तत्सम शब्दावली का बाहुल्य देखने को मिलता है।[4] तुलसी की 'विनय पत्रिका' की भाषा भी संस्कृत शब्दावली का बाहुल्य लिए हुए है।

(क) शब्द-चयन

तुलसी, केशव, विष्णुदास, सूर आदि सभी मध्यकालीन राम-भक्त कवियों ने मानव-जीवन के विविध तथ्यों, सहज संवेदनाओं तथा प्राकृतिक स्वभावों का जीवन्त चित्रण करने के लिए अभिधात्मक शब्दावली को ग्रहण किया है। अपनी विविध चित्रांकन प्रतिभाओं के अनुसार इन कवियों ने तत्सम, अर्धतत्सम, तद्भव, देशज, अन्य प्रदेशज, ध्वन्यात्मक तथा विदेशी आदि अनेक प्रकार के शब्दों को विविध भावार्थों के संवाहक बनाकर प्रस्तुत किया है। भावानुकूलता को दृष्टि में रखकर कहीं-कहीं इन कवियों ने शब्दों में या तो किसी प्रादेशिक भाषा की प्रकृति के अनुरूप परिवर्तन कर लिया है अथवा आवश्यकता पड़ने पर मौलिक शब्द निर्माण भी किया है। अस्तु इन कवियों के शब्द-भंडार पर व्यापक रूप से दृष्टिपात करना स्वभावोक्ति की उपादेयता के पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक है।

(अ) तत्सम शब्द

संस्कृत के जिन शब्दों को बिना किसी परिवर्तन के हिन्दी भाषा में प्रयोग किया जाता है उन्हें हम तत्सम शब्द कहते हैं। 'रामचरित मानस'[5] आदि राम-काव्यात्मक ग्रन्थों में स्वभावोक्ति अलंकार के विविध स्थलों पर तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होता है। इन शब्दों की एक संक्षिप्त सूची इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है—

रुचिर, रद, महिष, विदूषक, मृदंग, नृप, महि, मूत, स्यंदन, मर्कट, कौतुक, नयन, जलजात, स्रवत, भ्रकुटी, प्रतिबिंब, हय, आयुध, किंकर, तरुवर, तीक्ष्ण, कराल, ते, दर्शन, मत्त, विह्वल, सुकृत, भट, दुंदुभि, चमू, त्रास, सिंधु, नीर, जीव आदि। भाव को सम्पूर्णतः अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए कहीं-कहीं तत्सम शब्दावली ब्रज अथवा अवधी के ढाँचे में रखकर प्रस्तुत की गई है उदाहरणार्थ—

(क) **कहां तात, मात, भ्रात भगिनि भामिनी भाभी।**[6]
(ख) **सूखे सब सरवर सरिता सकल जल**[7]

(ग) पवन तनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा।।
× × ×
भजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महं मारेसि लाता।।[८]

(घ) जुद्ध-मद-अंध दसकंधर के महाबली
× × ×
कोउ तुंग शृंगनि उतंग भूधरन कोउ[९]

(ङ) तहां देव द्वेषी दसग्रीव आयो।
× × ×
× × ×
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो।[१०]

उपर्युक्त उद्धरणों में क्रमशः रेखांकित तात, भगिनि, भामिनी आदि शुद्ध संस्कृत शब्दों के साथ मातृ को मात भ्रातृ को भ्रात के रूप में व्रज भाषा में खपाने का प्रयत्न किया गया है। तीसरे उद्धरण मे क्रोध का क्रोधा, गर्जेउ में उ ध्वनि का योग भाषा का प्रवृत्त्यात्मक प्रयोग है। इसी प्रकार निपात का निपाता छन्द के आग्रह से तथा मारेसि भाषात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है। जुद्ध-मद-अंधपद मे तत्सम एवं अर्धतत्सम शब्दावली का समन्वित प्रयोग हुआ है। तुंग शृग का व्रज भाषा की बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति के अनुरूप शृंगनि और भूधर का भूधरन हो गया है।

(आ) अर्धतत्सम शब्द

वर्णों के अत्यल्प परिवर्तन से जिन शब्दों की रगत बदल जाती है उन्हें हम अर्धतत्सम शब्द कहते हैं। स्वभावोक्तियों में प्रयुक्त शब्दों का एक पक्ष उनके स्वरूप का है दूसरा उनके अर्थ-विस्तार का। सूक्ष्म परिवर्तन के द्वारा जहाँ शब्द तत्सम से अर्धतत्सम के धरातल पर आ जाता है वहाँ उसमे भाव-गाम्भीर्य के द्वारा लोक-रुचि का स्पर्श बढ़ जाता है, यथा—

सखी री कौन तिहारी जात
राजिव नैन धनुस कर लीन्हे मृदुल मनोहर गात।[११]

यहाँ जाति से ह्रस्व इ हटाकर तथा धनुष के मूर्धन्य 'ष' को दन्त्य स मे बदलकर अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन के द्वारा तत्सम तथा ग्राम्य के मध्य का अर्धतत्सम रूप दे दिया गया है। विधुबदन, वृषभ, कृत, सायक, सिथिल, पिय, सरीर, समूर, गय आदि भी इसी प्रकार के प्रयोग हैं। राम-काव्यगत स्वभावोक्तियों में तत्सम एवं तद्भव शब्दों की तुलना में अर्ध-तत्सम शब्दों का प्रयोग न्यून है।

(इ) तद्भव शब्द

व्यवहार की सुदीर्घ परम्परा में पड़कर मुख-सुख अथवा प्रयत्नलाघव के कारण संस्कृत शब्दों का परिवर्तित सरल रूप तद्भव कहलाता है। तद्भव शब्द जन-भाषा का एक

महत्त्वपूर्ण अग हैं। अवधी और ब्रज आदि जन-भाषाओ में स्वभावोक्ति के माध्यम से जीवन की विविध यथार्थ अनुभूतियों का मार्मिक चित्रांकन करने वाले राम-कवियों ने मर्मस्पर्शिता के आग्रह मे अधिकाशत: तद्भव शब्दो का प्रयोग किया है। कुछ तद्भव शब्दों को उनके मूल सस्कृत स्रोतो के साथ यहाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत किया जाता है—

छार (क्षार), गय (गज), राजभौन (राज भवन), छितीश (क्षितीश), जुवति-जूथ (युवति-यूथ), बेनु (वेणु), महीस (महीश), सादु (शार्दूल), राखस (राक्षस), दीरघ (दीर्घ), सुमिर (स्मर), तरनि (तरणि), पाउक (पावक), तुमार (तुषार), वकला (वल्कल), कुसासन (कुशासन), खन (क्षण), विवरन (विवर्ण), षिनकु (क्षणिक), जीहा (जिह्वा), सदेस (सदेश), लकेसुर (लकेश्वर), वैन (वचन) आदि। तद्भव रूपों में भी अपभ्रश, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, खडी बोली आदि विविध रूपो का रामकाव्यगत स्वभावोक्तियों मे प्रचुर प्रयोग हुआ है। अपभ्र श के हथ्यारै, उछाह, उछग, भतार, नग्र, लामी, डोल्लहि, बगराएँ आदि राजस्थानी के अनख, फरम, भुव (भूमि) ब्रज के आयौ, कगूरनि, पचारत, लिलार, राकम, भाजि, मांझ, सैन, पियरो अवधी के रहिषौ, ह्वैहौं, लिहे, खड़ी बोली के खोज, एक, मुँह, जीभ, नगर आदि विविध तद्भव शब्दों का रामकवियो ने स्वभावोक्ति अलकार मे आवश्यकतानुरूप प्रयोग किया है।

तद्भव शब्दों का प्रयोग भावात्मक ऊँचाई को जन साधारण के स्तर तक लाने के लिए तो होता ही है साथ ही अर्थ के उत्कर्ष एव अपकर्ष का विचार भी रहता है। किसी एक तत्सम शब्द के द्वारा जहाँ कवि उत्कृष्ट भाव की व्यजना करता है वहाँ उसी शब्द के तद्भव रूप से अपकृष्ट अर्थ को भी अभिव्यक्त कर सकता है। अस्तु इस दृष्टि से तत्सम एव तद्भव शब्दों के व्यवहार का एक वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक आधार कवि के सम्मुख रहता है। उदाहरण के लिए ताडका का स्वरूप-वर्णन प्रसंग लिया जा सकता है—

धाई सुनत वदन बिकरार। चहुंदिसि सिर बगराएं वार॥
नान्हें नयन बदन मसियार। दीसति कुटिल काल अनुहार॥
कान देखियत सूप समान। नासा निमन नैन मसि बान॥
ऊरध जंघ करति अति गाज। सुनतहिं सबद सिंह गज भाज॥[३२]

इस प्रसंग मे कवि ने रूप की भयंकरता को और अधिक उभारने के लिए नान्है, मसियार, बगराएँ, सूप, निमन, भाज आदि तद्भव रूपों का प्रयोग किया है।

(ई) देशज शब्द

किसी विशेष प्रदेश में प्रचलित परम्पराओं अथवा लोक-रीतियों के परिचायक शब्द ही देशज कहलाते है। स्वभावोक्तियों के अन्तर्गत मध्यकालीन राम-कवियों ने देशज शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। परम्परागत चली आ रही गौरवपूर्ण राम-कथा को मध्ययुगीन कवियों ने अवधी, ब्रज आदि प्रदेशों की लोक-संस्कृति के परिवेश में जन-

साधारण के हृदय का हार बना दिया। देशज शब्दों का प्रयोग स्वभावोक्तियों की सहजता एव जीवन्तता के लिए अनिवार्य है। विवेच्य राम-काव्य में स्वभावोक्तियों को अनुभूति के यथावत् रूप मे प्रस्तुत करने के लिए कवियों ने निम्नलिखित देशज शब्दावली का प्रयोग किया है—

छेरी, बुधकारी, भयमत, चांचरि, झूमक, भगुआ, डफ, रिस, झंक, औंजि, सौंज, लुकओ, जोवत, नहरनी, लगूर, सिहाहिं, पनहि, भौर, घाली, सथरी, नाउनि, झीनी, झगुली, गहबरि, दुरायो, हियरा, झिरै, तबोलिनी, पालने आदि।

(उ) ध्वन्यात्मक शब्द

ध्वनि-स्फोटक शब्दों को हम ध्वन्यात्मक शब्द कहते है। स्वभावोक्तिगत चित्रमयता को सप्राण बनाने के लिए ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। मध्ययुगीन राम-कवियों ने सेना, युद्ध आदि के सहज वर्णन को जीवन्त बनाने के लिए ध्वन्यात्मक शब्दों का आश्रय लिया है। राम-काव्यगत स्वभावोक्तियों में व्यवहृत ध्वन्यात्मक शब्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

किक्यान[13], किलकिलाइ[14], चिक्करहिं[15], हींसत[16], धसमसति।[17]

इन उद्धरणों मे जहाँ 'किक्यान' शब्द वानरों के दाँत किटकिटाकर क्रोधापूर्वक ध्वनि उत्पन्न करने का चित्र प्रस्तुत करता है वहाँ 'किलकिलाइ' शब्द उनकी विजय दर्प से उन्मत्त हर्षध्वनि को प्रकट करता है। 'चिक्करहिं' शब्द युद्ध-क्षेत्र में चारों ओर व्याप्त हाथियों की चिंघाड़ को मूर्त्त करने में सक्षम है। 'हींसत' शब्द के द्वारा युद्धरत अश्वों की भीषण हिनहिनाहट व्यक्त हो जाती है तथा 'धसमसति' शब्द के द्वारा उत्तेजनापूर्ण वातावरण के प्रभाव से धसती हुई पृथ्वी का चित्र उभरकर आता है।

(ऊ) विदेशी शब्द

किसी भाषा में विदेशी शब्दों का प्रवेश प्रायः किसी राजनीतिक परिस्थिति का परिणाम हुआ करता है। मध्यकालीन हिन्दी-कविता मे अरबी-फारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग उपलब्ध होता है। तुलसी की विनय-पत्रिका में विदेशी शब्दों के बाहुल्य के साथ-साथ शैलीगत प्रभाव भी देखा जा सकता है। यद्यपि तुलसी, सूर, केशव, सेनापति, नरहर आदि का वातावरण दरबारी मुगल-वैभव और उनकी रीति-नीति से पूर्णतः सम्पृक्त था—इसी कारण इन कवियों के काव्यों में यत्र-तत्र अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है, किन्तु स्वभावोक्ति अलंकार के विविध प्रयोगों में विदेशी शब्दों का प्रयोग लगभग न के बराबर है। वस्तुतः जिस जन-सस्कृति का चित्रण इन कवियों ने अपने काव्यों में किया है उसके लिए विदेशी भाषा किसी भी अर्थ में उपयोगी नहीं थी।

(ए) शब्द-दोष : एक आक्षेप

तुलसी आदि राम-कवियो के संस्कृताभास शब्दों को लेकर उन्हें असाधु प्रयोग कहते हुए

उनमें च्युतसंस्कृति दोष देखना अथवा कवि को सस्कृत से अनभिज्ञ समझना ठीक नहीं है। वस्तुत: ये कवि सभी प्रकार के पाठकों को दृष्टि मे रखकर काव्य-रचना कर रहे थे। तुलसी के काव्य की सर्वांगीण-मीमांसा उपस्थित करते हुए डॉ० उदयभानु सिंह ने इसी प्रकार की धारणा व्यक्त की है।[२८]

(ख) लोकोक्तियाँ और मुहावरे

भाषा में जीवन्तता, रसवत्ता एव प्रांजलता-जन्य निखार का समावेश अवसरानुकूल मुहावरों के प्रयोग द्वारा सम्भव है। सामान्य जीवन की सुदीर्घ परम्परा मे विविध सामाजिक-सास्कृतिक परम्पराओं का सारभूत अंश मुहावरो में सचित रहता है। अस्तु इनके प्रयोग से भाषा मे विलक्षण चमत्कार का सृजन होता है। यद्यपि मुहावरो के मूल मे लक्षणा शक्ति कार्यरत रहती है किन्तु बार-बार प्रयोग किए जाने पर लक्षणा की दुरूहता इनमे नही रहती। डॉ० मनोहरलाल के शब्दों मे—"मुहावरेदार वाक्यो में वाचक वाक्यों की अपेक्षा चमत्कार और अर्थ द्योतन की विस्तृत भूमि तो अधिक होती है, पर लक्षणाओं की-सी दुरूहता इनमे नहीं होती।"[२९]

अभिधामूलक स्वभावोक्ति अलकार मे मुहावरों का प्रयोग करके भाषा को अधिक भावमय एवं तीखी बनाने का आकर्षक शिल्प भी राम-काव्यो मे देखने को मिलता है। इस तथ्य के समर्थन में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(क) खीझति मदोदै सविषाद देखि मेघनाद,
क्यो लुनियत सब याही दाढीजार को।[३०]

(ख) कोई मुरकि न देखहि दीठि। कोऊ मुरि न **चलै दै पीठि**॥[३१]

(ग) परम क्रोध **मीजहिं सब हाथा**। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥[३२]

(घ) बार बार **ले लै बलाइ**, गोदनि बैठारे॥[३३]

(ङ) **गदगद कंठ** 'सूर' कौसलपुर, सोर सुनत दुख पाये॥[३४]

(च) रूप देखि देखि रानी, **वारि फेरि पियै** पानी,
प्रीति सौं **बलाइ लेत** कैयौ कर चटके॥[३५]

(छ) **एक परे गाढ़े** एक डाढ़त ही काढ़े, एक
× × ×
'तुलसी' कहत एक नीके हाथ लाए करि,
अजहू न छोडे बाल **गाल को बजावनो**॥[३६]

रेखांकित उद्धरणो मे क्रमश:—(१) बोया हुआ काटना (जैसा बोओगे वैसा काटोगे), (२) (युद्ध में) पीठ दिखाना, (३) हाथ मलना, (४) बलाएँ लेना, (५) गदगद कंठ होना, (६) वार कर पानी पीना, (७) गाढ़े में पडना, (८) गाल बजाना आदि मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग एक ओर भाषा को जीवन्त बनाता है तो दूसरी ओर स्वभावोक्ति की सहजता में अर्थ-गाम्भीर्य का सन्निवेश करता है। यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि राम-कवियों द्वारा स्वभावोक्ति अलंकारों में प्रयुक्त भाषागत चमत्कारों

से कही भी दुरूहता, उत्पन्न नही होने पाई है। इसका मुख्य कारण भी इन कवियों की चयन-प्रतिभा ही है। इन्होंने उन मुहावरो और लोकोक्तियों को ग्रहण किया है जिनका प्रयोग जनता मे इतना सामान्य हो चुका है, कि उनकी लाक्षणिकता तक पहुँचने के लिए पाठक को अभिधा के समान ही समय लगता है।

(ग) गुण, वृत्ति और रीति

भारतीय काव्य-शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्यों न आत्मा के शौर्यादि गुणों की भाँति ही काव्य के उत्कर्षक धर्म माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि को मान्यता प्रदान की है।[२७] काव्य की आत्मा यद्यपि रस है किन्तु उसे प्रतिष्ठित करने वाले शरीर धर्म शब्दो का महत्त्व भी कम नही है। रस की चरम परिणति के लिए उचित शब्द-योजना की महती आवश्यकता रहती है। रसानुकूल शब्द-चयन रसानुभूति की परिणति प्राप्त करता है, इसके विपरीत प्रतिकूल शब्द योजना रस की व्याघातक ही नहीं काव्यत्व की भी विनाशक हो सकती है। इस प्रकार अक्षरों शब्दों आदि की उचित योजना भाषागत वैशिष्ट्य की ही परिचायक नहीं है, अपितु काव्य के मुख्य प्रयोजन रस की विधायिका भी है। अस्तु स्वभावोक्ति-अलंकार के भाषागत शिल्प की विवेचना करते समय गुण-योजना पर दृष्टिपात करना भी वांछनीय हो जाता है।

काव्य का प्रमुख आधार शब्द है जो रस, गुण आदि की उत्पत्ति में सहायक होता है। शब्दों में (अर्थ-वहन की) योग्यता, आकांक्षा आदि विद्यमान होने पर भी उनका सुष्ठु चयन एवं अवसरानुकूल प्रयोग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। रस के अनुकूल शब्द और अर्थ की योजना को ही विद्वानो ने 'वृत्ति' कहा है।[२८] रस एव भावादि को प्रभावशाली बनाने वाली शब्द और अर्थ की विशिष्ट योजना ही 'रीति' कहलाती है।[२९] माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि प्रमुख तीन गुणो के अनुरूप ही मधुरा (उपनागरिका), परुषा और प्रौढा (कोमला) आदि शब्दाश्रित तीन वृत्तियाँ स्वीकार की गई हैं। इन्हीं गुण-वृत्ति-भेदों को ध्यान मे रखकर वाक्य या पद-रचना की क्रमशः वैदर्भी, गौड़ी तथा पांचाली आदि तीन प्रमुख रीतियाँ आचार्यों ने स्वीकार की है। मध्ययुगीन राम-काव्यों में स्वभावोक्ति अलंकार के विविध रूपों में हम उपर्युक्त सभी रीति-वृत्तियों का समुचित प्रयोग देख सकते हैं।

(१) माधुर्य गुण, की संयोजना

रीतिवादी आचार्यों ने सरल एवं मार्मिक प्रसगों के उद्घाटन के लिए इस रीति को उपर्युक्त बताया है। इस रचना-शैली मे कर्ण-कटु शब्दों का त्याग कर, कवि कोमल, श्रुति-मधुर, ललित शब्दो की योजना द्वारा शृंगार, करुण आदि कोमल रसों की सिद्धि करता है। माधुर्य गुण का मूल तत्त्व चित्त द्रुति होता है। स्वभावोक्तियों के प्रसंग में राम-कवियों ने अवस्था-चित्रण के विविध अवसरों पर माधुर्य-गुण संवलित शब्दावली का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण इस प्रसंग में अवलोकनीय है—

(अ) कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयौ।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायौ ॥
कहन चह्यो संदेस नहि कह्यो पिय के जिय की जानि
हृदय दुसह दुख दुरायो ॥[30]

(आ) सुनि सुनि लक्ष्मण भीत अति, सीता जू के बैन।
उत्तर मुख आयो नही जल भरि आये नैन ॥[31]

(इ) लछमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछु नहिं आयौ, रहे चरन लपटाए ॥[32]

(ई) घरी चार मुरछित भयो वीर। तब फिरिके संभलत सरीर ॥
जब चेत्यौ दुख करत बहूत : बारहिंबार पुकारत पूत ॥
मेघनाद गुन हियरा घरइ। अति विलाप लंकेसुर करइ ॥[33]

उपर्युक्त उद्धरणों में क्रमश: सीता की भावातिरेकपूर्ण अवस्था, लक्ष्मण की अनुत्तरित विह्वल दशा एव रावण की शोकाकुल अवस्था के अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करने के लिए कवियों ने जिस शब्दावली का प्रयोग किया है उसे निस्सदेह असमस्त, कोमल एवं माधुर्य गुण-पूरित कहा जा सकता है। भाव की विह्वलतापूर्ण मार्मिक अवस्थाओं को दृष्टि-पथ में रखकर कहा जा सकता है कि राम-कवियों ने मानवीय सवेगों की विदग्धता-पूर्ण चेतना को मूर्त्तिमन्त करने के लिए अपने काव्यों में कोमल, सरल एवं स्निग्ध शब्दावली का प्रयोग किया है।

शृंगारपरक स्वभावोक्ति के प्रसंगों में भी राम-कवियों की शब्द-योजना माधुर्य-गुण-संवलित है। यद्यपि मर्यादावादी राम-कवियों ने राम-सीता की प्रणय-भावना को अति संक्षिप्त रूप मे व्यक्त किया है, तथा शृंगारी राम-कवियों ने सीता-राम की प्रणय-केलि के अतीव अलकृत चित्र प्रस्तुत किए हैं तथापि कतिपय प्रसगों में जहाँ स्वभावोक्ति के माध्यम से रति-भावना प्रस्तुत हुई है, वहाँ इन कवियों ने कोमलकान्त पदावली का ही आश्रय ग्रहण किया है।[34]

(२) ओज गुण का समावेश

ओज गुण को चित्त का दीप्तिकारक माना गया है। उत्तेजना और आवेश के क्षणों में चित्त में इस गुण की प्रधानता होती है। काव्य मे युद्ध, क्रोध आदि उत्तेजनापूर्ण प्रसंगो का वर्णन करते समय भाषा में भी चित्त की दीप्ति का यथावत् प्रतिबिम्ब पडता है। इसी को हम दूसरे शब्दों में ओजमयी भाषा कहते है। वस्तुत: युद्ध आदि का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करने के लिए भाषा का ओजगुण उतना ही अनिवार्य है जितना युद्ध-भूमि में लड़ते हुए सैनिक के हाथ की तलवार।

राम कवियों ने राम के वीरोचित गुणों का समुचित आख्यान करने के लिए ओजगुण-युक्त शब्दावली का प्रयोग किया है। युद्ध आदि चित्त-प्रदीप्तिकारक भावों का वर्णन करते समय कवि को कर्ण-कटु, भयंकरता-सूचक एवं उत्तेजक शब्दावली का प्रयोग

करना चाहिए जिससे श्रोता के बाहु-द्वय फडक उठें, आरक्त नयनों में उत्तेजना की कौध व्याप्त हो जाए।[३५] राम का निरन्तर निशाचर-संघर्ष ओजस्वी तत्त्व की पर्याप्त भूमिका प्रस्तुत करता है। मध्ययुगीन राम-कवियों ने युद्ध के प्राय: ओजस्वी, उत्तेजक एवं वीरता-परक चित्र प्रस्तुत करने के लिए उपर्युक्त शब्दावली का प्रयोग किया है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए कुछ स्थल अवलोकनीय हैं—

(क) हय बंदर राखस संघारहिं राखस परे अनत।
हय हींसत गैयर गुंजारत होत साधु भयमत ॥[३६]

(ख) कटक अगनित जुर्‌यौ, लंक खरभर पर्‌यौ, सूर कौ तेज धर धूर ढांप्यौ ॥[३७]

(ग) एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं ॥
मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं ॥[३८]

प्रस्तुत उद्धरणों में 'ग', 'घ', 'ट', 'थ', 'ढ', 'म' आदि परुष ध्वनियों के प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति को ओजपूर्ण बनाया गया है। 'जुरयौ', 'पर्‌यौ', 'एकन्ह', 'सीसन्ह' आदि संयुक्ताक्षरों का प्रयोग भी भाषा में वातावरण की परुषता को मूर्त करने में सहायक सिद्ध होता है।

(३) प्रसाद गुण का सन्निवेश

सरल शब्दावली के प्रयोग द्वारा भावों की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति से पाठकों का मन प्रसन्न करने वाला भाषा का विशिष्ट गुण प्रसाद कहलाता है। जीवन के सामान्य तथ्यों का सुबोध शैली में उद्‌घाटन करते समय कवि की वाणी मे प्रसाद गुण का स्वत: समावेश हो जाता है। राम-कवियों ने राम के सर्वांगीण जीवन-चरित्र को इसी कारण अपने काव्यों का आधार बनाया है कि जिससे जीवन के कोमल-उद्धत, सरस-जटिल सभी प्रसंगों के चित्रांकन का अवसर वे पा सकें। प्रसादगुण-युक्त काव्यांशों के राम-काव्यों में अनेक उदाहरण उपलब्ध किए जा सकते हैं। इस सन्दर्भ में कतिपय सुन्दर स्थल अवलोकनीय हैं—

(क) जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।
'तुलसी' रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै बैठे विलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े ॥[३९]

(ख) रघुनदन आये, सुनि सब धाये पुरजन जैसे तैसे।
दर्शन रस भूले तन मन फूले बरने जाहि न जैसे ॥
पति के संग नारी सब सुखकारी रामहिं यौं दृग जोरी।
जहं तहं चहुं ओरनि मिली झकोरनि चाहति चंद चकोरी ॥[४०]

उपर्युक्त स्थलों में क्रमश: विश्रान्त प्रिया सीता का अपने प्रिय पति के प्रति मार्ग में कुछ देर रुकने का सरल आग्रह अत्यन्त मार्मिक रूप से अभिव्यक्त हुआ है तथा राम-सीता आदि के वनवास से लौटने पर अयोध्यावासियों के सरल हृदय का हर्षोल्लास अति सहज

रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन स्थलों में अभिव्यक्ति की सहजता तथा सरलता भाव को स्पष्टता तो प्रदान करती ही है साथ ही प्रसाद गुण-युक्त शब्दावली सहृदय के निकट रसानुभूति के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण हो उठती है।

(घ) छन्द-विधान

काव्य के तत्त्वों में छन्द की महत्ता अन्यतम है, प्रायः सभी कवियों और विवेचकों ने इसे एक स्वर से स्वीकार किया है। कविता और छन्द के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए कविवर पंत के ये शब्द सम्भवतः अधिक सक्षम प्रतीत होते हैं—"कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द-हृत्कंपन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।"[४१] भावात्मक तरलता से परे हटकर पंत जी के शब्दों में सत्य का जीवन्त आभास मिलता है। छन्द वस्तुतः काव्य में रागात्मक तत्त्व के माध्यम से हार्दिक अनुभूतियों को मार्मिक अभिव्यक्ति का आकर्षण प्रदान करता है। मानवीय अनुभूतियों के वैविध्य के अनुरूप ही अभिव्यक्ति-रूप छन्द भी विविध होते हैं। छन्द और भाव की परस्पर अनुरूपता भाव, रस एवं शिल्प में सहजता, स्वाभाविकता एवं सटीकता का विधान करती है। भाव-विमुख छन्द किसी मानव-शरीर पर पहने अत्यन्त ओछे अथवा अति दीर्घ वस्त्रों की भाँति हास्यास्पद तथा अशोभन प्रतीत होता है। इसी कारण संस्कृत के पिंगलाचार्यों ने छन्द-साधना को कठिन कहा है।

मध्ययुगीन राम-कवियों का काव्य-विषय नवीन न होकर सस्कृत की सुदीर्घ साहित्य-परम्परा की सशक्त पृष्ठभूमि पर आधृत था। अतः हिन्दी के राम-कवियों को भाषा-काव्य की रचना करते समय छन्द-चयन कीसमस्या का सामना नहीं करना पड़ा। संस्कृत की विपुल साहित्य-निधि को उपजीव्य[४२] बनाकर इन कवियों ने संस्कृत के ही छन्दों को अपनी आवश्यकतानुसार ग्रहण कर लिया है।

विष्णुदास, ईश्वरदास, सूर, तुलसी, केशव, नरहर आदि सभी मध्ययुगीन राम-कवियों ने राम-चरित का गुण-गान करने के लिए विविध छन्दों मुख्यतः दोहा, चौपाई, रोला, कवित्त, दंडक, घनाक्षरी, मत्तगयंद, सवैया, सोरठा, भुजगप्रयात, चामर, चौबोला, विजया, रूपमाला, पद्मावती, मदनहरा, गीतिका आदि का भावानुरूप बहुशः प्रयोग किया है। यद्यपि हमारे आलोच्य राम-काव्यों में इतने अधिक छन्दों का प्रयोग हुआ है कि जिनका नाम परिगणन भी कठिन है किन्तु इन काव्यों में स्वभावोक्ति अलकार के प्रयोगों मे उपर्युक्त छन्दों का प्रमुखतः प्रयोग हुआ है। छन्द-प्रयोग के वैविध्य की इस प्रवृत्ति की ओर महाकवि तुलसी एवं केशव ने स्पष्टतः सकेत किया है—

(क) आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना॥[४३]

(ख) रामचन्द्र की चन्द्रिका बरनत हौं बहु छन्द॥[४४]

प्रबन्ध काव्य में सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन के नियम के कारण भी राम-काव्यों में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। मध्ययुगीन सभी राम-कवियों की तुलना में केशव ने सर्वाधिक विविधतापूर्ण छन्दों का प्रयोग किया है। छन्द-वैविध्य के इस मोह के कारण ही उनका

काव्य अपनी स्वाभाविक सरसता और लोकप्रियता खो बैठा है। वस्तुतः छन्द-वैविध्य काव्य में नूतन चमत्कार की सृष्टि वहाँ करता है जहाँ प्रयोग करने वाला प्रत्येक छन्द पर विशेष अधिकार रखता हो। पिंगलाचार्य केशवदास जी ने यत्र-तत्र छन्दों के लक्षणों का अतिक्रमण किया है साथ ही अपनी प्रखर रचनात्मक क्षमता का परिचय देने के लिए दो छन्दों के लक्षणों को मिलाकर कहीं नवीन मिश्रित छन्द बनाया है तो कहीं परम्परागत लक्षणों में अपनी रुचि से परिवर्तन कर दिया है। केशव की छन्द-रचना का निष्पक्ष परिचय हमें पन्त जी शब्दों मे प्राप्त होता है—"पिंगलाचार्य केशवदास जी अपनी रामचन्द्रिका को जिन-जिन ड्यौढ़ियों तथा सुरंगो से ले गए हैं, उनमें अधिकांश उनसे अपरिचित-सी जान पडती है, जिनके रहस्यो से वे पूर्णतया अभिज्ञ न थे। ऐसा जान पड़ता है, उन्होंने बलपूर्वक शब्दों की भीड को ठेल, छन्दो के कन्धे पिचकाकर अपनी कविता की पालकी को आगे बढाया है, नौसिखिये साइकिलिस्ट की तरह, जिसे साइकिल पर चढ़ने का अधिक शौक होता है, उनके छन्दों के पहिये बैलैन्स ठीक-ठीक न रहने के कारण, डगमगाते, आवश्यकता से अधिक हिलते-डुलते हुए जाते है।"[४५]

छन्दों मे दक्षता प्राप्त करने से पूर्व कवि को छन्दों के सकेतों पर नाचना पड़ता है। वस्तुतः प्रत्येक कवि के कुछ विशेष छन्द होते हैं जिनके माध्यम से वह अपने उद्‌गारों को भली प्रकार अभिव्यक्त कर पाता है। महाकवि विष्णुदास, ईश्वरदास तथा तुलसीदास ने दोहा और चौपाई छन्दो के प्रयोग में परिष्कृति एव प्रांजलता का, साधना की परिपक्वता तथा विशेष रुचि और रुझान का परिचय दिया है।

(च) चौपाई

सोलह मात्राओं का चौपाई छन्द अपनी सरलता, सरसता एवं कोमल राग तत्त्व के कारण (पन्त जी के शब्दों में) 'अनमोल मोतियों का हार है।' यह छन्द इतना सुबोध एव प्रवाहयुक्त है कि बालक, वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित सभी का कंठ-हार बन जाता है। प्रत्येक छन्द की अपनी एक विशेष गति होती है। अपनी इसी गति के कारण वह रस विशेष से सम्बद्ध रहता है। राम-कवियों ने वीर, शृगार, करुण सभी रसों में तथा स्वभावोक्ति अलंकार के विविध रूपों-अवस्था, रूप, क्रिया आदि में चौपाई छन्द का प्रायः प्रयोग किया है। इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(क) सुनि हनुमत सीता के बैन। रूँध्यौ कंठ झिरै जल नैन॥[४६]

(ख) व्याकुल भये भरथ विशेषा। नहीं सभारहीं सिर के केशा॥[४७]

(ग) बार-बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयं लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥[४८]

स्वभावोक्ति अलंकार के माध्यम से सहज भावभिव्यक्ति चौपाई छंद के परिवेश में अत्यन्त जीवन्त हो उठती है। यह छन्द सरल-सरस भावना को उल्लसित-मुखरित करने का अन्यतम माध्यम है। प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरित मानस' की भाषागत सजीवता का रहस्य इसी छन्द में छिपा है।

(छ) दोहा

भाव की गतिशीलता से सम्बद्ध दूसरा छन्द है दोहा। चौपाई में भावधारा निर्बाध प्रवाहित होती है तो दोहे में गतिशीलता तीव्रतर करने के लिए क्षणिक ठहराव होता है। चौबीस मात्राओं का यह छन्द हिन्दी-साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। केशव, तुलसी, विष्णुदास, नरहरि आदि कवियों ने दोहा छन्द का बहुशः प्रयोग किया है। इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) लक पहूँच्यौ पवनसुत, कुसुमनि वंद्यौ सीस ।।
आनंद्यौ विहस्यौ हंस्यौ नैन लक पुरि दीस ।।[४९]

(आ) आंसु बरषि हियरे हरषि, सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरनत है बहु भाइ ।।[५०]

(इ) भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ।।[५१]

(ई) शृङ्ग बेर सीमा सघन। बन सर सरित विसाल।
धुरत निसान दिसान धन। मिलि निहाउ गिरिमाल ।।[५२]

उपर्युक्त स्थलों में स्वभावोक्ति अलंकार को दोहा छन्द में निबद्ध किया गया है।

(ज) कवित्त

चौपाई, दोहा आदि छन्दों के अतिरिक्त राम-कवियों का अन्य प्रिय छन्द है कवित्त। महाकवि तुलसीदास ने 'कवित्तावली' तथा कविवर सेनापति ने 'कवित्तरत्नाकर' में इसी छन्द को ग्रहण किया है। छप्पय और सवैया को भी प्राचीन ग्रन्थों में कवित्त ही कहा गया है।[५३] छप्पय छन्द में रोला और उल्लाला का संयोग रहता है। प्रारम्भ में रोला छन्द के चार पद रखे जाते हैं और उसके पश्चात् उल्लाला छन्द के दो दल रखकर छह पद वाले छप्पय की रचना की जाती है। यह छन्द विशाल अभिव्यजन-सीमा रखने के कारण व्यापक भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है।

कवित्त के घनाक्षरी और दण्डक दोनो रूपों को राम-काव्यों में ग्रहण किया गया है। तुलसी का घनाक्षरी के प्रति अधिक मोह है तो केशव का झुकाव दण्डक की ओर अधिक है। सवैया के सुन्दर और मत्तगयंद आदि भेदों को राम-कवियों ने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है किन्तु जहाँ केशव की प्रवृत्ति सवैया के उपर्युक्त दोनों रूपों के प्रति समान है वहाँ तुलसी की वृत्ति मत्तगयंग और मनहरण में अधिक रमी है। वस्तुतः ये छन्द भाट और चारणों द्वारा अपने आश्रयदाताओं के प्रशस्ति गायन में अथवा युद्धों के उत्तेजक वर्णनों में अपनाये जाते थे। राम-कवियों का यद्यपि चारणों से भिन्न दृष्टिकोण रहा है फिर भी राम की शौर्य-कथा का गायन करने के लिए सशक्त माध्यम के रूप में इन छन्दों का प्रयोग किया गया है। यहाँ कुछ उदाहरण अवलोकनीय है—(मनहरण कवित्त)

(१) खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।

जीविका-विहीन लोग सीधमान, सोचबस,
कहैं एक एक एकन सौं 'कहाँ जाई, का करी ?'[५४]

(२) सूखे सब सखर सरिता सकल जल,
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।[५५] (दंडक)

(३) कतहुं विटप भूधर उपारि पर सेन बरक्खत।
कतहुं बाजि सौं बाजि मर्दि गजराज करक्खत।
चरन कोट चटकन चकोट अरि-उर-सिर बज्जत।
विकट कटक बिहरत, वीर वारिद जिमि गज्जत।
लगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवन-नन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत।।[५६] (छप्पय छन्द)

(४) सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक-धाम,
सेनापति देखि नैन नेंकहू न भटके।
रूप देखि देखि रानी, वारि फेरि पियें पानी,
प्रीति सौं बलाइ लेत कंयो कर चटके।[५७] (कवित्त)

(झ) अन्य छन्द प्रयोग

इन प्रमुख छन्दों के अतिरिक्त राम-कवियों ने अन्य छन्दों का प्रयोग किया है। महाकवि तुलसी ने दोहा-चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, बरवै, सोहर एव झूलना आदि छन्दों का विविधतापूर्ण प्रयोग किया है। सूरदास ने अपनी 'रामचरितावली' में पद-शैली को ही अपनाया है। कृष्ण-कवि सूर ने जिस शैली में कृष्ण चरित का गुण-गान किया है उसी को रामचरित के आख्यान के लिए उपयुक्त समझा है। सूर के पदों में भाव-गाम्भीर्य, मार्मिकता एवं अभिव्यक्ति की सहज स्वाभाविकता उपलब्ध होती है। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण पठनीय है—

कर कपे कगन नहिं छूटे।
राम सुपरस मगन यह कौतुक निरखि सखी सुख लूटै।
गावत नारि गारि सब दै दै, तात भ्रात की कौन चलावै।
तब कर डोर छुटै रघुपति जू जौं कौशल्या माइ बुलावै।[५८]

सूरदास पद-रचना में अपने भावों को सुन्दर ढग से अभिव्यक्त कर सके हैं। उनके पद अपनी सहजता के कारण लोक-रीतियों से सम्बद्ध एवं लोक-रुचि के लिए आकर्षक सिद्ध हुए हैं।

चमत्कार प्रिय केशव ने स्वभावोक्ति अलंकार के सन्दर्भ में मुख्यत: दोहा, सोरठा, कवित्त, चामर, मोहन, चन्द्रकला, तारक, तोटक, भूजगप्रयात, तोमर, निशिपालिका, विजय, दंडक, वंशस्थ, मोटनक, पद्मावती, मदनहरा, स्वागता, रूपमाला और गीतिका आदि का प्रयोग किया है। इनमें भी कवि ने भुजंगप्रयात तथा चामर की प्राय: आवृत्ति

की है जो कवि की रुचि का परिचय देती है। यहाँ इन छन्दों से एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(अ) धरे एक वेनी मिली मैल सारी
× × ×
सदा रामनामं ररे दीन दानी।[५६] (भुजगप्रयात)

(आ) दीह दुंदुभि अपार भाँति-भाँति बाजहीं।
युद्ध भूमि मध्य क्रुद्ध मत्त दति राजही।।[६०] (चामर)

निष्कर्षतः राम-कवियों ने अपने युग के पूर्व-प्रचलित सभी काव्य-पद्धतियों को पर्याप्त परिमार्जित किया और साथ ही सभी शैलियों को समन्वयात्मक स्तर पर ग्रहण किया। इन कवियों ने चारणों और भाटों की कवित्त शैली को परिष्कृत किया; मीरा, सूर आदि कृष्ण भक्तों की पदावली शैली को भी पर्याप्त परिमार्जित किया। रहीम आदि की बरवै शैली तथा जायसी आदि प्रेममार्गी कवियों की दोहा-चौपाई के साथ-साथ निर्गुण सन्त कवियों की दोहा शैली को इन कवियों ने सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सशक्त बना दिया है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि मध्ययुगीन राम-कवियों में समन्वय की भावना विराट् स्तर पर विद्यमान थी जिसका क्षेत्र-विस्तार उनकी अभिव्यक्तिगत शैलियों में भी देखा जा सकता है।

सन्दर्भ

१. डॉ० श्यामसुन्दरदास ने अवधी के अन्तर्गत बघेली और छत्तीसगढ़ी को भी सम्मिलित किया है। उनके मत के अतिरिक्त भी अवधी के (सर्वसम्मत) तीन रूप हैं—
(१) पूर्वी अवधी, (२) पश्चिमी अवधी, (३) वैसवाड़ी अवधी। हम अवधी के इस सूक्ष्म विवेचन में न पड़कर उसे मात्र अवधी कहेंगे।

२. तुलसी : दोहावली, ५७२

३. केशव : कविप्रिया, दूसरा प्रभाव।

४. राम चलत नृप के युग लोचन।
वारि भरित भै वारिदरोचन।। —रा० च०, १।५४

५. पण्डित रामनरेश त्रिपाठी का कथन है—'रामचरित मानस' में साठ-सत्तर फीसदी शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं और शेष तद्भव. अपभ्रंश या गाँव की हिन्दी के।
—तुलसी और उनका काव्य, पृ० २५५
डॉ० उदयभानु सिंह ने त्रिपाठी जी की उपर्युक्त धारणा से असहमत होते हुए मानस की अधिकांश शब्दावली तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों में विभक्त की है। अपनी धारणा के समर्थन में उन्होंने 'बलकल', 'सयन', 'असन' आदि अर्धतत्सम शब्दों को प्रस्तुत किया है जिन्हें त्रिपाठी जी ने तत्सम शब्द कहा है।
—तुलसी : काव्य मीमांसा, पृ० ३७६

६. तुलसी : कवितावली, ५।१२

७. केशव : रा० च०, ५।७७
८. तुलसी : रा० च० मा० ६।४२।३, ४
९. सेनापति : क० र०, ४।६२
१०. केशव : रा० च० ५।१८
११. सूरदास : सूर सागर ९।२८२
१२. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ७
१३. स्यों जोधा मारहिं किक्यान। —विष्णुदास : रामायन कथा, पृ० १४८
१४. किलकिलाइ धावहिं भयमत। —वही, पृ० १४८
१५. चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
—तुलसी : रामचरित मानस, ५।३४।१
१६. हींसत हय बहु बारन गाजैं। —केशव : रा० च० २।५१
१७. धसमसति धरनि गिरी शृग ठट्ठि कमठ कोल आकपीय।
—नरहर : पौरुषेय रामायण, पृ० १६३-६३
१८. डॉ० उदयभानु सिंह : तुलसी काव्य मीमांसा, पृ० ३७८-७९
१९ डॉ० मनोहरलाल : घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० १३१
२०. तुलसी : कवित्तावली ५।१२
२१. विष्णुदास : रा० क० पृ० १४८
२२. तुलसी : रा० च० मा० ५।५४।३
२३. नरहर : पौ० रा०, पृ० १०४
२४. सूरदास : सू० सा० ९।२७३
२५. सेनापति : क० र० ४।२०
२६. तुलसी : कवि० ५।१८
२७. ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥ —काव्यप्रकाश ८।८७
२८. हिन्दी ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, श्लोक ३३
२९. पद-सघटना रीतिरंगसंस्था विशेषवत् उपकर्त्री रसादीनाम्।
—विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, पृ० २७०
३०. तुलसी : गीतावली, ५।१५।१
३१. केशव : रा० च० ७।१४४
३२. सूरदास : सू० सा० ९।३७
३३. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १८०
३४. तुलसी : मानस, वा० का० दोहा २३४, २४८, कवित्तावली १।१७, सेनापति, क० र० ४।२०
३५. प्राचीन काल के भाट लोग अपनी ओजस्वी वाणी के द्वारा अपने आश्रयदाता शासकों के चित्त में स्थित ओज-गुण को उद्दीप्त किया करते थे।
३६. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १४८

३७. सूरदास : सू० सा० ६।३२५
३८. तुलसी : रा० च० मा० ६।८०।२
३९. तुलसी : कवित्तावली, २।१२
४०. केशव : रा० च० ७।२१
४१. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव, भूमिका, पृ० ३३
४२. तुलसी जैसे महाकवि ने भी सस्कृत ग्रन्थो की उपजीव्यता स्पष्ट रूप से स्वीकार की है। उनकी प्रसिद्ध पक्तियाँ हैं—

नानापुराणनिगमागमसंमतंयद्
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबधमतिमंजुलमातनोति। —रा० च० मा० १।७.

४३. तुलसी : रा० च० मा०, १।८।५
४४. केशव : रा० च० १
४५. सुमित्रानन्दन पन्त : पल्लव, भूमिका, पृ० ३७
४६. विष्णुदास : रा० क०, पृ० १०६
४७. ईश्वरदास : सत्यवती तथा अन्य कृतियों में संकलित भरथ विलाप, पृ० ९८
४८. तुलसीदास : रा० च० मा० २।५१।२
४९. विष्णुदास : रा० क०, पृ० ९८
५०. केशव : रा० च० ५।३९
५१. तुलसी : रा० च० मा० १।२०३
५२. नरहरि : पौ० रा०, पृ० १६४
५३. देखिये—कवित्तावली (लाला भगवानदीन द्वारा सकलित) की भूमिका, पृ० ६
५४. तुलसी : कवि० ७।९७
५५. केशव : रा० च० ५।७७
५६. तुलसी : कवि० ६।४७
५७. सेनापति : क० र० ४।२०
५८. सूरदास : सू० सा० सम्पादक बालमुकुन्द चतुर्वेदी ९।२७०
५९. केशव : रा० च० ५।१५
६०. वही, ६।१३२

उपसंहार

पिछले अध्यायों में हमने सन् १४५० से १६५० ई० तक के राम-काव्यों में स्वभावोक्ति अलंकार के विविध चमत्कारों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास में स्वभावोक्ति अलंकार का अस्तित्व विवादास्पद विषय रहा है। इस अलंकार के प्रबल समर्थक आचार्यों (दण्डी, उद्भट, रुद्रट एव महिमभट्ट) के मन्तव्यों का अध्ययन करके मैंने अपने मौलिक तर्क प्रस्तुत करते हुए इसके अलकारत्व का समर्थन किया है। आचार्य कुन्तक एवं रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत शंकाओं का समाधान करते समय हमारे तर्क अत्यन्त स्पष्ट एव गम्भीर रहे हैं। स्वभावोक्ति अलंकार का वर्ग-विभाजन करते समय पूर्ववर्ती आचार्यो की विचारधारा को तर्क की कसौटी पर कसने का प्रयास किया गया है। स्वभावोक्ति द्वारा रस का उपकार तथा चरित्रों की जीवन्तता एवं यथार्थता आदि की दृष्टि से इसकी सार्थकता पर यद्यपि आवश्यकतानुरूप प्रकाश डाला गया है तथापि इस विषय पर स्वतन्त्र रूप से विस्तृत विवेचन की आवश्यकता है।

चरित्रांकन में स्वभावोक्ति का योग

मध्ययुगीन राम-कवियों की चरित्र-परिकल्पना का आधार संस्कृत का राम-साहित्य है। मूल आधार एक होने पर भी कवियों के व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होने के कारण ख्यात चरित्रों में अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर का बोध होता है। तुलसी की सीता एव सूर की सीता में यह अन्तर स्पष्टतः प्रकट हुआ है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक तुलसी की सीता मर्यादा एवं शील के दृढ़ अवगुण्ठन से आविष्ट रहती है। अपनी सौतेली सास कैकेयी के प्रति वह तटस्थ दृष्टिकोण का परिचय देती है। उसका चरित्र उदात्त एवं भव्य है। किन्तु सूरदास की सीता वन-वधुओं की सहानुभूति पाकर अपने हृदय का तरल मर्म सहज ही प्रकट कर देती है—

> सासु की सौति सुहागिनि सो सखि अतिहीं पिय की प्यारी।
> अपने सुत कौं राज दिवायौ हमकों देस निकारी॥[1]

सूर की सीता में तुलसी की गम्भीर मर्यादा के स्थान पर ग्रामीण गोपियों की सी निश्छल स्वाभाविकता है। उनके चरित्र की निश्छलता का पक्ष उभारने के लिए एक अन्य उदाहरण देखा जा सकता है। पुर-वधुओं के प्रश्न करने पर तुलसी की सीता मुग्धा नायिका की भाँति चतुराई से भ्रू-संचालन एवं नेत्र-संकेतों से अपने पति एवं देवर का परिचय

प्रस्तुत करती हैं किन्तु सूर की भोली-भाली सीता अल्हड़ ग्रामीण का-सा व्यवहार करते हुए कहती हैं—

गौर बदन मेरे देवर सखि, पिय मम स्याम सरीर।

सीता का यह निस्संकोच व्यवहार अधिक सहज, स्वाभाविक तथा विश्वसनीय है। सूरदास की मनोवैज्ञानिक पकड़ के फलस्वरूप उनकी सीता जहाँ यथार्थ नारी का जीवन्त चरित्र प्रस्तुत करती है वहाँ उनके राम मे भी तुलसी की गम्भीर मर्यादा दृष्टि से परे हटकर एक सहृदय और सवेदनशील मनुष्य के स्वाभाविक गुणों का चित्रण उपलब्ध होता है। सूर और तुलसी की चरित्र-कल्पना इस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म बिन्दु पर विभक्त होती हुई प्रतीत होती है।

गुण और स्वभावोक्ति

चरित्रांकन में स्वभावोक्ति अलकार मानवीय गुणों को प्रतिबिम्बित करता हुआ रसानुभूति को तीव्रता प्रदान करता है। महाकवि लालदास का बाल्य-गुण चित्रण अत्यन्त जीवन्त मानवीय चरित्रों की अभिव्यक्ति करता है। राम की कुछ बाल-क्रीड़ाओं के चित्र उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है—

सीतल कोमल रेतन्ह महिया। लोटत फिरत उठत गहि बहिया॥
रेत बटोरि ऊंच करि डारैं। लातन्ह दौरि उछरितिहि मारैं॥[२]

कोमल भावों के चित्रण की दृष्टि मे सूरदास का राम-काव्य जितना उल्लेखनीय है, कोमल बाल-क्रीड़ाओं की दृष्टि से उतना ही कवि लालदासकृत 'अवध विलास'। महाकवि विष्णुदास को विशेष सफलता विकर्षक एवं भयानक रूपों के चित्रण में प्राप्त हुई है तो कवि अग्रदास भगवान राम के मुग्धकारी ललित, अलकृत रूप की झाँकी सजाकर ध्यानस्थ हो जाते हैं। यो तो रसिक कवि अग्रदास तथा नाभादास आदि ने राम-सीता की युगल जोड़ी के अति रमणीय चित्रों को काव्यबद्ध किया है किन्तु वे एक सम्प्रदाय की सीमित दृष्टि में आबद्ध होने के कारण एक ओर तो स्वभावोक्ति के मूल लक्षण—वस्तु के सहज एव स्वाभाविक गुणों का वर्णन करना—के विपरीत पड़ते हैं तो दूसरी ओर अलंकृति उनकी सहज अभिव्यक्ति में बाधक हो उठती है। अस्तु उन्हें स्वभावोक्ति अलकार के परिवेश में सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

सामाजिक स्थितियाँ और स्वभावोक्ति

हमारे विवेच्य काव्य-ग्रन्थों में स्वभावोक्ति अलकार के माध्यम से तद्युगीन सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों के चित्र प्रायः अत्यन्त विरल हैं। मुख्यतः इन कवियों में से तुलसी जैसे एक दो कवियों को छोड़कर युगचेता कलाकारों का अभाव रहा है। अपनी चतुर्दिक परिस्थितियों की इन कवियों ने किसी राजकीय भयजन्य विवशता के कारण अवहेलना की अथवा राम-कथा से इतर कुछ देखना इनकी प्रवृत्ति नहीं रही, इस विषय में कुछ स्पष्ट रूप से कह पाना सम्भव नहीं है।

कवित्व का निकष : स्वभावोक्ति

यह अलंकार जितनी सरलता से सहृदय को आनन्दित करता है, उतनी ही इसकी योजना कठिन है। सहज स्थितियों, सामान्य शब्दों एवं सरल वाक्यावलियों में एक जीवन्त चित्र को बाँधना वास्तव में कवित्व की एक बड़ी परीक्षा है। मध्ययुगीन राम-काव्यों में उपलब्ध स्वभावोक्ति अलंकार के विविध चमत्कारों को देखकर यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि ये सभी कवि प्रतिभावान् थे, इनकी अभिव्यंजना सशक्त थी कृष्णकाव्य में सूर की स्वभावोक्तियाँ जहाँ उक्ति-चातुर्य, चेष्टा-चापल्य एवं अभिनयात्मकता को ही स्पर्श करती है वहाँ राम-कवियों की स्वभावोक्तियाँ रूप-चेष्टा आदि मूर्त्त तत्त्वों तथा अवस्था-गुण आदि अमूर्त्त तत्त्वों के रूप में मानव तथा मानवेतर प्राणियों के विविध चरित्रों के अन्तरंग तथा बहिरंग दोनों को छू गई हैं। इस प्रकार मध्ययुगीन राम-काव्यों में स्वभावोक्ति अलकार के विविधमुखी चमत्कारों की विषय-व्यापकता देखकर आचार्य कुन्तक की वक्रोक्ति-विषयक[3] धारणा स्मरण हो आती है।

महाकवि तुलसीदास का वैशिष्ट्य

मध्ययुग के राम-काव्यों में एक ओर तुलसी का काव्य है तो दूसरी ओर अन्य कवियों का। यही कारण है कि हमारे विवेचन के अन्तर्गत अधिकांश उद्धरण महाकवि तुलसी के काव्य से प्रस्तुत किए गए। महाकवि तुलसी का काव्य परिमाण में अधिक होने के साथ-साथ अपने उत्कृष्ट काव्य-गुणों के कारण विशिष्टता रखता है। इनके काव्य मे ऐसी असंख्य भाव-विदग्ध अवस्थाओं का चित्रण हुआ जिन्हें काव्यशास्त्रीय शब्दावली में किसी भी रस, भाव आदि परम्परागत पारिभाषिक वर्ग में आबद्ध कर पाना अत्यन्त कठिन है, जिनका अभी तक नामकरण भी नहीं हुआ है।

महाकवि तुलसी के राम-काव्य में स्वभावोक्ति अलंकार की सहृदय-आह्लादकारी छटा ही उसे जन-काव्य बना देती है। इस अलकार के रमणीय प्रयोगों की एक स्थूल बानगी इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है—

लांगूल उछालते, वृक्ष उखाड़ते या दांत किटकिटाते वानर, मुड़-मुड़कर आखेटक की रूप-माधुरी को देखता चपल-हिरण, ठुमुक-ठुमुक पग रखकर अपनी स्वाभाविक चाल से चलता बालक, कौंए के पीछे पूआ लेकर दौड़ता हुआ बालक, हिनहिनाते और हूंकते घोड़े, क्रोध में फुफकारी भरते और चिड़चिड़ाते वृद्ध मुनि परशुराम, उन्हें चिढ़ाते हुए कुमार लक्ष्मण, रंग-भूमि में बार-बार आगे खिसकते विवाहेच्छुक नारद मुनि, कन्या को विदा देते हुए माता-पिता, पुत्र को कलेजे से लगाते ही स्तन बहाती हुई माँ, नवेली वधू को पालकी का परदा उघाड़-उघाड़कर देखती हुई उत्सुक प्रौढाएँ आदि। कहीं-कहीं समुदाय अथवा जन समाज के चित्रण में भी तुलसी ने स्वभावोक्ति अलकार का आकर्षक प्रयोग किया है। इस सन्दर्भ में राम-वनवास के लिए भरत को उत्तरदायी समझने वालों के विरुद्ध सात्विक वृत्ति वाली धर्मभीरु जनता के प्रतिनिधि की प्रतिक्रियात्मक चेष्टाओं का यह चित्र द्रष्टव्य है—

कान मूंद कर रह गहि जीहा। एक कहहि यह बात अलीहा॥[4]

स्वभावोक्ति और तादात्म्य

सहृदय के तादात्म्य की दृष्टि से स्वभावोक्ति अलंकार काव्य का अनन्य वैशिष्ट्य है। वाणी का एक विशिष्ट रूप होने के कारण काव्य उसका अलंकार है। काव्य में प्रस्तुत की गई वस्तु अथवा सुसंस्कृत तथ्य परिष्कृत होकर प्रतिपाद्य का अलंकरण करते हैं। काव्य में वर्णित प्रत्येक वस्तु पाठक के लिए तभी बोधगम्य और सहज-ग्राह्य हो सकती है यदि कवि उसका एक यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर दे। वस्तु के यथार्थ चित्रांकन के लिए कवि उसकी कुछ विशिष्ट चरित्रगत विशेषताओं को ग्रहण करता है। इन्हीं विशिष्ट चारित्रिक प्रवृत्तियों की सहज अभिव्यक्ति के द्वारा वस्तु के स्वरूप में यथार्थ की अनुभूति होती है। कवि और सहृदय की मानसिक स्थितियों की एकरूपता अर्थात् तादात्म्य वस्तु के इसी यथार्थ वर्णन पर आधारित होता है। क्योंकि वस्तु के सूक्ष्मतम सत्य के प्रति पाठक और कवि की अनुभूति तो समान ही होती है, अन्तर केवल इतना है कि एक की अनुभूति मौन है और दूसरे की मुखर।

स्वभावोक्ति और साधारणीकरण

वस्तु को निर्विशिष्ट बनाकर उसे सर्वग्राह्य रूप देना जहाँ साधारणीकरण का मूल तत्त्व है वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार में जातिगत वर्णन भी वैयक्तिक विशेषताओं से मुक्त होकर इसी धारणा का समकक्ष सिद्ध होता है। तादात्म्य एवं साधारणीकरण जिस प्रकार रस के पोषक मूलतत्त्व हैं उसी प्रकार स्वभावोक्ति अलंकार भी रस का अनिवार्यतः पोषक तत्त्व है।

मध्ययुगीन राम-काव्यों में स्वभावोक्ति अलंकार का प्रयोग रसानुभूति की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय सिद्ध होता है। यही कारण है कि राम-कथा के चरित्र अत्यन्त भव्य और उदात्त होने पर भी जन-साधारण में घुले-मिले से प्रतीत होते हैं। इन दिव्य चरित्रों को यथार्थ की मनोभूमि पर चित्रित करके राम-कवियों ने अपनी विशिष्ट काव्य-क्षमता का परिचय दिया है। राम के चरित्रांकन में तुलसी के वैशिष्ट्य की चर्चा करते हुए डॉ० भगीरथ मिश्र लिखते हैं—

"गोस्वामी तुलसीदास ने राम के इस रूप, चरित्र और आख्यान के निर्माण में बड़ा परिश्रम किया है। राम का विविध गुणों, शक्ति, शील, सौन्दर्य से युक्त जो पूर्ण व्यक्तित्व मानस में देखने को मिलता है वह पूर्ववर्ती किसी भी एक काव्य में नहीं मिलता। समस्त रचनाओं को पढ़कर भी हम राम के सम्बन्ध में यह धारणा नहीं बना पाते जो तुलसी के मानस द्वारा बनती है। अतः युग-युग को प्रभावित करने वाली कथा की रचना कर राम के व्यक्तित्व को इतना महान् उत्कर्ष और पूर्णता प्रदान करने में तुलसी को बहुत बड़ा श्रेय प्राप्त है।"[५]

अन्ततः कहा जा सकता है कि राम-कवियों के सहज स्वाभाविक वर्णनों के कारण ही राम-कथा युग-जीवी एवं सार्वभौम लोकप्रियता प्राप्त कर सकी है और इस लोकप्रियता के मूल में साधारणीकरण और उसके समकक्ष स्वभावोक्ति अलंकार का व्यापक प्रयोग ही है।

सन्दर्भ

१. सूरदास : सूर-सागर, पद संख्या ९।४८८
२. लालदास : अवध-विलास, पृ० १७२
३. संस्कृत-काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आलंकारिक कुन्तक ने वक्रोक्ति के छः भेद करते हुए वाक्य एवं पद से लेकर प्रबन्ध तक उसका विस्तार कर दिया है। उन्होंने वक्रोक्ति अलंकार को एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित किया था।
४. तुलसी : रा० च० मा०, २।४७।४
५. डॉ० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृ० ६५

परिशिष्ट : सहायक ग्रन्थ-सूची

(क) आधार ग्रन्थ

अग्रदास	अष्टयाम	सं० रामवल्लभशरण, जानकी घाट अयोध्या, १०८० वि०
,,	ध्यानमञ्जरी	विश्वकर्मा प्रेस, मथुरा, सं० १९००
ईश्वरदास	भरथ विलाप	डॉ० अमरपाल सिंह कृत तुलसी-पूर्व राम साहित्य' में संकलित
,,	भरथ विलाप	सं० शिवगोपाल मिश्र, 'सत्यवती-कथा तथा अन्य कृतियाँ' में संकलित १९५८ ई०
केशवदास	रामचन्द्रिका	सं० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, संकलन-कर्त्ता लाल भगवानदीन
तुलसीदास	कवितावली	सं० विश्वनाथ मिश्र, वाराणसी, सं० २०१३
,,	गीतावली	गीता प्रेस गोरखपुर, सं० २०२३
,,	जानकी मंगल	,, ,, २०२१
,,	दोहावली	,, ,, २०२२
,,	बरवै रामायण	,, ,, २०१९
,,	रामचरित मानस	,, ,, २०२२
,,	रामाज्ञाप्रश्न	,, ,, २०२३
,,	रामलला नहछू	सं० सद्गुरुशरण अवस्थी 'तुलसी के चार दल' (भाग-२), सन् १९५२
,,	विनय पत्रिका	गीता प्रेस, सं० २०२२
,,	वैराग्य संदीपनी	,, ,,
,,	हनुमान बाहुक	,, ,,
,,	तुलसी ग्रन्थावली	सं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
नाभादास	रामाष्टयाम	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, सं० १९५१
विष्णुदास	रामायन कथा	सं० पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी

सूरदास	सूर रामचरितावली	गीता प्रेस गोरखपुर, सं० २०१४
"	सूर सागर (खण्ड-२)	सं० बालमुकुन्द चतुर्वेदी, सं० १९७०
सेनापति	कवित्त रत्नाकर	सं० उमाशकर शुक्ल, हिन्दी परिषद प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, सन् १९४८
हृदयराम	हनुमन्नाटक	सं० बाबू रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यत्रालय, बनारस, १८८८ ई०

(ख) हस्तलिखित ग्रन्थ

अग्रदास	कुण्डलिया	नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित
नरहर	पौरुषेय रामायण	कुमारी स्नेह गुप्त के पास सुरक्षित मूल प्रतिलिपि की अनुकृति
प्राणचन्द चौहान	रामायण महानाटक (अपूर्ण)	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
ब्रह्मराय मल्ल	हनुमान चौपाई	जैन पंचायती मन्दिर दिल्ली में सुरक्षित
लालदास	अवध विलास (अपूर्ण)	प्रस्तुत लेखिका के पास सुरक्षित
कविलाल	अंगद पेज	नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित
सुन्दरदास	हनुमान चरित	जैन पचायती मन्दिर दिल्ली में सुरक्षित

आलोचना-ग्रन्थ

(श्री) अंजनीनन्दन शरण—मानस-पीयूष (बाल-काण्ड) भाग १, २
(डॉ०) अमरपाल सिंह—तुलसी-पूर्व राम-साहित्य, इलाहाबाद १९६८ ई०
(डॉ०) अम्बाप्रसाद 'सुमन'—तुलसी का वाग्वैभव
(डॉ०) आनन्दप्रकाश 'दीक्षित'—तुलसीदास : वस्तु और शिल्प
(डॉ०) उदयभानु सिंह—तुलसी काव्य-मीमांसा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली १९६६ ई०
(डॉ०) ओमप्रकाश—हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, सन् १९५७
(डॉ०) ओमप्रकाश—हिन्दी अलकार साहित्य, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली
(सेठ) कन्हैयालाल पोद्दार—काव्य कल्पद्रुम, अलकार मञ्जरी
(फादर) कामिल बुल्के—रामकथा : उत्पत्ति और विकास, प्रयाग १९६२ ई०
(डॉ०) किरणकुमारी गुप्त—हिन्दी काव्य में प्रकृत्ति चित्रण, किशोरीलाल गुप्त, सरोज सर्वेक्षण, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद १९६७ ई०
(डॉ०) कृष्णगोपाल रस्तोगी—हिन्दी क्रियाओं का अर्थपरक अध्ययन, दिल्ली

(डॉ०) गार्गी गुप्त—रामकाव्य की परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन
(बाबू) गुलाबराय—सिद्धान्त और अध्ययन
(श्री) चारुदेव शास्त्री—अभिनन्दन ग्रन्थ १९७४ ई०
(डॉ०) चावलिसूर्यनारायण मूर्ति—हिन्दी और तेलुगु के मध्यकालीन राम-साहित्यों का तुलनात्मक अनुशीलन, लखनऊ १९६६ ई०
(डॉ०) चन्द्रभूषण—तुलसी काव्य का सौन्दर्य
(सर) जार्ज ग्रियर्सन—माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान
(श्री) जयशंकर प्रसाद—कामायनी
(डॉ०) त्रिभुवन सिंह—हिन्दी साहित्य : एक परिचय, हिन्दी प्रचारक सस्थान, वाराणसी, सन् १९६८
(डॉ०) दशरथ ओझा—हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, २०१३ वि०
(डॉ०) दीनदयाल गुप्त—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग १-२, प्रयाग
(डॉ०) देशराजसिंह भाटी—हिन्दी में शब्दालंकार विवेचन
(डॉ०) धीरेन्द्र वर्मा-ब्रजेश्वर वर्मा—हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग
(डॉ०) धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, सं० २०१५
(डॉ०) नगेन्द्र—भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली १९६३ ई०
(डॉ०) निर्मला जैन—रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
(डॉ०) स्व० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल (संपादक)—रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
(डॉ०) प्रकाश नारायण दीक्षित—नाभादास कृत भक्तमाल : एक अध्ययन, इलाहाबाद १९६१ ई०
(डॉ०) प्रभुदयाल मीतल—सूर-रामचरित, अग्रवाल प्रेस, मथुरा
(डॉ०) प्रेमस्वरूप गुप्त—रसगगाधर का शास्त्रीय अध्ययन
(डॉ०) बदरीनारायण श्रीवास्तव—रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९५७ ई०
(डॉ०) बलराज शर्मा—नरहरदास बारहट कृत पौरुषेय रामायण का आलोचनात्मक अध्ययन, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, सन् १९७५ ई०
(डॉ०) भगीरथ मिश्र—काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, सन् १९६३ ई०
(डॉ०) भगीरथ मिश्र—तुलसी शब्द रसायन
(डॉ०) भाग्यवती सिंह—तुलसी की काव्य-कला (उनकी रचनाओं में) सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा १९६३

(डॉ०) भगवती प्रसाद सिंह—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर

(श्री) भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'—रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा, पटना, १९५७ ई०

(डॉ०) मनमोहन गौतम—सूर की काव्यकला, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली १९६३ ई०

(डॉ०) मनोहरलाल—घनानन्द और स्वच्छन्द धारा

मिश्र बन्धु—मिश्र बन्धु विनोद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, २०१३ वि०

(डॉ०) मलिक मोहम्मद—वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन

(डॉ०) माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास (एक आलोचनात्मक अध्ययन) प्रयाग १९५३ ई०

(डॉ०) रत्नकुमारी—हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि (तुलनात्मक अध्ययन), भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली १९५६ ई०

(डॉ०) रघुवंश—प्रकृति और काव्य

(डॉ०) रतिभानुसिंह 'नाहर'—भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, किताब महल प्रा० लि०, इलाहाबाद

(डॉ०) रमानाथ त्रिपाठी—कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ १९६३ ई०

(डॉ०) रमानाथ त्रिपाठी—रामचरित मानस और पूर्वांचलीय रामकाव्य, दिल्ली १९७२ ई०

(डॉ०) राजकुमार पाण्डेय—रामचरित मानस का काव्यशास्त्रीय अध्ययन, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर

(पं०) रामनरेश त्रिपाठी—तुलसीदास और उनका काव्य, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली १९५८ ई०

(डॉ०) रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, सन् १९५८

(आचार्य) रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि, भाग-१

(आचार्य) रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २०००

(आचार्य) रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००८

(आचार्य) रामचन्द्र शुक्ल—सूरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १९६३

रामबहोरी शुक्ल—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, इलाहाबाद

(डॉ०) रामदत्त भारद्वाज—गोस्वामी तुलसीदास, भारती साहित्य मन्दिर फव्वारा, दिल्ली, सं० २०१८ वि०

(डॉ०) रामचन्द्र मिश्र—हिन्दी पद-परम्परा और तुलसीदास, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली १९६२ ई०

रामचन्द्र द्विवेदी—तुलसी साहित्य-रत्नाकर, पटना, सं० १९८६
(डॉ०) रामलखन पाण्डेय—तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम-साहित्य, अभिनव भारती, ४२ सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद
राजबहादुर लमगोड़ा—विश्व-साहित्य में रामचरित मानस, सतना, १९४४ ई०
(डॉ०) रामप्रकाश अग्रवाल—वाल्मीकि और तुलसी (साहित्यिक मूल्यांकन) हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९५३
राहुल सांकृत्यायान—हिन्दी-काव्यधारा, इलाहाबाद, सन् १९४५
(डॉ०) रामनिरंजन पाण्डेय—रामभक्ति शाखा, हैदराबाद, सन् १९६०
रामदहिन मिश्र—काव्यदर्पण
(डॉ०) रामसिंह तोमर—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य और उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
(डॉ०) वचनदेव कुमार—रामचरित मानस में अलंकार योजना, हिन्दी साहित्य संसार, १९७१ ई०
(डॉ०) वचनदेव कुमार—तुलसी के भक्त्यात्मक गीत : विशेषत: विनयपत्रिका, हिन्दी साहित्य संसार, सन् १९६४
(डॉ०) विजयपाल सिंह—केशव का आचार्यत्व, राजपाल एण्ड संस, सन् १९६८
पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—हिन्दी साहित्य का अतीत, वाराणसी, संवत् २०१५
सदगुरुशरण अवस्थी—तुलसी के चार दल, पहली पुस्तक, इण्डियन प्रेस, प्रयाग १९३५ ई०
(डॉ०) सत्येन्द्र—ब्रज साहित्य का इतिहास
(डॉ०) सियाराम तिवारी—हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली १९६४ ई०
(डॉ०) सुरेशचन्द्र गुप्त—भक्तिकालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त, १९७३ ई०
(डॉ०) सुरेशचन्द्र निर्मल—हिन्दी प्रबन्ध काव्य में रावण, भावना प्रकाशन, दिल्ली १९७५ ई०
(श्री) सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव
(डॉ०) सुखदेव—भक्तिकाव्य में प्रकृति-चित्रण, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, १९७४ ई०
(डॉ०) शम्भुनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी १९६२ ई०
(स्व०) बाबू शिवनन्दन सहाय—गोस्वामी तुलसीदास : संपादक नलिन विलोचन शर्मा, राष्ट्रभाषा परिषद, पटना १९६१ ई०
(श्री) शिवसिंह सेंगर—शिवसिंह सरोज, संपादक रूपनारायण पाण्डेय, लखनऊ १९२६ ई०
(डॉ०) शिवप्रसाद सिंह—सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९५८ ई०
(डॉ०) श्रीकृष्ण लाल—मानस दर्शन, आनंद पुस्तक भवन, बनारस कैंट, २००६ वि०

(डॉ०) श्रीधर सिंह—तुलसी की कारयित्री प्रतिभा का अध्ययन
(संपादक) श्याम सुन्दर दास बी० ए०—कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण ७
(श्री) श्याम सुन्दर दास—गोस्वामी तुलसीदास, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद, १९५२ ई०
(पंडित) हरगोविन्द तिवारी—तुलसी शब्द सागर, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद १९५४ ई०
(आचार्य) हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल
(डॉ०) हरबंशलाल शर्मा—सूर और उनका साहित्य, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़
(डॉ०) हरिवंश कोछड़—अपभ्रंश साहित्य हिन्दी, अनुसन्धान परिषद, दिल्ली, २०१३ वि०

हस्तलिखित ग्रन्थों के खोज विवरण एवं कोश ग्रन्थ

हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, (द्वितीय खण्ड) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सन् १९०० से १९५५ ई० तक)
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (पहला भाग) संपादक—श्याम सुन्दरदास बी० ए०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा (सं० १९५७ से १९६८ तक)
राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग ३-४, अगरचन्द नाहटा, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ
हिन्दी के राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग १, मोतीलाल मेनारिया
राजस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग २, अगरचन्द नाहटा, प्राचीन साहित्य शोध संस्थान, उदयपुर विद्यापीठ १९४७ ई०
लघु हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
वाचस्पत्यम्
नालंदा विशाल शब्द सागर, न्यू इम्पीरियल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली
शब्दकल्पद्रुम
हिन्दी साहित्य कोश (भाग १-२), ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
संस्कृत-इगलिश डिक्शनरी, मोनियर विलियम्स
बृहत् हिन्दी कोश, सं० कालिका प्रसाद, ज्ञानमंडल लि०, बनारस
हलायुध कोश, सं० जयशंकर जोशी, सरस्वती भवन, वाराणसी

अप्रकाशित शोध-ग्रन्थ

ओमप्रकाश गौड़—सूर साहित्य में अलंकार योजना, दिल्ली विश्वविद्यालय
देवदत्त शर्मा—तुलसी द्वारा प्रयुक्त काव्यरूपों का शास्त्रीय अध्ययन, दिल्ली विश्वविद्यालय

संस्कृत-ग्रन्थ

अप्पय दीक्षित—कुवलयानंद, व्याख्याकार डॉ० भोला शंकर व्यास
अभिनव गुप्त—अभिनव भारती (सं० डॉ० नगेन्द्र), दिल्ली विश्वविद्यालय १९६० ई०
अग्निपुराण—आनन्द आश्रम, प्रथम संस्करण
आनन्दवर्द्धन—ध्वन्यालोक
ऋग्वेद—
उद्भट—काव्यालंकारसार-संग्रह (व्याख्याकार डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६ ई०
कुमारदास—जानकी हरण
कुन्तक—वक्रोक्तिजीवितम्, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, सन् १९५५
केशव मिश्र—अलंकारशेखर (अलकार विभाग, प्रथमपुष्पम्), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, सं० १९८४
केशव मिश्र—तर्क भाषा, चौखम्बा, बनारस १९५२
जयदेव—चन्द्रालोक, व्याख्याकार, गुरुप्रसाद शास्त्री
दण्डी—काव्यादर्श, श्रीनिवास मुद्रणालय, सन् १९३६
धनञ्जय—दशरूपक
,, —नारद भक्ति सूत्र
बाणभट्ट—कादम्बरी, बम्बई १८१७
,, —हर्षचरित
भर्तृहरि—वाक्यपदीयम्
भामह—काव्यालंकार (भन्ध्यकार, देवेन्द्रनाथ शर्मा), बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद; पटना १९६२ ई०
भरत—नाट्यशास्त्रम्
भोज—सरस्वती कंठाभरण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३४
मम्मट—काव्यप्रकाश (भाष्यकार हरिनारायण आप्टे), आनन्द आश्रम मुद्रणालय; सन् १९११
महिमभट्ट—व्यक्तिविवेक (हिन्दी भाष्य, प्रो० सेवाप्रसाद द्विवेदी), चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, सन् १९६४
मनु—मनुस्मृति, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९४६ ई०
पण्डितराज जगन्नाथ—रसगंगाधर
(डॉ०) रामलाल वर्मा—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, सन् १९५९
रुद्रट—काव्यालंकार, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
रुय्यक—अलंकार सर्वस्व, चौखम्बा, संस्कृत सरीज
रूपगोस्वामी—उज्ज्वलनीलमणि, पांडुरंग जीवाजी, बम्बई, सन् १९३८

वामन—काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, सं० डॉ० नगेन्द्र, राजपाल एण्ड संस, १६५४ ई०
वाग्भट—काव्यानुशासन, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १८६४ ई०
वाग्भट—वाग्भटालंकार
विद्यानाथ—प्रतापरुद्रयशोभूषण, संस्कृत ग्रन्थमाला, बम्बई
विश्वनाथ—साहित्यदर्पण, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १६१० ई०
व्यास—भागवतपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २००६
हेमचन्द्र—काव्यानुशासन, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १६०१ ई०

अंग्रेजी पुस्तकें

ऐडविन ग्रीव्ज—नोट्स ऑन दि ग्रामर ऑफ रामायण ऑफ तुलसीदास, बनारस, १६२२ ई०
पी० वी० काणे—हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोयटिक्स, १६६६
वी० राघवन—भोजस शृंगार प्रकाश
श्लेगेल—ऐसे ऑन दि स्टडी ऑफ ग्रीक पोयट्री

पत्रिकाएँ व लेख

साहित्य संदेश (अंक) मार्च, १६६० ई०
नागरी प्रचारिणी पत्रिका
सरस्वती संवाद, १६५८ (के कुछ अंक)
डॉ० राघवन का लेख 'हिस्ट्री ऑफ स्वभावोक्ति'